मेघदूत महिमा

प्रो० बी० पी० भास्कर, शास्त्री,
एम० ए०, एम० ओ० एल०

मुद्रक—पैरामाऊट पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली।

भावाञ्जलि



सस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित, समस्त शास्त्र निष्णात, काव्यमर्मज्ञ, प्रखर प्रतिभावान् उपराज्यपाल, दिल्ली प्रशासन, स्वनामधन्य डा० श्री आदित्यनाथजी झा आई० सी० एस० के पावन चरणो मे सादर समर्पित !

विषय सूची

विद्वानों की सम्मतियाँ

प्रो० वी० पी० भास्कर, सस्कृत साधनारत उन विद्वानो मे है जो प्रसिद्धि से दूर रहकर सतत माँ भारती के पादपद्मो मे नित्य-नूतन सुरभित-प्रसून अर्पण करने मे ही अपने को कृतकृत्य समझते है। "मेघदूत महिमा" उनके गहन स्वाध्याय, चिन्तन एवं मनन का एक फल है, जिसके अनुशीलन से पाठको को मेघदूत सम्बन्धी अनेक पुस्तको के अध्ययन का श्रम नही करना पडेगा। भास्करजी मधुकरी-वृत्ति एव अपनी नवोन्मेष शालिनी प्रतिभा द्वारा मेघदूत के वह चातक बन गए है जिसे स्वाति बिन्दु की प्राप्ति हो चुकी है। मै इसके प्रसार एव प्रचार के साथ भास्करजी की दीर्घायु की कामना करता हूँ।

डॉ० सुरेन्द्रनारायण त्रिपाठी

प्रो० वी० पी० भास्कर, एम० ए०, आचार्य, एम० ओ० एल० द्वारा प्रणीत 'मेघदूत महिमा" नामक ग्रन्थ देखकर परमाह्लाद का अनुभव हुआ। "मेघे माघे गत वय" के अनुसार कविकुल गुरु कालिदास की अमर रचना मेघदूत का महत्व सर्वसिद्ध है। मेघदूत के अध्ययन की अनेक दिशाएँ हो सकती है। उसकी साहित्यिक सुषमा का उद्घाटन, उसमे चित्रित सस्कृति का उप-स्थापन, उसकी दार्शनिक पृष्ठ-भूमि एव उसके सन्देश का प्रकाशन आदि अनेक दृष्टियो से इसका अध्ययन विद्वानो ने किया है। कुछ परीक्षोपयोगी टीकाएँ भी इस पर लिखी गयी है। किन्तु इन सबसे विलक्षण दिशा है मेघदूत के पूर्वापर प्रसङ्ग सहित उसके श्लोकाक्षरो के मर्म-प्रकाशन का प्रयास जिसे प्रो० भास्कर ने सफलतापूर्वक सम्पन्न किया है। यह कार्य हिन्दी के माध्यम से प्रस्तुत कर विद्वान लेखक ने हिन्दी-सस्कृत के आबालवृद्ध पर समान उपकार किया है। आशा है प्रो० भास्कर की ज्ञान किरणो से विबुधो के मानस-पद्म अवश्य विकसित होगे।

रमाकान्त शुक्ल

भूमिका

"मेघे माघे गतं वय:"

कविकुल शिरोमणि महाकवि कालिदास रचित काव्यो मे मेघदूत अपना विशेष स्थान रखता है। मेघदूत मे कवि की कमनीय कल्पना अपने मौलिक रूप मे मुखरित हुई है। मेघ और माघ की महिमा ही निराली है। प्रति-पावस मे मेघदूत का पाठ करता और आसपास के सहृदय मित्रो को सुनाता। यह क्रम बहुत दिनो तक चलता रहा। मेघदूत एक ऐसी अद्‌भुत पुस्तक है कि इस पर अनेक विद्वानो ने टीका-टिप्पणी की है। बहुत दिनो से मेरी भी प्रबल इच्छा थी कि मैं भी कवि की इस अमर-कृति के श्लोको के पूर्वापर प्रसङ्ग दिखाकर कुछ लिखूँ किन्तु अनेको विघ्न वाधाओ के कारण मेरा यह स्वप्न साकार न हो सका। महाकवि की कल्याणी-वाणी के प्रति अविचल भक्ति एव अशिथिल श्रद्धा के कारण यदि मैं कहूँ कि विश्व मे विपुल-विरह-वेदना और मधुर-मिलन की आकांक्षा को कोमलकान्त-पदावली मे प्रकट करने वाला सर्वोत्तम काव्य मेघदूत है तो इसे अत्युक्ति न समझे। वियोग-व्यथा, प्रणय-सकेश एव प्रणयाकुल उत्कण्ठा के द्वारा मानव के अन्तस्तल को आन्दोलित करने वाला शायद ही अन्य काव्य हो। गीति-काव्यो मे अग्रगण्य मेघदूत मे कवि की कल्पना नित्य नवीन चित्रो का चित्रण करती हुई दिखाई देती है। उनकी रुचिर रचनाओ पर **"क्षणे-क्षणे यन्नवता-मुपैति तदेवरूय रमणीयताया:"** नवीनता और रमणीयता की परिभाषा अक्षरश घटित होती है।

मानव हृदय के सुन्दर, सरस एव सजीव विश्लेषण करने वाले कवि के उत्तम काव्य के श्लोको की विशद्-व्याख्या करने का दुस्साहस करते हुए मुझे कवि का वह श्लोक याद आ रहा है जिसे उन्होने अपने प्रसिद्ध महाकव्य रघुवश के आरम्भ मे लिखा है—

क्व सूर्य प्रभवो वंश: क्वाचाल्पविषया मति:।
तितीर्षुर्दुस्तर मोहाद् उडुपेनास्मि सागरम्॥

फिर भी **"स्वान्त: सुखाय"** का सहारा लेकर कुछ लिख ही दिया है।

इस पुस्तक के लिखते समय मेरी धर्म-पत्नी श्रीमती सूर्य्यकुमारीजी एम० ए० रिटायर्ड प्रिंसिपल, गवर्नमेण्ट हायर सैकण्डरी स्कूल, चिराग दिल्ली, नई दिल्ली ने समय-समय पर जो मेरी सहायता की है तदर्थ मैं उन्हे धन्यवाद देता हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन सम्बन्धी सब प्रबन्ध का श्रेय हिन्दी के सुकवि, परम अनुभवी प्रिय प्रो० एस० राकेशजी एम० ए० साहित्य-रत्न को है जिन्होने इस बृहत् कार्य का गुरुतर भार अपने ऊपर लेकर मेरी चिन्ताओ को दूर करने की कृपा की। उन्ही के प्रोत्साहन से मै लेखन-कार्य मे प्रवृत्त हुआ हूँ। अत उनके प्रति आभार प्रकट करता हुआ उनकी दीर्घायु की कामना करता हूँ।

हरिनगर,
नई दिल्ली-१८

विदुषामनुचर
भास्कर

कालिदास प्रशस्ति

कवि कुल तिलक, निखिल शास्त्र कोविद, प्रखर प्रतिभावान्, उपमा की अनुपम मूर्ति, कोमल कान्त पदावली के प्रणेता, महाकवि कालिदास सस्कृत साहित्य गगन के उज्ज्वल नक्षत्र है। उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा, उनका विशाल अनुभव, उनकी मौलिकता, उनकी कमनीय कल्पना, उनकी रचना चातुरी, उनका विचित्र प्रकृति पर्यवेक्षण और उनकी प्रसादमयी वाणी विश्व साहित्य मे उन्हे असाधारण स्थान प्रदान करती है। इस विश्ववन्द्य कवि के अनेक अनवद्य गुणो पर मुग्ध होकर एक विद्वान् ने लिखा है —

पुराक वीनां गणना प्रसंगे कनिष्ठकाधिष्ठित कालिदासः।
अद्यापि तत्तुल्य कबेरभावादनामिका सार्थवती बभूव ।।

अर्थात् प्राचीन समय मे सुकवियो के गणना प्रसङ्ग मे कविवर कालिदास का नाम सर्वप्रथम कनिष्ठिका अँगुली पर रखा गया किन्तु कालिदास की समता करने वाले अन्य किसी कवि के न होने के कारण दूसरी अँगुली पर किसी का नाम पडा ही नही, अतएव उस अँगुली का नाम अनामिका पडा। आज भी कालिदास के समान अन्य कवि न होने के कारण उस अँगुली का "अनामिका" नाम सदा के लिए सर्वथा सार्थक हो रहा है।

संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रन्थ कादम्बरी के रचयिता कविवर बाणभट्ट ने कालिदास की प्रशस्ति मे लिखा है —

तिर्गतासुन वाकस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुर सान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ।।

अर्थात् ज्योही कालिदास की सूक्तियाँ उनके मुख से निकली उस समय कौन ऐसा अभागा व्यक्ति था जिसकी प्रीति मधुररस से सनी मञ्जरियो के समान सुमधुर कालिदास की सूक्तियो मे न गई हो अर्थात् ऐसा कोई नही था। सब उनकी मधुर सूक्तियो को सुनकर मुग्ध हो गये।

अलङ्कार शास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान् आनन्दवर्धनाचार्य ने अपने ग्रन्थ "ध्वन्यालोक" मे एक स्थान पर लिखा है—'अस्मिन्नति विचित्र कवि परम्परावाहिनि ससारे कालिदास प्रभृतयो द्वित्रा पञ्चषा वा महाकवय इति गण्यन्ते' अर्थात् विचित्र कवि—परम्परा वाले इस विश्व मे अनेक कवि जन्म लेते है किन्तु फिर भी उनमे से कालिदास के समान दो तीन अथवा अधिक से अधिक पाँच छ व्यक्तियो को ही "महाकवि"

की उपाधि से विभूषित किया जा सकता है। रसिक शिरोमणि जयदेव ने भी कालिदास की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हुए कवि को "कविकुल गुरु" पद से सम्मानित किया है। "रघुवंशकार" की प्रशसा करते हुए सोड्ढल ने अपने हृदय के उद्गार इस प्रकार प्रकट किये है:—

ख्यातः कृती सोऽपि च कालिदासः शुद्धा सुधास्वादमती च यस्य।
वाणी मिषाच्चण्डमरी चि गोत्र सिन्धोः परं पारमवाय कीर्तिः॥

अर्थात् धन्य है वे कवि कालिदास जिनका यश उनकी कविता के समान ही निर्दोष, अमृत समान एवं सुमधुर है। जिस तरह उनकी वाणी सूर्यवश का विशद रूप से वर्णन कर सकी वैसे ही उनकी कीर्ति भी सागर के पार पहुँची है। "भरत चरित्र" के आरम्भ मे कविवर श्रीकृष्ण ने भी कालिदास की सरस, सुमधुर, भावपूर्ण एवं प्राञ्जल भाषा की अनुपम सुन्दरता का वर्णन करते हुए लिखा है —

अस्पृष्ट दोषा नलिनीव वृष्टा हारावलीव ग्रथिता गुणौघैः।
प्रियाङ्कपालीव विमर्द हृद्या न कालिदासाद परस्य वाणी॥

अर्थात् कमलिनी की तरह अस्पृष्ट दोष वाली (रात मे विकसित न होने वाली-दूसरे पक्ष मे ग्राम्यत्वादि दोष रहित) मोतियो के हार के समान गुण समूह वाली (अनेक सूत्रो से युक्त—दूसरे पक्ष मे प्रसाद आदि गुणवाली) प्रिया की गोद की तरह बिमर्द से (सवाहन से—दूसरे पक्ष मे परीक्षण करने से) प्रसन्नता देने वाली वाणी कालिदास के सिवाय अन्य किसी कवि की नही"। गोवर्धनाचार्य ने भी कालिदास की कविता की प्रशसा करते हुए कहा है—

साकूत मधुर कोमल विलासिनी कण्ठ कूजित प्राये।
शिक्षासमयेऽपि मुदे रतिलीला कालिदासोक्तिः॥

अर्थात् महाकवि कालिदास की सूक्ति भावपूर्ण, सुमधुर और कोमल रति विलासिनी के कण्ठस्वर की तरह है जो शिक्षा देते समय भी अमन्द आनन्द से आप्लावित कर देती है। काव्य प्रकाश के रचयिता महापण्डित मम्भट ने लिखा है —

"कान्ता सम्मिततयोपदेशयुजे" अर्थात् कविता कान्ता के कोमल उपदेशों के समान शिक्षा देती है। वास्तव मे मम्भट के ये शब्द कविकुल शिरोमणि कालिदास मे अक्षरश चरितार्थ होते है। कवीन्द्र रवीन्द्र ने भी कालिदास के प्रसिद्ध नाटक "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" को पढकर भावभीनी श्रद्धाँजलि अर्पित की है। उन्होने लिखा है कि शकुन्तला के आरम्भ के सौदर्य ने मङ्गलमय परिणति से सफलता प्राप्त करके मर्त्य को अमृत के साथ सम्मिलित करा दिया है। इस प्रकार भारत के विद्वानो ने तो कालिदास के गुण गाये हीं है, दूसरे देशो के विद्वानो ने भी कवि की अद्भुत शैली की मुक्तकण्ठ से सराहना की है। जर्मनी के प्रसिद्ध कवि गेटे ने "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" इस नाटक का अनुवाद पढ़कर जो प्रशसा की है वह कवि की उत्कृष्ट प्रतिभा

का ज्वलन्त उदाहरण है और कवि को वास्तव मे विश्ववन्द्य बनाता है। गेटे महोदय के शब्द बडे भावपूर्ण है —

Wouldst thou the young year's blossoms
and the fruits of its decline,
And all by which the soul is charmed,
enraptured, feasted fed ?
Wouldst thou the earth and heaven itself —
in one sole name combine ?
I name thee, O Shakuntala and all that,
once is said.

अर्थात् "क्या तू नव वर्ष के पुष्प और क्षीयमाण वर्ष के फल देखने की इच्छा करता है, जिससे आत्मा, मन्त्रमुग्ध, प्रमोदरत, आह्लादित और आनन्दविभोर हो जाती है ? क्या तू स्वर्लोक तथा भूलोक के एक मधुर नाम मे मिल जाना चाहेगा ? अरे, (तब) मैं तेरे सामने शकुन्तला का नाम लेता हूँ और बस सब कुछ एक साथ ही कहा गया।" महाकवि के अनन्त गुणों का वर्णन कहाँ तक किया जाये। उनकी अमर वाणी सदा ही विश्व को आनन्दविभोर करती रहेगी।

कवि का जीवन वृत्त

खेद का विषय है कि इतने बड़े कवि के जीवन के सम्बन्ध मे अभी तक निश्चित रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता। "कालिदास" इस नाम का अर्थ है "काली अर्थात् दुर्गा का सेवक" सम्भव है यह नाम कवि के माता-पिता का ही रखा हुआ हो। इस नाम के नाम एक किम्वदन्ती प्रचलित है जिसके अनुसार यह कहा जाता है कि आरम्भ मे कवि निरक्षर अर्थात् सर्वथा अनपढ थे, दुर्गा देवी के प्रसाद से इन्होने विद्या मे प्रवीणता प्राप्त की। दूसरी किम्वदन्ती के अनुसार इनका सम्बन्ध लङ्का के राजा कुमारदास से स्थापित करती है किन्तु इसकी पुष्टि मे कोई सबल प्रमाण नही मिलता। तीसरी किम्वदन्ती के अनुसार इनका देहावसान धारा नगरी मे हुआ माना जाता है। इस प्रकार की जन-श्रुतियो मे कुछ सार प्रतीत नही होता फिर भी बाह्य प्रमाणो से यह अनुमान लगाया जाता है कि कालिदास का जन्म मालव देश मे हुआ था। क्योकि वे मेघदूत मे उज्जयिनी का बहुत ही हृदयहारी वर्णन करते है। कुछ विद्वान् उन्हें उज्जयिनी के महाराज विक्रमादित्य का समकालीन सिद्ध करते है। काली के दास होने के कारण बगाली लोग इन्हे बगाल का बताते है। अनेक प्रकार के कमलो के मनोरम वर्णन तथा हिमालय के अञ्चल मे स्थित अलकापुरी के मनोहर वर्णन से कुछ विद्वान इन्हे काश्मीर का बताते है। कुछ भी हो कवि के व्यापक भौगोलिक ज्ञान से इतना अवश्य अनुमान होता है कि कवि ने अनेक देशो का भ्रमण किया था।

ऐसा प्रतीत होता है कि कालिदास जाति से ब्राह्मण थे और उनके इष्टदेव शिवजी थे। मेघदूत में कई श्लोको मे शिव, भवानी और शिवजी के पुत्र कुमार कार्तिकेय का वर्णन आता है और शिव की तपस्या के स्थान तथा पार्वती जी के जन्म स्थान हिमालय पर्वत के वर्णन मे तो कवि ने अपने काव्य कौशल का अपूर्व चमत्कार दिखाया है। उनके ग्रन्थो से पता चलता है कि वे वेद, उपनिषद्, दर्शनशास्त्र, पुराण, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि समस्त शास्त्रो के प्रकाण्ड पण्डित थे। कवि की महत्ता इस बात से ही प्रकट होती है इतने विस्तृत रूप से सरस्वती की सेवा करके भी उन्होने अपनी जन्मभूमि के विषय मे कही भी कुछ सकेत नही किया। इस प्रकार की निरभिमानता महापुरुषो का लक्षण है।

कवि का समय

महाकवि कलिदास के समय का प्रश्न विद्वानो के लिये एक जटिल समस्या बनी हुई है। परम्परा के आधार पर कुछ विद्वान् कहते है कि कालिदास महाराज विक्रमादित्य की सभा की शोभा बढाने वाले नौ रत्नो मे से एक थे। इसकी पुष्टि मे निम्नलिखित श्लोक प्रस्तुत किया जाता है—

धन्वन्तरि क्षपणकामरसिंह शंकु वेतालभट्ट घटकर्पर कालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥

अपने प्रसिद्ध नाटक "विक्रमोर्वशीय"के नाम द्वारा तथा उस नाटक मे आई हुई कुछ पक्तियो से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि कवि किसी न किसी युक्ति से अपने आश्रय-दाता सम्राट् विक्रमादित्य की महिमा का ही वर्णन करते है। विक्रमोर्वशीय नाटक मे लिखा है—दिष्ट्या महेन्द्रोपकार पर्याप्तेन विक्रम महिम्ना वर्धते भवान्, अनुत्सेक खलु बिक्रमालङ्कार। अत यह युक्तिसङ्गत प्रतीत होता है कि महाकवि कालिदास महाराज विक्रमादित्य के आश्रय मे रहकर अपनी कीर्तिकौमुदी को देश देशान्तरो मे फैला सके। अब प्रश्न यह है कि ये महाराज विक्रमादित्य कब हुए ? इतिहास के विद्वानो ने इनके समय को भिन्न-भिन्न कालों मे निश्चित करके कलिदास के समय को छठी शताब्दी ईसवी से लेकर प्रथम शताब्दी ई० पूर्व तक घसीटा है। अत निश्चित रूप से तो कवि के काल के विषय मे कुछ भी नही कहा जा सकता। लोक प्रसिद्धियो मे भी कुछ तथ्य हुआ करता है। एक लोक प्रसिद्धि के अनुसार यह बात कुछ सत्य प्रतीत होती है कि महाराज विक्रमादित्य उज्जयिनी के राजा थे। उन्होने शको को हराया था और अपनी विजयपताका फहराने के लिये ५७ ई० पू० के विक्रमी सवत् का आरम्भ किया था। उज्जयिनी नरेश शिव के परमभक्त थे और कालिदास ने भी अपने आश्रयदाता के अनु-सार अपने ग्रन्थो मे अपने आराध्य देव महाकाल के प्रति अविचल भक्ति एव अशिथिल श्रद्धा व्यक्त की है।

कालिदास की अमर कृतियाँ

महाकवि कालिदास के ग्रन्थो मे तीन नाटक—

१. मालविकाग्नि मित्र
२. विक्रमोर्वशीय
३. अभिज्ञान शाकुन्तल

दो महाकाव्य—

४. कुमारसम्भव
५. रघुवश

दो खण्ड काव्य —

६. ऋतु सहार
७. मेघदूत

मालविकाग्नि मित्र—महाकवि कालिदास की सवप्रथम रचना 'मालविकाग्नि मित्र' है। इसमे पाँच अक है। शुङ्गवश मे उत्पन्न हुए महाराज अग्निमित्र की राजधानी विदिशा नगरी थी। महाराज की दो पत्नियाँ थी—धारिणी और इरावती। धारिणी के वसुमित्र नाम का पुत्र था और वसुलक्ष्मी नाम की एक कन्या थी। मालविका महारानी धारिणी की एक दासी थी। इस नाटक मे कालिदास ने बडे रोचक ढग से महाराज अग्निमित्र और विदर्भ देश की राजकुमारी मालविका की प्रेमगाथा का वर्णन किया है। यह एक सुखान्त नाटक है। अन्त मे दोनो का विवाह करके नाटक के पर्यवसान का निर्वाह कवि ने उत्तम रीति से किया है। धारिणी, इरावती, मालविका, वकुलावलिका, कुमुदिका,आचार्य गणदास, हरदत्त, गणदत्त, योगिनी आदि इसके मुख्यपात्र है।

विक्रमोर्वशी—'विक्रमोर्वशी' कविकुल गुरु कालिदास का दूसरा प्रसिद्ध नाटक है। इस नाटक मे भी पाँच अक है इसमे चन्द्रवशावतस महाप्रतापी महाराज पुरूरवा और अप्सरा उर्वशी के प्रणय सम्बन्ध के वर्णन मे कवि ने अपनी अनुपम नाट्यकला का प्रदर्शन किया है। विक्रमोर्वशी नाटक का कथानक अत्यन्त प्राचीन है क्योकि इसका वर्णन ऋगवेद, मनुस्मृति, पुराण, महाभारत आदि ग्रन्थो मे मिलता है। कवि ने अपना काव्य-कौशल दिखाते हुए मूल कथानक को कुछ परिवर्तित रूप दिया है। नाट्यकला की दृष्टि से कवि को इस नाटक के लिखने मे पूरी सफलता मिली है। इस नाटक मे हिरण्यपुर के रहने वाले केशी दैत्य से परमरूपवती उर्वशी को छुडाने के प्रसग मे कवि ने पुरूरवा के शौर्य का बहुत ही उत्कृष्ट वर्णन करके नारी जाति के उद्धार की पावन भावना को बहुत ऊँचा कर दिया है। महाराज पुरूरवा की वीरता का वर्णन करती हुई मेनका रम्भा को कहती है, "युद्ध मे सङ्कट आने पर अतुल पराक्रमशाली देवराज इन्द्र भी इन्हे सादर बुलाकर विजयिनी सेना का अधिनायक बनाते है।"

अभिज्ञान शाकुन्तल—कवि सम्राट् कालिदास का तीसरा नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तल' है। कवि का यह सर्वोत्तम नाटक है। इस नाटक की विचित्रता, रमणीयता और भाव-प्रवणता को देखकर किसी विद्वान् ने लिखा है .—

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्ररम्या शकुन्तला।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्क स्तत्र श्लोक चतुष्टयम् ॥

अर्थात् काव्यो मे नाटक रमणीय है और उन नाटको मे भी शकुन्तला नाटक सबसे उत्तम है और उस नाटक मे भी चतुर्थ अक और चौथे अक मे 'चार श्लोक'। इस नाटक मे सात अक है। इसमे पुरुवश के प्रतापी राजा दुष्यन्त और मेनका अप्सरा की पुत्री शकुन्तला के प्रणय, वियोग और पुर्नमिलन की कथा बडे मार्मिक ढग से लिखी है। इस नाटक मे धर्म और प्रेम के सुन्दर सम्मिश्रण का चारुचित्रण कर पति-पत्नी के पावन प्रेम को गरिमा के उच्च शिखर पर बिठा दिया है। इसीलिये इस नाटक को कवि का सर्वस्व कहते है। यह समस्त विश्व का हृदय हार बन गया है। विश्व के विशिष्ट ग्रन्थो मे इसे अग्रगण्य स्थान प्राप्त है। शृगार प्रधान होने पर भी इस नाटक मे सभी रसो का परिपाक बहुत उत्तम बन पडा है। चतुर्थ अङ्क मे जब शकुन्तला पतिगृह को प्रयाण करती है उस समय वीतराग कण्व ऋषि का कोमल हृदय पितृ-प्रेम से द्रवित हो उठता है। ऐसे ही आदर्श प्रसङ्गो के चित्रण मे कवि ने अपना परिपक्व नाट्य कौशल दिखाया है। इस नाटक की भाषा सरल, सरस, सुमधुर, भावपूर्ण, परिमार्जित, परिष्कृत और प्रसादमयी है। महाराज दुष्यन्त, शकुन्तला, कण्व, अनुसूया, प्रियम्वदा, माढव्य आदि इसके प्रधान पात्र है।

कुमार सम्भव—कालिदास का लिखा हुआ प्रथम महाकाव्य कुमार सम्भव है। इसमे १७ सर्ग है। इनमे प्रथम आठ सर्ग तो कालिदास के लिखे माने जाते है शेष नौ किसी अन्य कवि के किन्तु इस बात की पुष्टि मे कोई प्रमाण नही मिलता। इस महाकाव्य का आरम्भ उत्तर दिशा मे विराजमान, भारत के भाल, नगाधिराज हिमालय पर्वते अलौकिक वर्णन से होता है। कुमार सम्भव कवि की कमनीय काव्यकला की अति मनोहर सृष्टि है। उदात्त भावना, कोमल कल्पना, बसन्त का हृदयहारी बर्णन, विवाहिता जीवन के सुखद व्यवहारो का रोचक वर्णन, ऋतुराज के आगमन पर वन की शोभा का सुन्दर चित्रण, बटुवेष मे आये हुए शिव और तपस्विनी पार्वती का सुन्दर सम्वाद—इस महाकाव्य के विशेष गुण है। कालिदास की प्राय. सभी कृतियाँ शृगार प्रधान हैं किन्तु स्थान-स्थान पर कवि ने चरित्र के उज्ज्वल उदाहरण को भी प्रस्तुत किया है। कुमार सम्भव मे भी शिवजी और पार्वती के विवाह के वर्णन मे जहाँ कवि ने पति-पत्नी के सुरत के वर्णन मे शृगार-रस का वर्णन अतिशय रूप से किया है वहाँ उनके समागम से परम तपस्वी, शक्तिशाली कुमार कार्तिकेय का जन्म दिखाकर और उसके द्वारा तारकासुर का सहार कराकर आसुरी भावो पर दैवी भावो की विजय की पताका भी फहराई है तथा शिवजी के तीसरे नेत्र द्वारा कामदेव के भस्म करने की घटना द्वारा कवि ने यह सिद्ध किया है कि मानव-मन को कदर्थित करने वाली कामवासनाओ को भस्म किये बिना सच्ची शान्ति प्राप्त नही हो सकती, सुख का स्थायी साम्राज्य स्थापित नही हो सकता। वास्तव मे यही तो कुमार सम्भव का पावन सन्देश है।

रघुवंश—कालिदास के सब काव्यों मे ही नही अपितु अखिल सस्कृत साहित्य मे रघुवश एक अनुपम महाकाव्य है। इसमे १६ सर्ग है। इन सर्गो मे सूर्यवश के धीर, वीर, गम्भीर, तेजस्वी, ओजस्वी और प्रतापी राजाओ की गुणगाथा गूँथी गई है। इस महाकाव्य मे कालिदास की प्रौढता, परिपक्वता और ज्ञान गम्भीरता बडे सजीव ढग से प्रस्फुटित हुई है। पहले ६ सर्गो मे भगवान् राम के पूर्वजों—दिलीप, अज, रघु और दशरथ का मनोहर वर्णन है, १० से १५ तक राम के चारु-चरित्र का चित्रण, शेष सर्गों मे राम के वशजो का व्यापक वर्णन है। इन्दुमती का स्वयवर, इन्दुमती के निधन पर अज का मर्मस्पर्शी विलाप, राम और सीता की विमान यात्रा, निर्वासिता सीता का लक्ष्मण द्वारा सन्देश—ये इस महाकाव्य की विशेष घटनायें है जो अत्यन्त स्वाभाविक और रसपूर्ण है। इस महाकाव्य की शैली इतनी उदात्त है कि वह पाठक के भावुक हृदय पर अमिट छाप छोड़े बिना नही रहती। इस महाकाव्य पर अनेक टीकाये लिखी गई है।

ऋतु संहार—ऋतु सहार एक गीति-काव्य है। कालिदास की यह प्रथम रचना प्रतीत होती है। कुछ विद्वान कहते है कि यह ऋतु सहार कालिदास का लिखा हुआ नही किसी अन्य कवि ने लिखा है क्योकि इसमे कालिदास की सुन्दर, सरस, सरल एव भावपूर्ण भाषा का अभाव है और वह प्रौढता भी नही जो कालिदास के अन्य काव्यो मे पाई जाती है किन्तु इसके विपरीत कुछ विद्वान अब यह मानते है कि यह रचना कालिदास की है। कवि की प्रथम रचना होने के कारण उसकी भाषा, भाव, शैली मे वह प्राज्जलता, उदात्तता नही आ सकती। इस काव्य मे ऋतुओ का क्रमबद्ध वर्णन बडा ही मनोरम है। कवि ने अपने अपूर्व काव्य कौशल से यह दिखाया है कि सब ऋतुओ का प्राणियो पर क्या प्रभाव पडता है। ऋतु सहार मे ६ सर्ग और १४४ पद्य है। सस्कृत काव्य साहित्य मे ऋतुओ का क्रमपूर्वक वर्णन करने वाला एकमात्र काव्य ऋतु सहार ही है। ऋतु सहार का रमणीय ऋतु वर्णन प्रेमियो के हृदयो को अपनी विशेषताओ से आनन्दविभोर करता है। इस काव्य मे प्रकृति का चित्रण बड़े ही सजीव ढग से किया गया है। ऋतु सहार की प्रत्येक पक्ति मे कवि के उद्दाम यौवन का वेग प्रवाहित प्रतीत होता है। ललनाकुल ललामभूता रमणियो के हास-विलास का बड़ा ही मनोहारी वर्णन ऋतु सहार मे मिलता है। वर्षा ऋतु के वर्णन मे शस्य श्यामला वसुन्धरा का जो वर्णन कालिदास ने इस काव्य मे किया है वह साहित्य की एक अमूल्य थाती समझी जा सकती है।

मेघदूत— सस्कृत के गीति-काव्यो मे मेघदूत सर्वश्रेष्ठ है। इसमे कवि की प्रौढता पद-पद पर प्रस्फुटित होती प्रतीत होती है। इसमे १२१ पद्य है। इनमे कवि ने एक विरही यक्ष की दारुण मनोव्यथा का मार्मिक वर्णन किया है। यह गीति-काव्य दो भागो मे विभक्त है- पूर्वमेघ और उत्तर मेघ। यक्षेश्वर धनपति कुबेर ने अपने सेवक यक्ष को कर्त्तव्य मे प्रमाद करने के कारण एक वर्ष के लिए निर्वासित कर दिया। यक्ष अपनी

प्राणप्रिया से वियुक्त होकर असह्य वियोग की ज्वाला मे जलता हुआ रामगिरि पर्वत पर दिन व्यतीत करने लगा। जैसे-तैसे उसने आठ महीने बिताये। वर्षा के आने पर उसके हृदय मे धधकती हुई वियोग की ज्वाला तीव्र हो गई। उसने विवश होकर अपनी प्रियतमा को प्रणय-सन्देश भेजने के लिए मेघ को दूत बनाना चाहा। दयालु मेघ विरही यक्ष की प्रार्थना स्वीकार करता है और उसका प्रणय सदेश लेकर अलकापुरी को प्रस्थान करता है। पूर्व मेघ मे वह मेघ के लिए रामगिरि से अलका तक के मार्ग का मनोहारी वर्णन करता है और उत्तर मेघ मे अलकापुरी, अपने भवन तथा अपनी प्रिया की दयनीय विरह दशा का वर्णन कर अन्त मे अपना सन्देश सुनाता है। भारत के साहित्य मे ही नही अपितु विश्व के साहित्य में मौलिक कल्पना के आधार पर लिखा हुआ यह पहला गीतिकाव्य है। इसकी भाषा बडी ही भावपूर्ण एव परिमार्जित है। मेघदूत मे प्रकृति का बाह्य चित्रण बडा ही रोचक बन पडा है। उत्तर मेघ मे अन्त प्रकृति के वर्णन मे कवि ने अपनी प्रखर प्रतिभा का परिचय दिया है और किया है मानव-हृदय के गम्भीर भावो का विशद विश्लेषण।

संस्कृत खण्ड काव्य—सस्कृत साहित्य के आचार्यो ने काव्य के दो भेद बताये है—श्रव्य और दृश्य। श्रव्य काव्य उसे कहते है जिसे सुनकर रसिक जन रस का आस्वाद ले सके जैसे रामायण की कथा और दृश्य काव्य उसे कहते है जो आँखो से देखा जा सके अथवा जिसके अभिनय को रगमच पर देखकर सहृदय आनन्द की प्राप्ति कर सके। श्रव्य काव्य के तीन भेद है:—पद्य, गद्य, और चम्पू। चम्पू का लक्षण करते हुए आचार्य लिखते है—

"गद्य पद्य मय मिश्र चम्पूरित्यभिधीयते" अर्थात् गद्य और पद्य मय मिश्रित रचना को चम्पू कहते है। इसी प्रकार पद्य के भी दो भाग किये जा सकते है—**"महा-काव्य"** जैसे रघुवश, कुमार सम्भव, नैषधीय चरित्र आदि। **खण्ड काव्य** जैसे—ऋतु-सहार, मेघदूत आदि। खण्ड काव्य की परिभाषा लिखते हुए साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ पञ्चानन कहते है—

"खण्डकाव्य भवेत् काव्यस्यैक देशानुसारिच" अर्थात् खण्ड काव्य उसे कहते है जो महाकाव्य के एक अश का ही अनुसरण करे। अत खण्ड काव्य मे महाकाव्य के कुछ विषयो का ही वर्णन किया जाता है। महाकाव्य की अपेक्षा खण्डकाव्य का आकार भी छोटा होता है और विषय की दृष्टि से भी इसका विषय उतना व्यापक नही होता। कालिदास का मेघदूत खण्ड काव्य के अन्तर्गत ही समझा जाता है क्योकि महाकाव्य के लक्षण इसमे दिखाई नही देते और विषय की व्यापकता की दृष्टि से भी यह महाकाव्य कहलाने के योग्य नही। वल्लभ महोदय इसे **केलिकाव्य** कहकर ही सन्तोष करना चाहते है। किन्तु यह ठीक नही उज्जयिनी का विशद वर्णन करते हुए वहाँ की रमणियो की रतिक्रीडा का चित्रण कवि ने अवश्य किया है किन्तु यह मेघदूत का मुख्य वर्णनीय विषय नही। विरहानल की विकट ज्वाला मे जलते हुए यक्ष और उसकी प्यारी पत्नी

को हरदम केलि कैसे सूझ सकती है वहाँ तो प्राणो के लाले पड़े हुए थे। श्री स्थिर देव मेघदूत को क्रीडा काव्य कहना चाहते है किन्तु यह भी युक्ति सङ्गत नही। दूसरी बात यह है कि साहित्य-दर्पण और मम्भट भट्ट के काव्यप्रकाश मे काव्य की ये दोनो ही परिभाषाये नही मिलती। सस्कृत-साहित्य मे खण्डकाव्य थोडे ही है। इनका आरम्भ मेघदूत से होता है। अत यह कहना उचित होगा कि खण्डकाव्यो की मुकुट मणि मेघदूत ही है। कालिदास के ऋतु सहार की गणना खण्डकाव्यो मे ही की जाती है। घटकर्पर काव्य, चौरपञ्चाशिका, शृगार-शतक, शृङ्गार तिलक, अमरुशतक, सूर्यशतक, गीत-गोविन्द, भामिनी विलास आदि ग्रन्थ भी खण्ड-काव्य के अन्तर्गत ही आते है।

संस्कृत मुक्तक काव्य—सस्कृत साहित्य मे सौन्दर्यपूर्ण स्वतन्त्र पद्यो की रचना सदा प्रचलित रही है किन्तु वास्तव मे देखा जाये तो खण्डकाव्य ही मुक्तक काव्य के अधिक निकट पहुँचता है। मुक्तक काव्य को दो भागो मे बाँटा जा सकता है।

१. **स्तोत्र**—छोटी-छोटी धार्मिक कविताये जिनमे आराध्य देव की स्तुति होती है।

२ **शृङ्गारिक मुक्तक**—इस प्रकार के मुक्तक काव्यो का आरम्भ मेघदूत से ही होता है। इन दोनो मे से शृङ्गारिक मुक्तक काव्य ही विशेष रूप से प्रचलित है। इसमे मुख्य रूप से प्रकृति और शृङ्गार का ही चित्रण होता है। पर्वत, वनस्पति, विविध प्रकार के फूल, मोर, चोर, चकोर, कोकिल, चक्रवाक आदि वर्णन होने के कारण मेघदूत पूर्णरूप से सस्कृत मुक्तक-काव्य कहलाने का अधिकारी है।

मेघदूत की कथा का आधार

कालिदास के कुमार सम्भव, रघुवश तथा अन्य ग्रन्थो का आधार इतिहास अथवा कथावृत्त है किन्तु मेघदूत के विषय मे तो यही कहा जा सकता है कि यह कवि की अपनी मौलिक कल्पना है। कवि ने मेघदूत की कथावस्तु किसी अन्य पूर्व पुस्तक से नही ली है वह केवल उसकी निजी कल्पना का विस्तार मात्र है। कवि ने इस काव्य मे यक्ष का नाम नही लिया और न उसके अपराध का स्वरूप बताया। यदि वह चाहता तो ये दोनो बाते अपने काव्य मे स्पष्ट रूप से लिख देता। अत यह स्पष्ट है कि मेघदूत की पृष्ठभूमि नितान्त मौलिक और लाक्षणिक है इसके माध्यम से कवि अपने प्रिय परिचित स्थानो का मनोहारी वर्णन करके अपने पाठको की मनस्तुष्टि करना चाहता है और प्रेमी-प्रेमिकाओ के प्रथम-वियोग से पैदा होने वाले भावो का चित्रण प्रस्तुत करना चाहता है। ऐसा ही करने मे कवि का मुख्य उद्देश्य निहित प्रतीत होता है।

कुछ विद्वान् अनुमान लगाते है कि मेघदूत की घटना कवि के अपने जीवन की घटना है। महाराज विक्रम की सभा मे कभी उसने कर्तव्य मे प्रमाद किया होगा और राजा ने उसे यक्ष की तरह निर्वासित कर दिया होगा अथवा त्रिदर्भ नरेश प्रवरसेन की सभा के निवास समय मे काश्मीर मे निवास करती हुई अपनी प्रिय पत्नी को लक्ष्य

करके यह काव्य लिखा होगा किन्तु इस प्रकार की बातो मे कोई बल नही प्रतीत होता। वास्तव मे कालिदास जैसे उच्चकोटि के मर्मज्ञ कवि के लिये यह सर्वथा स्वाभाविक प्रतीत होता है कि वह मेघदूत की घटना को विशुद्ध मौलिक कल्पना से ही उद्भूत कर सके। प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ कहते है कि रामायण मे हनुमान जी द्वारा प्रेषित किये गये रामचन्द्रजी के सन्देश के आधार पर कालिदास ने भी मेघदूत की वैसी ही रचना की है। "सीता प्रतिहनूमत्सन्देश मनसि निधाय मेघसन्देश कवि कृतवानित्याहु" ठीक है इन शब्दो से ऐसा अनुमान लगाना सुगम है किन्तु मेघदूत तो कवि की अपनी निराली अन्तर्दृष्टि और मौलिक कल्पना का ही परिणाम है। कुछ समालोचना करने वाले विद्वान् कहते है कि वर्षा ऋतु के वर्णन मे रामायण और मेघदूत मे पर्याप्त समानता पाई जाती है जैसे —

मेघाभिकामा परिसंपतन्ती संमोदिता भाति बलाक पंक्ति।
वातावधूता वर पौण्डरीकी लम्बेव माला रचिताडम्बरस्य ॥

रामायण के इस श्लोक का भाव मेघदूत की निम्नलिखित पक्तियो मे पाया जाता है :—

नूनभा बद्धमाला सेविष्यन्ते नयनसुभग खेभवन्तं बलाका ।

इसी प्रकार रामायण मे "प्रवासिनो यान्ति नरा स्वदेशान्" जो इस प्रकार का वर्णन मिलता है उसी भाव का मेघदूत मे निम्न पक्तियो मे पाया जाता है —

"यो वृदानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानाम्"

इस तुलना से यह तो कहा जा सकता है कि बाल्मीकि रामायण आदि समस्त सस्कृत साहित्य के अवगाह न करने वाले कवि कालिदास ने रामायण से कुछ सकेत ग्रहण किया हो किन्तु यह कहना कि मेघदूत का एकमात्र आधार रामायण ही है—कवि की पैनी प्रतिभा अन्तर्व्यायिनी दृष्टि और उसकी मौलिक कल्पना की अवहेलना करना है।

पूर्व मेघ की कथा—अलकापुरी का अधिपति यक्षेश्वर कुबेर अपने सेवक यक्ष को कर्तव्य मे प्रमाद करने के कारण एक वर्ष के लिये निर्वासित कर देता है। वह विरही यक्ष निर्वासन के दु खमय दिनो को बिताने के लिये रामगिरि के आश्रम मे निवास करता है और वही पर जैसे तैसे आठ महीने व्यतीत करता है। एक दिन वह आषाढ महीने के आरम्भ मे पहाड की चोटी पर बैठे हुए हाथी के समान बड़े शरीर वाले मेघ को देखता है यक्ष ने यह विचार करके कि मेघ उत्तर दिशा की यात्रा करते हुए अलका भी अवश्य जायेगा, अपनी प्रिया के पास अपना प्रणय-सन्देश भेजने के लिये मेघ को दूत बनाने का निश्चय किया और अवसर प्राप्त कर यक्ष ने मेघ से प्रार्थना की कि हे मेघ! तुम मघवा अर्थात् इन्द्र के प्रधान पुरुष और पुष्करावर्त कुल मे उत्पन्न हुए हो अर्थात् अतिकुलीन हो। अत. तुम्हारे जैसे उत्तम कुलोत्पन्न तो सन्तप्तो के दु.खो

को दूर किया ही करते है। मेघ का गन्तव्य स्थान अलकापुरी था। मार्ग मे उसे प्रवासियो की पत्नियो के वियोग दु ख को दूर करने का अवसर भी प्राप्त होगा क्योकि मेघ मे यह शक्ति है कि दूर देश मे गये पतियो को घर लौटने के लिये आतुर कर सकता है। उस समय शकुन भी अच्छे हो रहे थे। यह बात यक्ष के हित मे थी, शीतल, मन्द सुगन्ध वायु चल रही थी, बाँई ओर पपीहा मधुर शब्द कर रहा था। बल्मीक के अग्रभाग से इन्द्रधनुष निकल रहा था। मेघ की यात्रा सर्वथा सुखद एव मङ्गलमय होगी क्यो कि मार्ग मे सारस उसका स्वागत करेंगे,और हस कमलनाल का पाथेय लेकर कैलास पर्वत तक उसका साथ देगे। यक्ष पत्नी अपने पति के साथ पुर्नमिलन की आशा से जीवन धारण किये हुए प्रतीक्षा कर रही होगी। अब यक्ष रामगिरि आश्रम से अलकापुरी तक जाने का मार्ग बताते हुए मेघ को कहता है कि हे मेघ ! तुम उस दिव्य-नगरी अलका को जा रहे हो। वहाँ नगर के बाह्योद्यान मे शिवजी की मूर्ति के सिर पर जडी-चन्द्रिका से शहर के सब प्रासाद चमकते रहते है। आकाश मे जाते हुए तुम्हे परदेसियो की पत्नियाँ, मुख पर खुले बालो को हटाकर, उत्सुकता-भरी आँखो से तुम्हे स्थिर दृष्टि से देखेंगी; तुम्हे देखकर वे मन मे धैर्य धारण करेंगी कि अब वर्षा ऋतु का आरम्भ हो गया है, हमारे पति अब घर लौट आयेगे। मुझ जैसे परतन्त्र के अतिरिक्त कौन ऐसा कठोर हृदय होगा जो तुम्हारे आने पर भी अपनी पत्नी की उपेक्षा करेगा। तुम अव्याहत गति हो, सब जगह तुम आसानी से पहुँच सकते हो। इसलिए तुम अवश्य ही मेरी प्रिया को मिल सकोगे जो शाप के शेष दिनो के गिनने मे लगी होगी और मेरे लौट आने की आशा मे जीवित होगी। प्राय स्त्रियो के प्रेमपूर्ण तथा सुकोमल हृदय को आशा पाश ही धैर्य प्रदान करता है नही तो विरह से सन्तप्त होकर उनका हृदय एकक्षण भी नही रह सकता। अब तुम्हे आम्रकूट पर्वत पर जाना होगा। कुछ देर उसके शिखर पर विश्राम करना, वह तुम्हारा बडा आदर करेगा। तुमने कई बार वहाँ के वनो की दावाग्नि को अपनी मूसलाधार वर्षा से शान्त किया है। कोई नीच भी आये हुए पुरुष को, पहले किये हुए उपकार के कारण यथोचित आदर करने मे कसर नही उठा रखता फिर आम्रकूट पर्वत तो बडा उच्च है, उसका तो कहना ही क्या। देखो मेघ ! पके हुए फलो से लदे हुए आम्रवृक्षो से घिरा हुआ आम्रकूट पर्वत तुम्हे पीला-सा प्रतीत होगा, उसके शिखर पर जब तुम चिकनी वेणी के समान अपने श्याम वर्ण के साथ बैठोगे, तब वह पर्वत देवताओ के दम्पितयो को ऐसा दिखाई देगा मानो वह पृथ्वी का स्तन हो जो बीच मे काला हो और चारो ओर पीला। उस आम्रकूट पर्वत की जिन कुंजो मे जगली लोगो की स्त्रियाँ घूमा करती है वहाँ तुम थोडी देर ही ठहरना। जल की वर्षा करने के कारण तुम हल्के हो जाओगे और फिर तेज चाल से अगला मार्ग पार कर सकोगे। इसके पश्चात् पत्थरो से ऊबड़-खाबड विन्ध्य पर्वत के पठार पर बहुत-सी धाराओ मे प्रवाहित होती हुई रेवा नदी मिलेगी जो ऐसी प्रतीत होगी मानो किसी ने हाथी के शरीर पर भभूत की लकीरो से शृगार किया हो। जब तुम वहाँ वर्षा करोगे तो समस्त प्रकृति प्रसन्न हो जायेगी उसमे नव-

जीवन का सचार हो जायेगा। कदम्ब वृक्ष नई कलियो से सुशोभित हो जायेगे और वनों मे से भीनी सुगन्ध निकलेगी मयूर नाचने मे मस्त हो जायेगे। विन्ध्य पर्वत की सुगन्धित चोटियो पर तुम कुछ समय ठहरना फिर वहाँ से दशार्ण देश को प्रस्थान करना। वहाँ तुम्हारे आने से बाडे केतक की कोमल कलियो से खिल उठेंगी। गाँव के पेड घोसला बनाने मे व्यस्त पक्षियो के कलरव से गूँज उठेगे। जगलो के प्रान्त भाग जामुन के पके फलो से काले दिखाई देगे। इसके पश्चात् हे मेघ! तुम दशार्ण देश की राजधानी विदिशा की यात्रा करना। वहाँ शीतल एव स्वादु सलिल वाली वेत्रवती नदी के जल का आस्वाद लेकर विदिशा के लोगो के क्रीडास्थल नीचैः पर्वत पर विश्राम करना। आगे तुम माधवी लताओ से व्याप्त वन नदी की ओर भी दृष्टिपात करना जहाँ बहुत-सी कुसुम सञ्चय करने वाली रमणियाँ तुम्हे देखकर प्रसन्न होगी क्योकि तुम उन्हे छाया देकर सुख पहुँचाओगे। वहाँ से चलकर तुम प्रसिद्ध नगरी उज्जयिनी की ओर प्रस्थान करना यद्यपि ऐसा करने मे तुम्हे कुछ टेढे-मेढे रास्ते पार करने पडेगे फिर वह नगरी इतनी वैभवशालिनी है कि यदि तुम वहाँ नही जाओगे तो इस भूभाग के सुरम्य स्थान के दर्शनो से वचित रहोगे। वहाँ से चलकर तुम भँवर-रूपी नाभि को दिखाकर आकृष्ट करने वाली और अपने मधुर कल-कल निनाद से तुम्हे प्रेमपूर्बक बुलाने वाले निर्विन्ध्या नदी के पास जाना और उसका अच्छी तरह उपभोग करके सिन्धु नदी के समीप पहुँचना जो पतिव्रता स्त्री के समान तुम्हारे वियोग मे क्षीण और सन्तप्त दिखाई देगी। तुम अपनी अमृतमयी वारिधारा से सूखी हुई उस सिन्धु नदी की कृशता को अवश्य दूर करना। वहाँ से तुम अवन्ति देश मे जाना और फिर उसकी राजधानी विशाला अर्थात् उज्जयिनी के दर्शन करना जो इस भूमण्डल पर स्वर्ग के एक उज्ज्वल भाग के समान है। इस दिव्य एव धनधान्य समृद्ध नगरी मे, बेचने के लिए प्रदर्शित मोतियो और बहुमूल्य मणियो की अतुल सम्पत्ति को प्रकट करने वाले बाजारो, धूप के सुगन्धित धुंओ से भरे हुए कमरो से युक्त भव्य भवनो और पुष्पों से सदैव सुवासित और रमणियो के अलक्तक राग से रँगे हुए छज्जो को देखकर तुम्हे अपार आनन्द आयेगा। उज्जयिनी के पास ही शिप्रा नदी है जो अपने शीतल जल से सुरत श्रान्त कामिनियो की थकावट को दूर करती है। इसी नगरी मे महा-काल का पावन मन्दिर है। इसके चारो ओर गन्धवती नदी है जिसमे वहाँ की रम-णियाँ जल-क्रीडा करती है और समीप के सुरम्य उपवनो मे तरह-तरह के बिहार कर स्वर्ण सुख का आनन्द लेती है। वहाँ तुम शिवजी के सामने नाचने वाली नर्तकियो के नाच का आनन्द भी लोगे। वे नर्तकियाँ तुम्हारी वर्षा की बूंदो से प्रसन्न होकर तुम्हारा धन्यवाद करेगी। वहाँ तुम शिवजी की सायंकालीन पूजा मे भाग लेकर पुण्य के भागी बनोगे। इसके पश्चात् हे मेघ! तुम रात किसी गगनचुम्बी प्रासाद की ढालू छत पर बैठकर विश्राम करना फिर गम्भीरा नदी की निर्मलधारा का आनन्द लेकर देवगिरि की ओर प्रस्थान करना। वहाँ देवगिरि पर्वत पर स्कन्द निवास करते है वे शिवजी के पुत्र है और इन्द्रदेव की सेनाओ के सेनापति है। तुम गङ्गा के जल से भीगे हुए फूलो

से उनकी पूजा करना और फिर त्वरितगति से रन्तिदेव के यश से उत्पन्न चर्मण्यवती नदी पर जाना। तत्पश्चात् तुम दशपुर की ओर अग्रसर होना। यह नगरी महाराज रन्तिदेव की राजधानी है। वहाँ की रूपवती रमणियो को अपना सुन्दर रूप दिखाकर प्रसन्न करना। उसके पश्चात् तुम ब्रह्मावती देश मे पहुँचकर कुरुक्षेत्र जाना, जहाँ अर्जुन ने अपने तीक्ष्ण बाणो से असख्य क्षत्रियो का बध किया था। वहाँ से चलकर तुम सरस्वती नदी के शीतल जल का पान करना और फिर हरिद्वार के समीप कनखल मे हिमालय पर्वत से नीचे आती हुई भगवती भागीरथी के पुण्य दर्शन करना। यह गङ्गा इस भूलोक पर अवतरण करने से पूर्व शिवजी की जटाओ मे निवास करती थी। वहाँ तुम हिमाच्छादित हिमालय के उच्च शिखरो पर पहुँचकर किसी सुन्दर हवादार स्थान पर विश्राम करना। वहाँ की शिलाओ को सुगन्धित करने वाले कस्तूरी मृग भी देखने को मिलेगे। वहाँ बाँस वायु से भरकर मधुर शब्द करते है और किन्नरियाँ अपने सुन्दर नाच से शिवजी को प्रसन्न करती है। तत्पश्चात् तुम सिद्ध गन्धर्वों से पूजे गये शिव के चरण न्यास की परिक्रमा करना क्योकि इसके दर्शनो से प्राणी भवबन्धन से छुटकारा पाकर अमर पदवी को प्राप्त होता है। तुम भी उसका लाभ उठाना। इसके पश्चात् हे मेघ ! तुम पर्वतराज हिमालय के विविध मनोरम दृश्यो का आनन्द लेते हुए परशुराम के यश को फैलाने वाले क्रौञ्चरन्ध्र को जाना फिर वहाँ से उत्तर दिशा की ओर बढना। इस प्रकार यात्रा करते हुए तुम शिव की तपस्या के स्थान कैलास पर्वत पर पहुँच जाना। इसी पर्वत के अञ्चल मे विपुल वैभव शालिनी अलकापुरी है। वही जाकर तुम मेरी प्रिया को मेरे प्रणय-सन्देश को पहुँचाना।

उत्तर मेघ की कथा—हे मेघ ! वह दिव्य-नगरी अलका अपने गगनचुम्बी सुन्दर प्रासादो से इस भूमण्डल की शोभा बढाती है। उसके भव्यभवनो के फर्श रत्नो से जडे हुए है, दीवारें रग-विरगे चित्रो से सजी हुई है और मृदङ्गो के मधुर निनाद से गुञ्जायमान हैं। उस नगरी की ऐसी विचित्र महिमा है कि वहाँ के रहने वाले हर्ष के ही आँसू बहाते है, यदि कभी वे शोकाकुल होते है तो प्रेम के कारण ही, और रतिकलह ही उनके वियोग का कारण होता है। वहा के रहने वाले यक्ष सदा तरुणावस्था का आनन्द लेते है, वे कभी बूढे होते ही नही। वहाँ के वृक्ष सदा पल्लवित और पुष्पित रह कर अपनी भीनी सौरभ से आस-पास के वातावरण को सुवासित करते रहते है वहाँ सब ऋतुये क्रम-क्रम से अपनी निराली छटा दिखाती है और वहाँ की सुन्दरियाँ ऋतुओ मे विकसित होने वाले तरह-तरह के फूलो से अपने कोमल कलेवरो को सजाती है। वहाँ के भवनो मे अपार सम्पत्ति भरी पडी है। वे भवन प्रज्वलित प्रदीपो के समान सदा जगमगाते रहते है। वहाँ के कल्पतरु तरुणियो को सुन्दर वस्त्र और आभूषण प्रदान करते है। वहाँ के भवनो की ऊँची छतो पर बैठकर यक्ष अपनी दयिताओ के साथ सुरापान का आनन्द लेते है। इस प्रकार की सुन्दर नगरी का वर्णन करके फिर यक्ष अपने घर की पहचान बताता हुआ मेघ को कहता है कि हे मेघ ! उसी अलकापुरी मे कुबेर के घर के उत्तर मे मणिमय तोरण वाला मेरा भवन है। उसके समीप ही मेरी

प्रिया द्वारा पुत्र के समान परिवर्धित पुष्पित एक बाल मन्दार वृक्ष है। उस नगरी में तुम्हे अनेक अनोखी वस्तुये देखने को मिलेगी। वहाँ मरकतमणियो से बने हुए सोपान वाली एक बावडी है और केलो के वृक्षो से घिरा हुआ मणियो की चोटी वाला एक क्रीडा पर्वत है। वहाँ एक लाल अशोक का वृक्ष है और सुन्दर बकुल वृक्ष—इन दोनो के बीच मे मेरी प्रिया के पालतू मोर के लिये एक यष्टि लटकी हुई है। मेरे भवन के द्वार की दोनो ओर शख और पद्म के चित्र है। हे मेघ ! इन चिन्हो से तुम मेरे घर को पहुँचान लोगे किन्तु मेरी अनुपस्थिति के कारण वह घर तुम्हे सूना-सा दिखाई देगा। जब तुम मेरे भवन में पहुँच जाओ तो तुम्हे वहाँ अकेली विरह विधुरा मेरी पत्नी मिलेगी। और वह पति-वियोग के दारुण दु ख को सहती हुई देहली पर इकट्ठे किये हुए फूलो को गिन-गिनकर समय बिताती होगी। हे मेघ ! मेरी पत्नी वियोग की व्यथा से व्यथित होने के कारण बहुत थोडा बोलती होगी और इतनी कमजोर हो गई होगी जैसे शिशिर से सुखाई हुई कमलिनी कान्तिहीन हो जाती है। तुम उसके पास जाकर गम्भीर शब्द करना और कहना कि मैं मेघ के रूप मे यक्ष का परम मित्र आया हूँ और लाया हूँ तुम्हारे लिये प्रणद-सन्देश मेरी प्रिया से कहना कि अभी मै जीवित हूँ और शाप की समाप्ति के अब थोडे दिन रहे है शाप समाप्त होते ही हम दोनो का फिर मधुर-मिलन होगा और मन की सब इच्छाये पूरी करेगे। ऐसा करने से उसे विश्वास हो जायेगा और तुम्हारी बात को ध्यान से सुनेगी। हे मित्र मेघ ! मै तुम्हारे दयालु स्वभाव को जानता हूँ। तुम पपीहो के माँगने पर उन्हे बिना उत्तर दिये ही जल देते हो। अत मैंने अपनी प्रिया के पास अपना प्रणय सन्देश भेजने के लिये जो प्रार्थना तुमसे की है वह उचित हो अथवा अनुचित, तुम्हे पूरी करनी ही होगी इसके बाद वर्षा ऋतु आने पर अपनी शोभा को बढाकर अनेक देशो मे भ्रमण करना। मैं प्रार्थना करता हूँ कि तुम अपनी प्राण प्यारी बिजली से कभी क्षणभर के लिये वियुक्त न हो जैसे मैं अपनी प्रियतमा के वियोग से दु खी हो रहा हूँ। अलकापुरी मे यक्ष के भवन मे पहुँचकर मेध ने दिव्यवाणी द्वारा यक्षिणी की प्राणरक्षा के लिये वह सन्देश सुना दिया। उस प्रणय-सन्देश को सुनकर वियोगिनी यक्ष पत्नी का हृदय कमल के समान खिल गया और वह अपने पति के शुभागमन की प्रतीक्षा करने लगी।

मेघदूत की भाषा—साहित्य शास्त्र के आचार्यों ने भाषा के सौन्दर्य मे अभिवृद्धि करने वाले तीन गुण बताये है—माधुर्य, ओज और प्रसाद कालिदास की अनुपम कृति मेघदूत मे माधुर्य और प्रसाद गुण स्थान-स्थान पर अपने वास्तविक रूप मे प्रस्फुटित होते हुए दिखाई देते है। सस्कृत के गीति-काव्यो में मेघदूत का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। कवि की कमनीय कोमल कल्पना का चारु चित्रण जैसा मेधदूत मे हुआ है उसके अनुरूप ही भाषा भी बडी सरल, सरस, सुमधुर, प्राञ्जल, प्रवाहपूर्ण, परिमार्जित एव परिष्कृत दिखाई देती है।

वास्तव मे मेघदूत एक अनुपम एवं अद्भुत काव्य है। उसके ललित शृंगार

प्रवाह के अन्तस्तल में रहस्यमयी माधुरी की गुप्तधारा प्रवाहित हो रही है। समग्र सस्कृत साहित्य मे ऐसी सरस रचना, एव सुकुमार कल्पना अन्यत्र दुर्लभ है। सुर भारती की सुन्दरता, मधुरता, रोचकता, प्रसाद पूर्णता देखनी हो तो मेघदूत का प्रेम-पूर्वक अनुशीलन करना चाहिए। विरह व्यथा के गीत गाते हुए मेघदूत के सगीतमय श्लोको का पदलालित्य अलौकिक माधुर्य का सचार करता है। उसके मन्दाक्रान्ता छन्दो का मृदु मधुर नाद सौदर्य का सागर है। मेघदूत की कोमल कान्त पदावली ससार के साहित्य मे दुर्लभ है। अनुप्रास के प्रयोग मे कवि सिद्धहस्त है। विपुल वैभवशालिनी उज्जयिनी के वर्णन मे कवि ने लिखा है :—

"पूर्वोद्दिष्टा मुपसर पुरीं श्री विशालां विशालाम्"

अर्थात् हे मेघ ! तुम पहले बताई गई श्री अर्थात् सम्पत्ति से विशाल विशाला अर्थात् उज्जयिनी को जाना। शब्द सौष्ठव की कैसी सुन्दर छटा है। इसी प्रकार अन्य श्लोकों में भी कवि ने शब्दो के चयन मे अपने अपूर्व काव्य कौशल का परिचय दिया है जैसे —

मन्दं मन्दं नुपति पवनश्चानुकूलो यथात्वां
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः।

प्रियतमा से वियुक्त होने के कारण यक्ष की कृशता की समता बताता हुआ कवि कैसी अनुप्रासपूर्ण भाषा का चित्रण करता है। यहाँ उत्तर मेघ के बयालीसवें श्लोक की पहली और अन्तिम पक्ति लिखी जाती है:—

अंगेनांगं प्रतनुतनुना गाढ़तप्तेन तप्तं
सकल्पैस्तैर्विशिति विधिना वैरिणारुद्ध मार्ग· ॥

इसी प्रकार मेघदूत मे बहुस से पद्य हैं जिनमे सरस शब्दो की समता, स्वर सौष्ठव और कोमल स्वर लहरी देखने को मिलती है।

मेघदूत की शैली—साहित्य शास्त्र के आचार्यों ने तीन रीतियो का वर्णन किया है—वैदर्भी, गौडी और पाञ्चाली। महाकवि कालिदास ने अपने सभी ग्रथो मे वैदर्भी रीति का ही प्रयोग किया है। आचार्यो ने वैदर्भी रीति का लक्षण निम्न प्रकार किया —

माधुर्य व्यञ्जकैर्वर्णैः रचना ललितात्मका।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भीरीति रिष्यते ॥

इस लक्षण के अनुसार कालिदास की शैली ललित, मधुर एव प्रसादपूर्ण है। वास्तव मे यही कहना ठीक होगा कि कालिदास की सब अमर कृतियो में सस्कृत काव्य शैली अपने सुन्दरतम रूप मे प्रस्फुटित हुई है। कालिदास की शैली क्लिष्टता एव कृत्रिमता से रहित होने के कारण स्वाभाविक एव सहज सुन्दर है। अपनी अनुपम कल्पना कुश-

लता से कालिदास ने शब्द चित्रो का जो चारु-चित्रण किया है वह दर्शनीय है। वे मानव हृदय की कोमल भावनाओ के उसकी उत्सुकता और व्याकुलता के तथा उसके भिन्न-भिन्न प्रकार के भावावेशो के चतुर चितेरे थे। अन्तर्जगत् के साथ सूक्ष्म जगत् का सुन्दर सुखद सामञ्जस्य स्थापित करने मे वे सिद्धहस्त थे। मेघदूत इस भाव का ज्वलन्त उदाहरण है। मेघदूत मे उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलकारो का भावपूर्ण चित्रण है। अथवा यों कहना चाहिए कि मेघदूत के अधिकाश पद्यो मे उत्प्रेक्षा ही प्रेक्षणीय है। उत्प्रेक्षा अलंकार की अनुपम छठा से शोभित कुछ पद्य प्रस्तुत है —

प्राप्यावन्तीनुदयन कथा कोविदग्रामवृद्धा—
न्पूर्वोद्दिष्टामुपसर पुरीं श्री विशालां विशालाम् ।
स्वल्पीभूते सुचरित फले स्वर्गिणां गांगतानाँ
शेषैः पुण्यहृं तमिव दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम् ॥

अर्थात् वह धनधान्य से पूर्ण रम्य नगरी उज्जयिनी ऐसी है मानो स्वर्ग मे पुण्यात्माओ के पुण्य समूह के कम रह जाने पर अपने शेष पुण्यो के प्रभाव से इस कान्ति वाले उज्ज्वल स्वर्ग-खण्ड को पृथ्वी पर ले आए हो।

छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै —
स्त्वय्यारूढें शिखर मचलः स्निग्धवेणी सवर्णे ।
नूनं यास्यत्यमर मिथुन प्रेक्षणीयामवस्थां
मध्ये श्यामः स्तन इवभुवः शेष विस्तार पाण्डुः ॥

अर्थात् हे मेघ ! देखो, पके हुए फलो से लदे आम के वृक्षो से घिरा हुआ आम्रकूट पर्वत विशाल दीलासा देगा, उसकी चोटी पर जब तुम चिकनी वेणी के समान अपने श्याम वर्ण के साथ बैठोगे, तब वह पर्वत देवताओ के दम्पत्तियो को अवश्य ऐसा दिखाई देगा मानो वह पृथ्वी का स्तन हो जो बीच मे काला और चारो ओर से पीला।

त्वय्यादातु जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्ण चौरे
तस्याः सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात्प्रवाहम् ।
प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनभावर्ज्यदृष्टी—
रेकं मुक्ता गुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम् ॥

अर्थात् हे मेघ ! जब श्रीकृष्ण का साँवला सलोना रूप चुराकर अर्थात् धारण करके चर्मण्वती नदी का जल पीने के लिए नीचे झुकोगे तब आकाश मे विचरण करने वाले सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष आदि को दूर से पतली दिखाई देने वाली उस नदी की स्थूल धारा के बीच सचमुच तुम ऐसे दिखाई दोगे मानो पृथ्वी के गले मे एक लडी मुक्ता-माला के बीच नीलम पिरोया हो।

तस्योत्संगे प्रणयिन इव स्त्रस्तगंगादुकूलां
न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन् ।

या वः काले वहति सलिलोद्गार मुच्चैर्विमाना
मुक्ताजाल ग्रथितमलकं कामिनी वाभ्रवृन्दम् ।।

अर्थात् हे स्वच्छन्ता से विचरण करने वाले मेघ ! अपने प्रियतम कैलाश-पर्वत की गोद मे पडी उस अलका सुन्दरी को तुम देखते ही पहचान जाओगे, जिसकी गंगा-रूपी साडी खिसक कर नीचे सरक गई है।

मेघदूत की सुन्दर शैली कालिदास की रुचिरता, भाव प्रवणता, मनोरजकता, विचार रमणीयता और प्रासादिकता का अद्वितीय उदाहरण है। वैसे तो सौन्दर्य और प्रेम का वर्णन अपने-अपने ग्रन्थो मे सभी कवियो ने किया है किन्तु मेघदूत मे वियोगी यक्ष और उसकी वियोगिनी पत्नी मे जो प्रेम-विह्वलता, जो व्यथा की मार्मिक कथा कालिदास ने दिखाई है उससे कवि की असाधारण प्रतिभा का परिचय मिलता है—

आधिक्षामां विरहशयने संनिषण्णैक पार्श्वां
प्राची मूलेतनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः ।
नीता रात्रि क्षण इव मया सार्धमिच्छारतैर्या
तामेवोष्णै विरहमहती मश्रुभिर्यापयान्तीम् ।।

अर्थात् हे मेघ ! देखो वह मेरी प्रियतमा मनोव्यथा के कारण सूने पलग पर एक करवट लेटी-लेटी ऐसी हो गई होगी जैसे कृष्णपक्ष की चौदह का चन्द्रमा हो। जो मेरे समागम के समय रात को एक क्षण की तरह व्यतीत करती थी, वह अब मेरे वियोग मे रात गरम-गरम आँसू बहाकर बिताती होगी।

परिमित पदी मे अनेक भावो की विशद व्याख्या करना मेघदूत की विशेषता है। विरह व्याकुला यक्षिणी की दयनीय दशा का भावपूण परिमित पदबद्ध चित्रण देखिए :—

उत्संगे वा मलिन वसने सौम्य निक्षिप्य वीणां
मद्गोत्रांकं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा ।
तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वाकथ
चिद्भूयो भूयः स्वयमपिकृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती ।।

हे सौम्य मेघ ! अलकापुरी जाकर तुम देखोगे कि मेरी प्रिया मैले कपडे पहने हुए, गोद मे वीणा लेकर कुछ ऐसे गीत गाने का प्रयत्न कर रही होगी जिनमे मेरे नाम का प्रयोग किया गया होगा। उस समय वह अपने नेत्रो के आँसुओ से भीगी वीणा को जैसे-तैसे पोछकर मेरी सुध आ जाने से ऐसी विह्वल हो जायेगी कि बार-बार अभ्यस्त की हुई अपनी मूर्च्छनाओ को भी भूल जायेगी। मेघदूत मे जहाँ कवि ने उत्प्रेक्षा अलकार का मनोरम वर्णन किया है वहाँ उपमाओ की भी झडी लगा दी है। "उपमा कालिदासस्य" इस उक्ति के अनुसार महाकवि अपनी सुन्दर उपमाओ के कारण विश्व मे विख्यात हैं। निम्न पद्य मे देखिए श्रौती पूर्णोपमा का चमत्कार.—

उत्पश्यामि त्वयि तटगते स्निग्ध भिन्नाञ्जनाभे
सद्यः कृत्तद्विरद दशनच्छेव गौरस्य तस्य ।
शोभामद्रेः स्तिमितनयन प्रेक्षणीया भवित्री
मंसन्यस्ते सतिहलभृतो मेचके वाससीव ।।

अर्थात हे मेघ ! तुम तो चिकने घुटे हुए काजल की चमक वाले हो, और कैलास पर्वत है तत्काल काटे हुए हाथी दाँत के टुकडे के समान श्वेत । जब तुम पर्वत के ऊपर पहुँचोगे तब मैं समझता हूँ कि यह शोभा एक टकटकी लगाकर देखने से ऐसे देखने योग्य बन पड़ेगी जैसे हलधर बलराम ने कधे पर काला कपडा रखा हो ।

मेघदूत के लिए "मन्दाक्रान्ता" छन्द चुनकर कवि ने अपनी काव्य-मर्मज्ञता का परिचय दिया है । यह छन्द लय और माधुर्य से परिपूर्ण है । वियोग की व्यथा तथा हृदय की करुण कथा को प्रकट करने मे और यात्रा मे यह छन्द सहायता करता है । इसीलिए साहित्य के आचार्यों ने कहा है —

"प्रावृट् प्रवास व्यसने मन्दाक्रान्ता विराजते" । इस छन्द मे १७ वर्ण होते है । चौथे और दसवे पर यति होती है । वर्णो का क्रम म, भ, न, त, ग, ग, होता है ।

मेघदूत मे बाह्य प्रकृति एवं अन्त प्रकृति का पर्यवेक्षण—मेघदूत मे प्रकृति तो कवि की चिरसहचरी सी प्रतीत होती है । कवि की मौलिक कल्पना के मूर्तरूप मेघदूत मे स्थान स्थान पर प्रकृति सुन्दरी की ललाल लीलाओ का ललित चित्रण करने मे कवि ने अपनी अलौकिक प्रखर प्रतिभा का परिचय दिया है । कवि की अन्तरात्मा प्रकृति की रमणीयता मे रमी हुई सी प्रतीत होती है । पूर्वमेघ का तो प्रत्येक पद्य प्रकृति के अनुपम सौदर्य का जीता-जागता चित्र है जिसमे मानव-हृदय के गूढभावो का भी सुन्दर समावेश है । मन्द-मन्द पवन, चातको का मधुर शब्द और पक्तिबद्ध बगुले प्रकृति के साथ सुन्दर तादात्म्य स्थापित करते हुए प्रकृति की शोभा बढा रहे है—

मन्दं मन्दंनुदति पवनश्चानुकूलो यथात्वां
वामश्चायं नदति मधुर चातकस्ते सगन्धः ।
गर्भाधान क्षण परिचयान्नू न माबद्ध मालाः
सेविष्यन्ते नयन सुभगं खे भवन्तं बलाकाः ।।

हे मेघ ! देखो, शकुन अच्छे हो रहे है, वायु भी तुम्हारे अनुकूल है, बाँई ओर पपीहा प्रसन्न होकर मधुर शब्द कर रहा है । नयनो को सुन्दर लगने वाले तुम्हारे रूप को देखकर बगुलियाँ गर्भधारण—का समय जानकर पक्ति मे खडी होकर तुम्हारी सेवा करेगी । अब देखिए प्रकृति की शोभा जिसमे मेघ के आने से चार चाँद लग जाते है —

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्यां
तच्छ्रुत्वा ते श्रवण सुभगं गर्जित मानसोत्काः।
आकैलाद्विस किसलयच्छेद पाथेयवन्तः
संपत्स्यन्ते नभसिभवतो राजहंसा सहायाः॥

हे मेघ! तुम्हारी गर्जना से खुंबी निकल आती है और वसुन्धरा हरी भरी हो होकर उपजाऊ बन जाती है। कर्ण प्रिय तुम्हारे गर्जन को सुनकर मानसरोवर जाने के लिए उतावले हुए हस अपनी चोचो से कमलनाल के टुकडो का सबल लेकर कैलाश पर्वत तक तुम्हारा साथ देगे। वास्तव मे मेघ और प्रकृति का तो सम्बन्ध ही अटूट है। प्रकृति तो मेघ की प्रेमपात्र है। शीतल, मन्द सुगन्ध, वायु, पपीहो का कर्ण-मधुर शब्द, व्योम मे उडते हुए सारसो की मन्द मन्द गति, काले-काले मेघो की उन्मत्त करने वाली गर्जना मानसरोवर को जाने के लिए उत्सुक हसो की पक्ति, रामगिरि के आश्रमो मे वर्षा की अजस्रधारायें, वल्मीक के अग्रभाग से निकलता हुआ इन्द्रदेव का धनुष, पहली वर्षा के कारण नये जुते हुए खेतो से उठती हुई सोधी सुगन्ध, दावानल का दारुण दृश्य और उसको शान्त करने वाले मेघो की मधुर लीला, पके फलो से लदे होने के कारण उल्लसित पहाड, वन पर्वतो मे से प्रवाहित होती हुई नदियो का कलकल निनाद, कदम्ब कुसुमो और कदलीस्तम्भो की निराली शोभा, हरिणो का हृदयहारी स्वतन्त्र विचरण, मयूरो का उल्लासपूर्ण नृत्य पक्षियो का कलरव, मेघो का नदियो के स्वादुजल का पान, मेघो के आने पर नदियो की प्रफुल्लता अर्थात् जल से भर जाना और मेघो के तिरोहित होने के कारण उनका कृशकाय होना, शिप्रा नदी के तट का सुहावना दृश्य और उसके शीतल सलिल की पावनता, गन्धवती के सुगन्धित जलकणो से शीतल हुए महाकाल के उपवनो की निराली छटा, बिजली की चमक, बादल की दमक, गम्भीर नदी के पवित्र जल,अजीरो को पकाने वाला शीतल पवन, गिरिराज हिमा-लय से भगवती भागीरथी का इस भूलोक पर आने का सुहावना दृश्य, कही उन्मत्त हाथियो का सूँडो द्वारा सुगन्धित समीर का पान करना आदि अनेक रमणीय प्राकृतिक दृश्यो के चित्रण से पूर्व मेघ भरा पडा है। उसमे आरम्भ से अन्त तक प्रकृति नटी की मधुर लीलाओ का ही अभिनय दृष्टिगोचर होता है। पूर्व मेघ मे कवि ने अपने रम-णीय प्राकृतिक दृश्यो का वर्णन कर अपने देखे हुए भौगोलिक स्थानो को भी अपने वर्णन से अमर कर दिया है और प्रकृति की चारुता, रमणीयता दिखाने के साथ मेघ के अनन्त उपकारों का मनोरम वर्णन किया है। मेघ खेती का आधार है अत कृषको की स्त्रियाँ उसे आदर भाव से देखती है। मेघ के आने पर अर्थात् वर्षाकाल मे दूसरे देशो में गये हुए प्रणयी घर लौट आते है इसलिए पथिक बनितायें अपनी उत्कण्ठाभरी आँखों से मेघ के स्वागत के लिए अपनी पलके बिछाती हैं। कालिदास ने पूर्व मेघ मे केवल बाह्य प्रकृति का ही वर्णन नही अपितु उसके साथ उन्होने मानव हृदय की उच्च भावनाओ आकाक्षाओ का भी आदर्श उपस्थित कर पाठको के लिए देवताओ के प्रति

नम्रता और श्रद्धा का पुण्य पाठ प्रस्तुत किया है। कवि ने जहाँ कामी और कामिनियों के उपभोग आदि के वर्णन मे शृगारप्रियता दिखाई है वहाँ महाकाल, देवगिरि, चरण-न्यास आदि धर्म स्थानो मे जाकर विनम्र भाव से भवभय बन्धन से छुटकारा पाने के लिए भी प्रेरणा की है। अत पूर्व मेघ मे मानवीय भावनाओ और प्राकृतिक भावो का बडा ही सुन्दर सुखद सम्मिश्रण दिखाया गया है। उत्तर मेघ मे भी कवि ने अलका तथा वहाँ रहने वाले नागरिको की विलासपूर्ण लीलाओ का वर्णन कर प्रकृति की रमणीयता दिखाई है किन्तु आगे चलकर कवि की वही कोमल, कमनीय कल्पना करुणा और सवेदना के रूप मे परिणत हो गई है। उत्तर मेघ मे कवि ने मानव-हृदय की जिन सूक्ष्म बातो और मनोव्यथा की गहराइयो का चित्र उपस्थित किया है वह मेघदूत की एक विशेषता है। यहाँ विरही यक्ष और विरह विधुरा यक्षिणी वियोग मे घुलते है और तरसते है पुर्नमिलन की मगलमय वेला मे किन्तु जैसे-तैसे जीवन को धारण किये रखते है। ऐश्वर्य के सब सामान उपस्थित होने पर भी विरह व्याकुलता से उनके प्रति उदासीनता दिखाना सच्चे प्रेम और सच्ची विरह वेदना का लक्षण है। यक्ष के भव्य भवन मे रहती हुई यक्षिणी पति वियोग के कारण चिन्तातुर है, कृशकाय है, थोडा बोलती है, और अपने दूर बैठे वियुक्त पति का चित्र खीचकर और मलिनवसना रहकर वीणा को गोद मे रखकर उसके गीत गाती है और अपने व्यथित मन को बहलाती है। कवि ने कैसा करुण चित्र उपस्थित किया है किन्तु उन दोनो ने कही भी धैर्यहीनता प्रदर्शित नही की। कवि ने अपने अपूर्व काव्य कौशल से यक्षिणी के चरित्र को कितना ऊँचा बना दिया है। पति के वियोग के लम्बे दिनो को वह गिन-गिनकर बिताती है, एक करवट लिए शय्या पर पडी पडी उसे क्षण भर के लिए भी नीद नही आती, उसने तेल आदि शृगार के सब साधनो का परित्याग कर दिया है, मैले वस्त्रो मे ही रहती है। निरन्तर वियोग की व्यथा से व्यथित रहने के कारण उसे खाना-पीना भी नही सुहाता, हृदयहीन होकर पति के नाम की माला जपती है। वास्तव मे कवि ने प्रकृति के सूक्ष्मभावो की अनुभूति को मानव-हृदय की गम्भीर सवेदना के साथ मिलाकर करुण रस की धारा प्रवाहित की है। कवि ने उत्तर मेघ को इस मानव हृदय को द्रवित करने वाले रस श्रेष्ठ की उद्गम भूमि-सा बना दिया है। वियोगी यक्ष और विरह विह्वला यक्षिणी के बाँयें-दाँये करुण रस का ही वातावरण दिखाई देता है। उत्तर मेघ का करुण रस अतिगम्भीर एव मर्मस्पर्शी है। यह हृदय मे तीव्र अन्तर्वेदना उत्पन्न करता है और यही वेदना हृदय के मर्मस्थल को चीरती हुई दारुण दु:ख का कारण बनती है। किन्तु कवि का कौशल इसी मे है कि उसने यक्ष और यक्षिणी के हृदयो मे इसे अमर्यादित और अनर्गल प्रलाप के रूप मे परिणत नही होने दिया। उत्तर मेघ मे काव्य की परिसमाप्ति पर यक्ष ने मेघ को आशीर्वाद देते हुए जो शब्द कहे है वे वास्तव मे बडे मर्मस्पर्शी और सवेदनात्मक है। यक्ष मेघ को कहता है—

"माभूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः"।

अर्थात् हे मेघ ! मेरी तरह तेरी प्रिया बिजली का वियोग तुमसे क्षण भर के

लिये भी न हो, अर्थात् मैं तो अपनी प्राण प्रिया के वियोग मे सन्तप्त हो रहा हूँ किन्तु तुमसे तुम्हारी पत्नी क्षण-भर के लिये भी अलग न हो। करुण-रस पूर्ण यह आशीर्वाद के वचन पाठक के हृदय पर कारुण्य की अमिट छाप छोडे बिना नही रह सकते।

मेघदूत की तो प्रकृति भी बडी करुणामयी है। यक्ष की करुण दशा को देखकर प्रकृति उसके साथ हार्दिक सहानुभूति प्रकट करती है। जब यक्ष स्वप्न मे अपनी प्रिया के गाढालिंगन के लिये शून्य आकाश मे हाथ फैलाता है तब वन देवियाँ उसकी इस दयनीय दशा पर मोतियो के समान आँसू की बडी-बडी बूंदे टपकाती है। मेघदूत मे स्थान-स्थान पर कवि ने यह दिखाया है कि मानव के सन्तप्त-हृदय को यदि कही सान्त्वना मिल सकती है तो एकमात्र प्रकृति के साहचर्य मे। यह है अन्त प्रकृति का मार्मिक वर्णन जिसके चित्रण मे कवि को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

मेघ का आदर्श चरित्र —महाकवि कालिदास ने प्राय' अपने सभी ग्रन्थो मे आर्य मर्यादा का पालन किया है और पाठको के सामने उच्च चरित्र का आदर्श उपस्थित किया है। अपने महाकाव्य रघुवश मे रघुवश के लोगों का चरित्र बहुत ऊँचा दिखाया है और यहाँ तक कह दिया है कि "योगेनान्ते तनुत्यजाम्" अर्थात् रघुवश के उदात्त चरित्र वाले लोग विशाल साम्राज्य की भोग लिप्सा को ठुकरा कर अपने उत्तराधिकारियो को राज्य का भार सौपकर जगल मे जाकर योग के द्वारा वे अपने प्राणो का त्याग करते थे। इसी प्रकार कुमारसम्भव मे शिवजी के द्वारा काम को भस्म कराकर यह सिद्ध किया है कि काम वासनाओ को भस्म किये बिना किसी को भी सच्ची शान्ति प्राप्त नही हो सकती। इसी प्रकार अभिज्ञान शकुन्तला मे भी महाराज दुष्यन्त के उज्जवल चरित्र का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

असशयं क्षत्र परिग्रहक्षमा,
यदार्यमस्यामभि लाषि मे मनः।
सतांहि सन्देह पदेषु वस्तु षु,
प्रमाणमन्तः करण प्रवृत्तय ॥

ललना कुल ललाम भूता शकुन्तला के रूप लावण्य पर मोहित होकर दुष्यन्त जब उससे विवाह की इच्छा करते है तब वे कहते है कि हो न हो यह किसी क्षत्रिय की कन्या है क्योकि मेरा **आर्यमन** इसकी अभिलाषा कर रहा है' 'मेघदूत मे भी कवि के चरित्र को एक आदर्श चरित्र बताया है।

जातं वंशे भुवन विदिते पुष्करावर्तकानां
जानामि त्वां प्रकृति पुरुषं कामरूपं मघोन।

इस श्लोक के अनुसार मेघ विश्व विख्यात पुष्कर और आवर्तको के उच्चवश मे उत्पन्न हुआ अर्थात् अति कुलीन है।

"सन्ताप्तानाँ त्वमसि शरणम्" इसके अनुसार वह दु खियो के दु ख को दूर करने वाला है, अति दयालु है। कवि की विचित्रता तो यही है कि उसने मेघ को एक आदर्श चरित्र वाले मनुष्य के स्तर पर ला खड़ा किया है। रूपक द्वारा कवि ने मेघ मे दयालुता, परोपकारप्रियता आदि मानवीय भावो की सृष्टि करके पाठको के सामने एक अद्भुत आदर्श चरित्र के भव्य-भवन की आधार शिला रख दी है जो युग-युग तक अपने अमर सन्देश को फैलाती रहेगी। मेघ अपनी जलधारा से खेती मे जान डाल देता है इसलिये वह ग्रामीण स्त्रियो के लिए आदर का पात्र है। पथिको की रमणियाँ उसको स्नेह-पूण नेत्रो से इसलिये देखती है क्योकि वही उनके पतियो को शीघ्र घर लौटाने मे समर्थ है। रामगिरि पर्वत भी उस मेघ का आदर करता है क्योकि प्रचण्ड मार्तण्ड से सन्तप्त पर्वतों की गर्मी को भी शान्त करता है और पर्वतीय वनो मे लगी हुई दावाग्नि को भी बुझाता है। कवि ने मेघ को इतना बुद्धिमान और शिष्टाचारमय दिखाया है कि वह मार्ग मे आने वाली शिप्रा, चर्मण्वती, गम्भीरा, निर्विन्ध्या आदि सभी नदियो के जल का आस्वाद करके उनको मान प्रदान करता है और स्कन्द आदि देवो की पूजा करके पुण्य लाभ करता है। वह महाकाल को प्रसन्न करके उसके आशीर्वाद से अपने जीवन को सफल बनाने के लिये सान्ध्य पूजा मे गर्जन कर ढोल का काम देता है। वह शिव के चरण न्यास पर जाकर अनिवर्चनीय आनन्द का उपभोग करता है। वह इतना दयालु है कि मार्ग मे आने वाले सभी प्राणियो को सुख देता है विशेष रूप से उन कन्याओ पर अपनी बूँदे गिराता है जो फूल चुनकर थक गई है। वह प्रत्येक पर्वत पर विश्राम करके आगे बढता है और उनके दु ख-दर्द मे सहायक होता है। नीति-निपुण मेघ "शठे शाठ्य समाचरेत्" इस नीति के पालन करने मे भी नही चूकता। यदि शरभ (अष्टापद मृग विशेष) उस पर हमला करते है तो मेघ उन पर ओलो की वृष्टि करके उन्हे तितर बितर कर देता है। सक्षेप मे हम यह कह सकते है कि कवि ने मेघ को दयालु, शिष्ट, परोपकारी, सन्तप्तो के सन्ताप को हरने वाले मानव के रूप मे चित्रित कर एक अपूर्व आदर्श उपस्थित किया है जो विश्व के साहित्य मे सर्वथा बेजोड़ है।

यक्ष का पावन प्रणय :—महाकवि कालिदास के ग्रन्थो मे जहाँ जहाँ शृगार का वर्णन हुआ हैं वहाँ उसने किसी न किसी रूप में नैतिकता, चरित्र की उत्कृष्टता और प्रणय की पावनता का परित्याग नही किया इसी प्रकार मेघदूत मे भी कवि ने अपनी शृगारमयी अलौकिक कमनीय कल्पना मे शिष्टता और नैतिकता का समावेश भी किया है। विरही यक्ष अपनी प्रियतमा के वियोग मे कृशकाय हो जाता है और उस तक अपने पावन प्रणय सन्देश को भेजने के लिए मेघ से अनुनय विनय करता है। इस प्रणय सन्देश मे वास्तव मे सात्त्विकता दिखाई देती है क्योकि यक्षिणी यक्ष की विवाहिता पत्नी है। उसकी प्राणेश्वरी अपने ललाम ललना सुलभ लालित्य से विधाता की प्रथम सृष्टि ही नही अपितु चित्रकला प्रवीण, सगीत कुशल पतिव्रता पत्नी भी है। यक्ष के प्रति उसका प्रेम प्रबल वासना से पूर्ण नही है अपितु उस दाम्पत्य प्रणय भ

गम्भीरता, पवित्रता, आचार सम्पन्नता और आकुलता है। उधर यक्ष की उत्कट-वासना, प्रेम पिपासा भी दीर्घकालीन वियोग की भट्टी मे तपकर सुसस्कृत, शुद्ध कुन्दन के समान विशुद्ध प्रणय मे परिणत हो गई है। वास्तव मे प्रेम की सच्ची परीक्षा वियोग के समय ही होती है। कालिदास ने मेघदूत मे वियोगी यक्ष और विरह विधुरा यक्षिणी के पावन प्रेम का चित्रण करके पति-पत्नी के स्तर को बहुत ऊँचा उठा दिया है इसीलिये विरही यक्ष की आकुलता हमारी आकुलता बन जाती है। प्रियतमा के प्रति उसकी उत्कट उत्कण्ठा हमारी उत्कण्ठा हो जाती है। अत प्रेम की एकात्मता, पावनता, अनुराग की अतृप्तता मेघदूत के प्रणय-सदेश की विशेषता है। प्रेमी-प्रेमिका के वियोग जन्य प्रेमोत्कर्ष का जैसा हृदयहारी वर्णन मेघदूत मे है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। महाकवि ने यक्ष-यक्षिणी के पावन प्रणय-सन्देश की सुन्दरता का वर्णन करते हुए सुमधुर सख्यभाव, हृदय की उदारता, कृतज्ञता, साधुता, करुणा, त्याग की अपूर्वता का भी अद्भुत चित्रण किया है। यही कारण है कि मेघ की गणना गीति काव्यो मे सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। समस्त काव्य ही सात्त्विक प्रेम की पावनधारा से परिप्लावित दृष्टिगोचर होता है। मेघदूत की इसी महिमा को देखकर कुछ विद्वानो ने तो यहाँ तक कह डाला है यदि कालिदास केवल मेघदूत ही लिखते तो भी वे विश्व विख्यात हो जाते अर्थात् उनकी लोकप्रियता मे कोई कमी न आती।

दूत काव्यो की परम्परा —सस्कृत साहित्य मे दूत काव्य का आरम्भ मेघदूत से ही होता है। अतः यह कहना सर्वथा उचित होगा कि इस दूत काव्य की सर्वथा नवीन एव मौलिक कल्पना सबसे पहले कालिदास के मस्तिष्क मे ही उद्भूत हुई। इसके अनुकरण मे आगे चलकर बहुत से दूत काव्य रचे गये। १७वी शताब्दी मे कृष्णमूर्ति ने यत्तोल्लास की रचना की वामनभट्ट ने हस सन्देश मे मेघ दूत की कथा का ही अनुकरण किया। इसी प्रकार ८वी श० ई० मे जैन कवि जिनसेन ने 'पार्श्वाभ्युदय' मे मेघदूत का ही अनुकरण किया। इसकी शैली मेघदूत की शैली के अत्यन्त समीप है। १२वी शताब्दी मे धोयी ने "पवनदूत" लिखा। इसके बाद तो दूत काव्यो का ताँता ही बँध गया। हंसदूत, नेमिदूत, कोकिल दूत, शीलदूत, उद्धभवदूत आदि अनेक दूतकाव्य लिखे गये। यह काव्य इतना लोकप्रिय हुआ है कि अब तक इसकी लगभग ५० टीकायें लिखी जा चुकी है। १०वी शताब्दी मे वल्लभ, १२वी शताब्दी मे स्थिरदेव, १३वी शताब्दी मे दक्षिणावर्त और १५वी शताब्दी मे मल्लिनाथ ने अपनी प्रसिद्ध टीका लिखी। कवि शिरोमणि कालिदास के ग्रन्थो का रहस्य पूरी तरह समझ मे न आता यदि मल्लिनाथ अपनी मर्मभरी टीका न लिखते। समस्त शास्त्र निष्णात महापडित मल्लिनाथ ने कवि के ग्रन्थो की गहराई के सम्बन्ध मे नम्र भाव से लिखा है :—

कालिदास गिरां सारं कालिदास-सरस्वती।
चतुर्मुखोऽथवा ब्रह्मा विदुर्नान्येतु मादृशा ॥

अर्थात् कालिदास की वाणी के सार को केवल तीन व्यक्ति ही समझ पाये है—एक तो विधाता, दूसरे वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती और तीसरे कालिदास स्वयम् । कवि की गम्भीर भावो से परिपूर्ण रचनाओ के रहस्य को बताने के लिए उन्होने अपनी अद्वितीय एवं पाण्डित्यपूर्ण 'सजीवनी' टीका लिखी । इसके सम्बन्ध मे मल्लिनाथ लिखते है :—

भारती कालिदासस्य दुर्व्याख्या विष मूर्च्छिता ।
एषा संजीवनी टीका तामद्योज्जीवयिष्यति ॥

अर्थात् कालिदास की गम्भीर वाणी दोषभरी टीका रूपी विष से मूर्च्छित हो चुकी है इसलिए मै सजीवनी टीका लिख रहा हूँ यह उसमे नवीन जीवन का सचार करेगी । सचमुच मल्लिनाथ की कृपा से कालिदास के ग्रन्थो मे जो अमूल्य रत्न छिपे हुए थे वे प्रकाश मे आये और कवि की मधुर वाणी का सब ने आस्वाद लिया ।

मेघदूत और पाश्चात्य विद्वान्:—महाकवि कालिदास के ग्रन्थो का आदर विदेशी विद्वानो ने भी किया है । मेघदूत की प्रसिद्धि का प्रबल प्रमाण यह है कि इसका प्रचार विदेशो मे अच्छा हुआ है । जर्मनी के कवि शिलर महोदय ने अपने "मेरिया स्टुअर्ट" नाम के नाट्य काव्य मे कालिदास का अनुकरण करके मेघ द्वारा सदेश भेजने का विचार प्रकट किया है । प्रो० मैक्समूलर ने इसका पद्यानुवाद जर्मन भाषा मे किया है और श्वेटज महोदय गद्य मे अनुवाद किया है । डाक्टर एच० बेक्ह ने तिब्बती भाषा मे मेघदूत का एक सस्करण प्रकाशित किया है । अमेरिका के आर्थर राइडर ने मेघदूत का अग्रेजी मे पद्यानुवाद करके इसकी ख्याति बढाई है । इसी प्रकार चीन आदि देशो मे भी इस काव्य का प्रचार हुआ है और सभी ने कवि की नितान्त मौलिक कल्पना की मुक्त कण्ठ से प्रशसा की है । वास्तव मे मेघदूत ने कवि की कीर्ति को सदा के लिए अमर बना दिया है और उसकी यह मधुर वाणी युग युग तक सहृदयो के हृदयो को अनिर्वचनीय आनन्द से आप्लावित करती रहेगी ।

मेघदूत

कविकुल शिरोमणि, कमनीय कविता कामिनी कान्त महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य गगन के उज्ज्वल नक्षत्र है। वे प्रकृति पर्यवेक्षण मे सिद्धहस्त है। कवि की प्रखर प्रतिभा प्रकृति के चारुचित्रण मे मुखरित होकर मानव एव प्रकृति मे सुन्दर सामञ्जस्य उत्पन्न कर देती है। वास्तव मे चेतना के मगलमय प्रभात मे कवि प्रकृति के प्रति सदा से सवेदनशील रहा है। सभ्यता के उष: काल मे सहृदय कवि ने अपने चारो ओर व्याप्त प्रकृति के गूढतम रहस्यो का अनुभव किया तब उसके हृदय मे उन रहस्यो को जानने की उत्कट इच्छा हुई। अपने सतत एव अनन्य निरीक्षण के के पश्चात् वह इस परिणाम पर पहुँचा कि प्रकृति सुन्दरी का सहवास परम सुखद एव अतुल आल्हाद कारक है और प्रकृति मे ही मानव के मृदुल मनोभावो के सन्तोष के लिए पर्याप्त सामग्री है। अतः कहना न होगा कि मानव को सर्वप्रथम प्रेरणा प्रकृति से ही प्राप्त हुई और उसने अपनी असीम सवेदन शक्ति को उद्‌बुद्ध कर आनन्द की अजस्र स्रोतस्विनी प्रवाहित की। कवि की यही अद्‌भुत शक्ति काव्य के रूप मे हमारे सामने आई। इस प्रकार शनै शनैः काव्य हमारे जीवन का एक आवश्यक अग बन गया और प्रकृति बन गई अभिन्न सहचरी। प्रकृति के प्रबल पुजारी महाकवि ने पूर्व मेघ मे प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य एव विचित्र चित्रण से यह सिद्ध कर दिया है कि सरिता, सरोवर, वन, उपवन पर्वतो के उत्तु ग शिखर, वाणी कूप, पशु पक्षी सभी मानव के समान वैयक्तिक रूप से अनुभूति का अपूर्व आस्वाद लेते है और कण-कण मे व्याप्त ब्रह्म सत्ता का अनेक रूपो मे साक्षात्कार करते है। कवि कुल तिलक कालिदास की सुन्दर, सुमधुर कविता से आर्य्य सस्कृति अनुप्राणित रही है और मानव भावनाओ को बल प्राप्त हुआ है।

अलकापुरी मे धन के स्वामी कुबेर के पास एक यक्ष काम किया करता था। उसका ध्यान सदा अपनी प्रियतमा मे लगा रहता था। इसी कारण एक बार उसने अपने काम मे प्रमादवश भारी भूल की। यक्षराज कुबेर ने उसे एक वर्ष के लिए निर्वासन का दण्ड दिया। इन्ही भावो को महाकवि ने अपने काव्य कौशल से पूर्व मेघ के प्रथम श्लोक मे बड़े मार्मिक ढग से दिखाया है :—

> **कश्चित्कान्ता विरहगुरुणा स्वाधिकार प्रमत्तः**
> **शापेनास्तंगमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः**
> **यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नान पुण्डयोद केषु**
> **स्निग्धच्छाया तरुषु वसति रामगिर्याश्रमेषु। (१)**

अर्थ—अपने कर्तव्य मे प्रमाद करने वाले, प्यारी पत्नी के वियोग के कारण असह्य बने हुए, एक वर्ष की अवधि वाले अपने स्वामी अर्थात् यक्षेश्वर कुबेर के शाप से नष्ट हुई महिमा वाले किसी यक्ष ने जनक सुता सीता के स्नान से पवित्र हुए जलो वाले, घनी छाया वाले वृक्षो से भरे हुए रामगिरि के आश्रमो मे निवास अर्थात् रहना आरम्भ किया ।

कश्चित्-कोई—इस श्लोक मे कश्चित् शब्द विशेष रूप से विचारणीय है । इस विषय मे ऐसी किम्वदन्ती है कि एक राजा की लडकी विद्योत्तमा बडी प्रतिभा-शालिनी थी । वह शास्त्रार्थ मे बडे बडे विद्वानो को पराजित कर देती थी । विद्योत्तमा की शर्त यह थी कि जो कोई उसे शास्त्रार्थ मे हरा देगा वह उसी के साथ विवाह कर लेगी । चिढकर पडितो ने सोचा कि इस अभिमानिनी लडकी के लिये कोई ऐसा वर ढूँढना चाहिये जो मूर्ख हो और इसे किसी न किसी युक्ति से हरा भी दे । अतः उन्होने एक ऐसे मनुष्य को देखा जो उसी शाखा को काट रहा था जिस पर वह चढा हुआ था । पण्डितो ने उसे नीचे बुलाकर कहा कि हम तुम्हारी शादी एक राजकुमारी से करा देंगे किन्तु उससे पहले तुम्हे उसे शास्त्रार्थ मे पराजित करना होगा । पण्डितो ने उसे समझाया कि शास्त्रार्थ के समय यदि लडकी एक अंगुली उठाये तो तू दो उठा देना । जब शास्त्रार्थ हुआ तो बहुत से पण्डित इकट्ठे हुए । शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ । जब लडकी ने भरी सभा मे शास्त्रार्थ करते हुए एक अंगुली उठाई अर्थात् ब्रह्म एक है तब उसके उत्तर मे पण्डितो के द्वारा तैयार किए हुए उस अशिक्षित मनुष्य ने एक अँगुली को उठा देखकर यह समझा कि यह देवी एक अँगुली से मेरी एक आख फोडना चाहती है, उसने दो अँगुलियाँ उठाई अर्थात् मैं दो अँगुलियो से तेरी दोनो आँखे फोड़ दूंगा । दो अँगुलियाँ उठाने का अर्थ पण्डितो ने यह बताया एक ब्रह्म ही नही दूसरा जीव भी होता है । इस प्रकार पण्डितो के द्वारा शास्त्रार्थ मे वह मूर्ख मनुष्य विजयी घोषित हुआ और विद्योत्तमा को उसके साथ विवाह करना पडा । विवाह के पश्चात् जब घर मे रहने लगा तो एक दिन ऊँट को देखकर विद्योत्तमा ने कहा, "उष्ट्र उष्ट्र अर्थात् ऊँट आया, ऊँट आया । पास मे बैठे हुए उस मूर्ख पति के मुख से शुद्ध उच्चारण के स्थान मे उट्र, उट्र ऐसा शब्द निकला । विद्योत्तमा समझ गई कि यह महामूर्ख है और उसका तिरस्कार किया । पत्नी से अपमानित होकर उस मूर्ख ने काशी जाकर बड़े परिश्रम से विद्या पढी और पूर्ण विद्वान होकर घर का दरवाजा खटखटाया और कहा, कि "अनावृत द्वार कपाट देहि" अर्थात् दरवाजा खोलो । इस विद्वत्तापूर्ण वाक्य को सुनकर पत्नी के मुख से ये शब्द निकले —

"अस्ति कश्चिद् वाग् विशेष"

(कोई वाणी पर विशेष अधिकार वाला मालूम होता है)

अपनी पत्नी के मुख से निकले हुए तीनो शब्दो पर तीन काव्य रचकर अपनी पत्नी का नाम भी अमर कर दिया और समस्त विश्व को सरस, सुमधुर काव्यामृत

पान कराकर तृप्त कर दिया।

"अस्ति" शब्द से महाकवि कालिदास कृत महाकाव्य "कुमार सम्भवम्" का आरम्भ होता है। उसके प्रथम श्लोक का प्रथम चरण है —

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा।
हिमालयोनाम नगाधिराज ॥

कश्चित् शब्द से अपनी अमर कृति मेघदूत का आरम्भ किया :

कश्चित्कान्ता विरहगुरुणा स्वाधिकार प्रमत्त.।

वाग्—इस तीसरे शब्द से कवि की अपूर्व कृति महाकाव्य रघुवंश का आरम्भ होता है।

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थ प्रति पत्तये ॥

कश्चित्—शब्द का दूसरा प्रयोजन :—

"क" यह अक्षर प्रजापति का वाचक है अत कुशल कवि ने 'मेघदूत" को मगलमय बनाने के लिये इस मागलिक शब्द का प्रयोग किया है जैसे कुमार सम्भव के आरम्भ मे "विष्णु" वाचक "अ" अक्षर का प्रयोग किया है।

कश्चित् शब्द के विषय में अन्य पक्ष :—

मेघदूत मे **यक्ष** का **नाम** कही भी नही आया। काले तथा अन्य विद्वान् कहते है कि मेघदूत जैसे काल्पनिक काव्य मे यक्ष के नाम बताने की आवश्यकता नही है किन्तु उनका यह मत युक्तियुक्त प्रतीत नही होता।

कुछ विद्वानो ने लिखा है कि कर्त्तव्य प्रमादी यक्ष का नाम लेना अशुभ था अत. निम्नलिखित श्लोक के आधार पर महाकवि ने "कश्चित" (कोई) कह कर ही काव्य का श्रीगणेश किया।

भर्तुराज्ञा न कुर्वन्ति ये च विश्वासघातका.।
तेषाँ नामापि न ग्राह्यं शास्त्रादौ विशेषत ॥

अर्थ—जो अपने स्वामी की आज्ञा की अवहेलना करते है और विश्वासघाती है उनका तो शास्त्र आदि के आरम्भ मे नाम ही नही लेना चाहिये।

इस युक्ति मे फिर भी कुछ बल है और काव्य की दृष्टि से औचित्य प्रतीत होता है फिर भी निम्नलिखित श्लोक कुछ अधिक उपयुक्त एव लोक व्यवहार के अनुकूल प्रतीत होता है।

न नाम ग्रहणं कुर्यात् कृपणस्य गुरोस्तथा।
अभिशप्तस्य पत्न्याश्च माता पित्रो विशेषत ॥

अर्थ—कजूस, गुरु, अभिशप्त, पत्नी और विशेष रूप से माता पिता का नाम

लेना अशुभ है।

इस श्लोक मे 'अभिशप्त' से स्पष्ट है कि यक्षेश्वर कुवेर ने क्रोधावेश मे कर्त्तव्य प्रमादी यक्ष को शाप दिया था और एक वर्ष के लिये उसे निर्वासित कर दिया। कुछ भी हो मेघदूत के आरम्भ मे महाकवि ने "कश्चित्" शब्द का प्रयोग कर अपने काव्य कौशल का परिचय दिया है और सहृदय पाठको के लिये सदा के लिए उत्सुकता पैदा कर दी है।

इसी श्लोक मे "कश्चित्', के पश्चात् कविकुल तिलक, रसिक शिरोमणि कालिदास ने अपनी प्रियतमा के लिये "भार्या" शब्द का प्रयोग न करके "कान्ता" शब्द का प्रयोग किया है और अपनी प्राणप्यारी के प्रति अनन्य अनुराग प्रकट कर विरहानल के प्रबल परिताप को शान्त करने मे मानवोचित सहृदयता एव सहानुभूति का प्रदर्शन किया है।

कालिदास ने पूर्वमेघ मे बाह्य प्रकृति का बहुत ही सजीव वर्णन किया है। उसने अपने अनूठे वर्णन के द्वारा प्रकृति के प्रत्येक मनोरम दृश्य के साथ एकरूपता दिखाई है। महाकवि के क्रमबद्ध एव उत्कृष्ट बाह्य प्रकृति के वर्णन से हमारे सामने सभी दृश्यो का एक मनोहारी चित्र उपस्थित हो जाता है। पूर्वमेघ की एक एक पंक्ति बाह्य प्रकृति के हृदयहारी चित्रण का निखरा हुआ रूप पाठक के समक्ष प्रस्तुत करती है। वियोग विह्वला दयिता की दयनीय दशा का स्मरण करके विरहानल की विकट ज्वाला से सन्तप्त यक्ष की दुर्बलता का मार्मिक वर्णन करते हुए कवि ने कोमल भावनाओ का जो कौशल दिखाया है वह वास्तव मे अन्यत्र दुलर्भ है। अपनी प्रेयसी के वियोग मे यक्ष की दुर्बलता दिखाते हुए कवि कहता है :

तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबला विप्रयुक्त सकामी
नीत्वा मासान् कनकवलयभ्रंशरिक्त प्रकोष्ठ.।
आषाढस्य प्रथम दिवसे मेघमाश्लिष्ट सानु
वप्रक्रीड़ा परिणतगज प्रेक्षणीय ददर्श ॥

अर्थ :—अपनी प्रियतमा से वियुक्त हुए, स्वर्ण के बने हुए कडो के नीचे खिसकने से खाली कलाई वाले उस कामातुर यक्ष ने उस पहाड पर कुछ महीने व्यतीत कर आषाढ मास के प्रथम दिवस मे पर्वत के शिखर पर छाये हुए अथवा चिपटे हुए और प्राचीर के खेल मे तिरछे झुके हुए गज के सदृश देखने योग्य सुन्दर बादल को देखा।

इस श्लोक मे महाकवि ने कामियों की दुर्बलता तथा कनकवलय के नीचे उतरने आदि के वर्णन मे कवि परम्परा का बहुत ही सुन्दर निर्वाह किया है। यक्ष कामी था अतः उसने सोने का कड़ा पहना था और वह वियोग व्यथा से दुर्बल होने के कारण अपने आप ही नीचे उतर आया था। सोने के कड़े के उतरने का वर्णन कालिदास के

प्रसिद्ध नाटक शाकुन्तल में भी आता है यथा :—

मणिबन्धात् कनकवलयं स्रस्तं स्रस्त मया प्रति सार्यते ।

आषाढस्य प्रथम दिवसे—विद्वद्वर मल्लिनाथ ने लिखा है—आषाढ नक्षत्रेण युक्ता पौर्णमासी आषाढी । आषाढा+अण्+डीप्=आषाढी पौर्णमासी इति आषाढो मास. । यह महीना जुलाई के आरम्भ मे आता है । भारत मे महीनो के भारतीय नाम नक्षत्रो के नाम पर रखे गये है । जैसे—चैत्र, पौष माघ. इत्यादि । महाकवि के वर्णन से प्रतीत होता है कि उसके समय मे आषाढ के आरम्भ मे वर्षा शुरू हो जाती होगी । वैसे नागपुर के आस पास के इलाको मे अथवा उत्तर प्रदेश मे भी आषाढ मे ही वर्षा आरम्भ हो जाती है । अतः कवि के वचन भावपूर्ण ही है ।

आदि कवि बाल्मीक ने वर्षा काल का मनोहारी वर्णन करते हुए लिखा है :—

क्वचित क्वचित्पर्वत सन्निरुद्धं
नभ प्रकीर्णाम्बुधरं विभाति ।

पुष्कल सलिल से भरे हुए काले काले मेघ आकाश मे अठखेलियाँ खेलते हुए बहुत ही सुहावने लगते है, घनगर्जन को सुन मत्तमयूर नाचने लगते है । पूर्वमेघ के निम्नलिखित तीसरे श्लोक मे मेघ की ऐसी ही मोहक महिमा दिखाकर भावुक कवि ने एक दूसरे से अलग हुए यक्ष और उसकी प्रिया की वियोगाग्नि को प्रदीप्त करने का अच्छा अवसर प्राप्त किया है । मतवाले मेघ को देखकर किसकी प्रणय पिपासा प्रदीप्त नहीं होती ? वियोगी यक्ष और उसकी विरह विह्वला पत्नी की विपुल वियोग व्यथा की करुणगाथा का मर्मस्पर्शी वर्णन करते हुए कवि कहता है :—

तस्य स्थित्वा कथमपिपुरः कौतुकाधान हेतो
रन्तर्बाष्पश्चिर मनुचरो राज राजस्य दध्यौ ।
मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेत:
कण्टाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूर संस्थे ।

अर्थ—कामवासना की उत्पत्ति के कारण बने हुए उस मेघ के सामने बडी कठिनता से खडे होकर रोते हुए कुबेर के सेवक उस यक्ष ने बहुत देर तक अपनी प्रिया का ध्यान किया अर्थात् कुछ देर तक उसी के ध्यान मे डूबा रहा । सच है मेघो को देखकर सुखी प्राणियो का चित्त भी व्याकुल हो उठता है फिर कण्ठ से लगाकर आलिंगन किये जाने वाले प्रिय व्यक्ति के दूर रहने पर वियोगी के मन की व्यथा का तो कहना ही क्या ?

मर्मज्ञ कवि सासारिक व्यवहार एव इष्ट जनो की मान मर्यादा का पालन करता हुआ यक्ष द्वारा मेघ के स्वागत का मनोरम एव भावपूर्ण चित्र उपस्थित करता है । आषाढ की समाप्ति पर श्रावण मास आ जायेगा और वियोग विधुरा प्रियतमा के जीवन की रक्षा के विचार से यक्ष अपने प्रियदूत मेघ की चमेली के सुगन्धित सुमनो से

पूजा करके प्रेम भरे वचनो से स्वागत करता है क्योकि प्रियतमा के पास प्रणय सन्देश पहुँचाने वाला मेघ ही तो है। अपनी प्रिया के प्राणो का परम प्रेमी यक्ष किस प्रकार मेघ का स्वागत करता है सुनिये कवि के अपने शब्दो मे और दयिता के जीवनालम्बन का आस्वाद लीजिये :—

प्रत्यासन्ने नभसि दयिता जीविताालम्बनार्थी
जीमूतेन स्वकुशल मयीं हारयिष्यन् प्रवृत्तिम् ।
स प्रत्यग्रैः कुटिज कुसुमै कल्पितार्घाय तस्मै
प्रीत प्रीति प्रमुख वचन स्वागत व्याजहार ।। ४

(श्रावण मास के समीप आने पर प्यारी के जीवन धारण की लालसा से मेघ द्वारा अपने कुशल समाचारो को प्रेषित करने वाले चित्त मे प्रसन्न हुए यक्ष ने सद्यः विकसित चमेली के पुष्पो से प्रेम भरे वचनो द्वारा उस मेघ का स्वागत किया)

वियोग की विकराल ज्वाला मे झुलसे हुए यक्ष को वियोगिनी प्रियतमा के प्राणों की रक्षा की चिन्ता है और वह अपने प्रणय-सन्देश को मेघ द्वारा भेजने को आतुर है अत प्रिया के प्रेम पाश मे बधा हुआ यक्ष जड चेतन के विवेक से शून्य होकर मेघ को केवल वाष्प, अग्नि, जल और पवन का निरासघात ही नही समझता अपितु अपने समान ही मेघ को एक सजीव प्राणी के रूप मे देखता है और अपने मनोभावो के विह्वल आवेश मे उसमे विनोद प्रियता रसिकता एव पावन प्रणय पिपासा का भी अनुभव करता है। इन भावो के चित्रण मे कवि ने जिस काव्य कौशल का प्रदर्शन किया है वह उसी के मनोरम पदो मे देखिये —

धूमज्योति सलिल मरुतां सन्निपात क्व मेघ·
सन्देशार्था क्व पटुकरणै प्राणिभि प्रापणीया ।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्ता हि प्रकृति कृपणाश्चेतनाचेतनेषु ।। (५)

(कहा तो धूम्र, अग्नि, जल और पवन से बना हुआ जड मेघ और कहा समर्थ इन्द्रियो वाले व्यक्तियो द्वारा भेजे जाने योग्य सदेशो के भाव इस बात का विचार न करते हुए यक्ष ने मेघ से सदेश पहुँचाने की प्रार्थना की। ठीक है कामी प्राणी चेतन और जड के विवेक से शून्य होते है)

काव्य सौष्ठव की दृष्टि से छठा श्लोक अत्यन्त भावपूर्ण है। इसमे कालिदास मेघ महिमा का मनोहारी चित्रण करता हुआ उसे यक्ष द्वारा सम्मान के समुन्नत सिंहासन पर आसीन करता है और जिस भावपूर्ण अनुनय विनय द्वारा मेघ को अपना प्रिय दूत बनाने का कारण बताता है वह कवि की अपनी कोमल कान्त पदावली मे पढ़िये —

जातं वंशे भुवन विदिते पुष्करावर्तकानां
जानामि त्वां प्रकृति पुरुषं कामरूप मघोन, ।

तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं
याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमेलब्धकामा ।। (६)

(हे मेघ! मैं जानता हूँ कि तू विश्व विदित पुष्कर और आवर्तको के कुल मे उत्पन्न हुआ है और मैं यह भी जानता हूँ कि तू इच्छा के अनुरूप रूप धारण करने वाले इन्द्र देव का प्रधान दूत है। इसलिये विरह से व्याकुल और दुर्भाग्यवश अपनी प्रिया से वियुक्त मैं तुझसे प्रार्थना करता हूँ क्योकि गुणी पुरुष से की गई प्रार्थना यदि निष्फल भी हो जाय तो वह अच्छा न कि नीच द्वारा सफल मनोरथ होना)।

वियोगाग्नि की प्रचण्ड ज्वालाओ से सन्तप्त यक्ष मेघो के उत्तम वश मे उत्पन्न हुए अपने कुलीन दूत से नम्रता से कहता है कि हे जलद! तू ही सन्ताप सन्तप्तो को शान्ति देने वाला है। इसी आशा से मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरी प्राणेश्वरी के पास मेरा प्रणय सन्देश ले जाओ। इसी भाव को महाकवि ने कैसी मार्मिक भाषा मे चित्रित किया है, वह पढते ही बनता है:—

संतप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद ! प्रियायाः !
सदेश मे हर धनपति क्रोधविश्लेषितस्य।
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणा
बाह्योद्यान स्थित हरशिरश्चन्द्रिका धौतहर्म्या ।। (७)

(हे मेघ! तू दु खियो के दु ख को शान्त करने वाला है। अत धन के स्वामी कुबेर के कोप से वियुक्त हुए मेरे सन्देश को प्रिया के पास ले जाओ। तुम्हे यक्षो के स्वामियो की सुन्दर नगरी अलकापुरी जाना है जिसके बाहर के उद्यानो मे बैठे हुए शम्भु के शिर की चन्द्रकान्ति से धुले हुए प्रासादो की निराली शोभा है)।

मेघदूत मे कालिदास ने स्थान-स्थान पर वियोगव्यथा का मार्मिक वर्णन किया है। अष्टम श्लोक मे प्रोषित भर्तृकाओ (जिनके पति परदेश गये हो) की आकुल उत्कण्ठा, अधीरता, प्रेम विह्वलता और पति की परवशता आदि मनोभावो का प्रकृति के परिवेष मे जैसा हृदयहारी, गम्भीर चित्रण किया है वह पूर्व मेघ की एक अनूठी विशेषता है। वियोगी यक्ष अपनी पराधीनता पर चार आँसू बहाता हुआ मेघ से कहता है कि हे सघन घन! जब तुम मेरे कार्य की सिद्धि के लिए अर्थात् मेरे प्रणय सन्देश को लेकर मेरी प्राणवल्लभा के पास जाओगे तो मार्ग मे दु खी प्रवासियों की प्रेम की प्यासी पत्नियाँ अपने पतियो के लौटने के विश्वास से उन्मुख होकर तुम्हारा आदर करेगी क्योकि वर्षा मे स्वाधीन पथिक अपनी प्रेयसियो से मिलने के लिए घर लौट आते है। यहाँ पर कवि ने बाल्मीकि रामायण के भाव को अक्षुण्ण रखा है। महर्षि वाल्मीकि ने वर्षा काल के वर्णन मे लिखा है कि **"प्रवासिनो यान्ति नरा· प्रदेशान्"** कवि ने प्रोषित-भर्तृकाओ के खुले बालो का वर्णन कर याज्ञवल्क्य स्मृति के नियमो का निर्वाह भी बडे सुन्दर ढग से किया है। यह कवि के व्यापक ज्ञान की पराकाष्ठा है। ऋषि याज्ञवल्क्य कहते है —

क्रीडां शरीर संस्कारं समाजोत्सव दर्शनम् ।
हास्य परगृहे यान त्यजेत् प्रोषितभर्तृका ।। (१-८४)

इन्ही सब भावों का मनोरम चित्रण कवि की अमरवाणी मे देखिये .—

त्वामारूढ पवन पदवीमुद् गृहीतालकान्ता.
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिता प्रत्ययादाश्वसत्य ।
क सन्नद्धे विरह विधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां,
न स्यादन्योऽप्यह मिव जनो य पराधीनवृत्ति ।। (८)

(पतियो के लौटने के विश्वास से धैर्य धारण करती हुई, मुख पर खुले केशों को हटाकर परदेसियो की पत्निया आकाश मे जाते हुए तुम्हे उत्सुकता भरी आखी से देखेगी। तुम्हे देखकर उन्हे धैर्य मिलेगा। मै तो परवश हूँ इसलिये मेरी तो बात ही क्या। दूसरा कोई भी स्वतन्त्र व्यक्ति ऐसा न होगा जो विरह की ज्वाला मे जलती हुई अपनी स्त्री की उपेक्षा करे)।

"अपारे काव्य संसारे कविरेको प्रजापति" इस युक्ति के अनुसार कालिदास ने अपनी नितान्त मौलिक कमनीय कल्पना के आधार पर मेघदूत मे अपनी निराली सृष्टि की रचना की है। विरहिणी की मर्मभेदिनी मनोव्यथा का करुण चित्र उपस्थित करते हुए कवि यक्ष की पत्नी के अनन्य अनुराग एव पातिव्रत धर्म की मर्यादा का भी यथावत पालन करता है। यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! तू मेरी प्राणवल्लभा जो शाप की समाप्ति के एक-एक दिन को गिन रही होगी, **"एक पत्नी" एक पतिर्यस्या सा एक पत्नी** अर्थात् जिसका एक ही पति है जो वियोग के दु खदायी क्षणो मे भी परपुरुष का ध्यान तक नही करती, जिसने मुझसे पुर्नमिलन की आशा मे अभी प्राण नही छोडे ऐसी अपनी **"भ्रातृजाया"** भाभी को तू स्वतन्त्रापूर्वक देखेगा। क्योंकि बडे भाई की पत्नी को तू मातृवत् समझेगा। यहा "जाया' शब्द से यद्यपि यक्ष की कामुकता प्रकट होती है क्योकि धर्मशास्त्र मे भगवान मनु ने जाया का लक्षण करते हुए कहा है :—

पतिर्भार्यां सप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते ।
ज्यायायास्तिद्धि जायात्वं यदस्यांजायते पुन. ।। (६-८)

(स्वामी वीर्य रूप से स्त्री के गर्भाशय मे प्रवेश कर पुत्र रूप से उत्पन्न होता है। पति उसमे फिर जायमान होता है यही जाया (पत्नी) का "जायापन" है)

नवम श्लोक की नीचे की पक्तियो मे कवि मानव हृदय मे प्रतिक्षण होने वाले आशा निराशा के सघर्ष का सकेत करता हुआ आशा को जीवन का एकमात्र आधार बताता है। "Hope sustains life" (आशा ही जीवन है) उपर्युक्त विशद बिवेचन को मर्मज्ञ कवि अपनी अमरवाणी मे किस कौशल से वर्णन करता है देखिये .—

ताँ चावश्य दिवस गणना तत्परा मेन्क पत्नी
मव्यापन्ना मविहत गतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृ ज्यायाम् ।

आशा बन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङगनानां
सद्यः पाति प्रणयि हृदय विप्रयोगो रुणाद्धि ॥ (९)

(हे मेघ ! तू अवश्य ही दिन गिनने मे लगी हुई, न मरी हुई एक पति वाली अपनी भाभी उस मेरी प्यारी को बिना किसी रुकावट के देखेगा। प्राय आशा का बाँध नि सन्देह कोमल कलेवर वाली मनोरम रमणियो के पुष्प के समान शीघ्र नष्ट होने वाले स्नेह सने हृदय को दारुण वियोग की वेला मे नष्ट होने से बचाता है)।

सीमित शब्दावली मे भव्यभावो की अनुपम अभिव्यक्ति मेघदूत की विशेषता है। इस छोटे से काव्य के प्रत्येक शब्द मे कवि की स्वाभाविकता, रमणीयता, प्रासादिकता, स्वर सौष्ठव, भावमाधुरी आदि अनेक अनवद्य गुण स्थान स्थान पर दृष्टिगोचर होते हैं। दशम श्लोक मे प्रकृति के बिचित्र वर्णन मे कवि ने अपूर्व कौशल से काम लिया है और शकुन शास्त्र के व्यापक ज्ञान का परिचय देते हुए लोकप्रथा का भी पालन किया है। जब किसी शुभ कार्य के लिए प्रस्थान करना होता है तब शुभ शकुन भी देखे जाते हैं। बाईं ओर पपीहा, मयूर और हरिण आदि का आना शुभ माना गया है। जैसे :—

बर्हिणश्चातकाश्चाषा ये च पुंसज्ञिता: खगा ।
मृगा वा वामगाहृष्टा सैन्य सपद् बल प्रदा ॥
काम वाम समायुक्ता भोज्ये भोगप्रदायिन ।
हृष्टास्तुष्टि प्रयच्छन्ति प्रयातुर्मृगपक्षिण ॥

वर्षा ऋतु मे आकाश मे उडते हुए बलाकाओ मे गर्भाधान की क्रिया होती है ऐसा कवि मानते है। जहाँ गर्भाधान शब्द को लिखकर कवि ने वर्षा ऋतु की विशेषता बताई वहाँ कामीयक्ष की कामवासना को अधिक प्रदीप्त भी कर दिया है क्योकि वर्षाकाल वियोगी और वियोगिनी के लिए सर्वथा असह्य होता है। इन्ही सब भावो को कालिदास ने जिस चातुरी से निम्न श्लोक मे लिपिबद्ध किया वे रस रसिको के मन मयूरों को उन्मत्त किये बिना नही रह सकते। यक्ष मेघ को विश्वास दिलाता हुआ कहता है कि शकुन अच्छे हो रहे है। तुम्हारी यात्रा सफल होगी। नयन सुभग मेघ की महिमा देखिये :—

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
वामश्चाय नदति मधुरं चातकस्ते सगन्ध ।
गर्भाधान क्षण परिचयान्नूनमाबद्धमाला
सेविष्यन्ते नयन सुभग खेभवन्तं बलाकाः ॥१०॥

(हे मेघ ! देखो शकुन अच्छे हो रहे है, वायु भी तुम्हारे अनुकूल चल रही है और धीरे-धीरे तुम्हें आगे बढा रही है और बाईं ओर पपीहा प्रसन्न होकर मधुर शब्द कर रहा है। आँखो को अच्छे लगने वाले तुम्हारे रूप को देखकर बगुलियाँ गर्भधारण करने का शुभ समय जानकर पक्ति में खड़ी होकर तुम्हारी सेवा करेगी)।

कवि कुलकमल दिवाकर कालिदास प्रकृति के कवि है । उनके प्रत्येक शब्द में प्रकृतिरमणी की रमणीयता और मेघ द्वारा उत्पन्न होने वाले धान्यादि अनेक पदार्थों की सम्पन्नता ओत प्रोत है । निम्नलिखित श्लोक मे यक्ष कानो को अच्छा लगने वाले मेघ के गर्जन के सौन्दर्य का वर्णन करता है और उसके कारण वसुन्धरा समृद्धिशालिनी बन जाती है—यह भी सकेत करता है तथा मेघ की यात्रा को सुखद बनाने की इच्छा से कहता है कि हे मेघ ! तुम्हारे साथ राजहँस होगे और वे कैलास पर्वत तक तुम्हारा साथ देगे ।

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्यां
तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जित मानसोत्काः ।
आ कैलासाद् बिसकिसलयच्छेद पाथेयवन्तः
संपत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः ॥११॥

अर्थ—और जो पृथ्वी में कुकुरमुत्ता उत्पन्न करने की सामर्थ्य रखता है और जो पृथ्वी को उपजाऊ बना सकता है उस कानो को सुख देने वाले तेरे गर्जन को सुनकर मानसरोवर पहुँचने के लिए आतुर, कमल के पत्तो के टुकडो को मार्ग मे भोजन के रूप मे ले जाने वाले राजहस आकाश मे कैलाश पर्वत तक आपके साथी बन जाएँगे । अब यक्ष मेघ से कहता है कि हे मेघ ! तू अपने प्रिय मित्र रामगिरि पर्वत से विदाई माँग ले । निम्नलिखित श्लोक मे रसिक शिरोमणि महाकवि कालिदास दो मित्रो के वियोग का मार्मिक वर्णन करता है और साथ ही अपने प्रकृति के व्यापक ज्ञान का परिचय देता है ।

"मेघ पर्वतयो रब्ज सूर्ययोरब्धि चन्द्रयोः ।
शिखि जीमूतयोर्मैत्री वाताग्न्योश्च स्वभावतः ॥

(मेघ और पर्वत की, कमल और सूर्य की, समुद्र और चन्द्रमा की, मोर और बादलो की, वायु और अग्नि की स्वाभाविक मित्रता होती है ।) इसके अनुसार मेघ और पर्वतो की मित्रता दिखाते हुए कवि "चिरविरहजम्" इस भावपूर्ण पद को लिखकर यह बताता है कि जैसे बहुत देर के बाद मिलने पर दो मित्र प्रेम के आँसू बहाते है उसी प्रकार मेघ का जब पर्वत से सम्बन्ध होता है तो वह वर्षा रूपी आँसू बहाता है । जैसा कि कहा है "पर्वताहि जलवृष्ट्या स्निग्धा भवन्ति वाष्प च मुञ्चन्ति" (पहाड जल की वर्षा होने पर स्निग्ध हो जाते हैं और आँसू बहाते है) ।

इसी श्लोक मे मेघ द्वारा रामगिरि के लिये विशेष आदर प्रकट करने के दो कारण है—एक तो वह मेघ का मित्र है और दूसरे वह पर्वत मर्यादा पुरुषोत्तम राम के निवास से पवित्र हुआ है । ऊपर लिखे गये सभी भावो को कवि ने जिस सुन्दर सरस एव भावपूर्ण भाषा मे निबद्ध किया है देखिये —

आपृच्छस्व प्रिय सखममुं तुंगमालिंगय शैलं
वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदैरंकितं मेखलासु ।

काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य
स्नेह् व्यक्तिश्चिर विरहजं मुंचतो वाष्पमुष्णम् ।।१२।'

अर्थ—समय-समय पर अर्थात् जब-जब वर्षा ऋतु आती है जिसके सम्पर्क को प्राप्त करके दीर्घ वियोग से उत्पन्न हुए आँसुओ को बहाते हुए आपके प्रेम का प्रत्यक्ष रूप सामने आता है अर्थात् जब आप प्रेम के आँसू बहाते है उस अपने प्रिय मित्र, सब मनुष्यो द्वारा पूज्य, जिसकी ढलाने श्री रामचन्द्र के चरणो से अकित है, ऊँचे पर्वत रामगिरि को आलिंगन कर विदाई ले।

अगले श्लोक मे यक्ष अपने सन्देश को ले जाने के लिए मेघ से अनुनय करता है और उसे मार्ग बताता है। यही से मेघदूत काव्य मे आये हुए भौगोलिक वर्णन का आरम्भ होता है। इस विस्तृत भौगोलिक वर्णन से प्रतीत होता है कि कवि ने व्यापक रूप से देश देशान्तरो का भ्रमण किया होगा। यक्ष कहता है कि हे मेघ! जब मार्ग मे तुम थक जाओ तो पर्वतो की चोटियो पर विश्राम कर लेना और जब तुमको प्यास लगे अथवा अपने आपको हल्का अनुभव करो तो नदियो का सुन्दर जल पी लेना। कवि के अनूठे वर्णन मे जहाँ स्वाभाविकता है वहाँ वैज्ञानिकता भी है। बादलो की शोभा इसी मे है कि वे सदा जल से भरे रहे और धीरे-धीरे इठलाते हुए आगे बढे इसलिये कवि का यह कहना कि जब तुम्हे अपनी क्षीणता प्रतीत हो तो नदियों का हल्का पानी पीकर पुष्ट हो जाना—बडा ही भावपूर्ण है। अब देखिये कवि के अपने ही शब्दो मे —

मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपं
सन्देशं में तदनु जलद श्रोष्यसि श्रोत्र पेयम्।
खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदंन्यस्य गन्तासि यत्र
क्षीणः क्षीणः परिलघु पयः स्रोतसां चोयभुज्य ।।१३।।

अर्थ—हे मेघ! अब वर्णन करते हुए अर्थात् बताते हुए मुझसे अपनी यात्रा के अनुकूल मार्ग को सुनो। उसके पश्चात् कानों को सुख देने वाले मेरे सन्देश को सुनोगे जहाँ तुम थककर पर्वतो पर पैर रखकर अर्थात् रुक-रुककर, क्षीण अर्थात् हल्का होकर नदियों के अत्यन्त हल्के पानी को पीकर जाओगे।

अब यक्ष मेघ को कहता है कि जब तुम इस स्थान से अर्थात् आश्रम से उत्तर की ओर उडोगे तो सिद्धो की भोली-भाली स्त्रियाँ तुम्हारे पर्वत तुल्य आकार को चकित होकर देखेंगी। इस श्लोक मे कवि ने मेघ का मार्गदर्शन करते हुए स्पष्ट सकेत कर दिया कि तुम्हारा गन्तव्य स्थान अर्थात् अलकापुरी उत्तर मे है। साथ ही यक्ष मेघ को सावधान भी करता है कि दिशाओ के हाथी अपनी लम्बी-लम्बी सूडो को ऊपर को उछालेंगे अत उनसे भी बचना। कवि का गम्भीर आशय यह प्रतीत होता है कि हाथी सूंड से समुद्र से पानी लेकर बादल को देता है जिससे वह उस पानी को चारो तरफ फैला सके जैसा कि लिखा है:—

हस्ती समुद्रादादाय करेण जलमीप्सितम् ।
दद्याद्धनाय तद्दद्याद्वातेन प्रेरितोघनः
स्थाने स्थाने पृथिव्यांच काले काले च यथोचितम् ।।

इन्ही सब भावो को कवि अपनी प्रासादिक भाषा मे कहता है:—

अद्रेः शृंग हरति पवनः किंस्विदित्युन्मुखोभिः
दृष्टोत्साहश्चकित चकितं मुग्ध सिद्धांगनाभिः
स्थानादस्मात् सरस निचुलादुत्योदङ्मुखः खं
दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूल हस्तावलेपान् ।।१४।।

अर्थ—क्या वायु पहाड़ की चोटी को उडाये लिये जा रहा है—इस प्रकार के उत्पन्न हुए सदेह के कारण ऊपर को मुख उठाये हुई भोली भाली सिद्धो की स्त्रियो द्वारा अत्यन्त आश्चर्य से देखे जाते हुए परिश्रम वाले हे मेघ ! तुम मार्ग मे दिशाओ के हाथियो की लम्बी-लम्बी ऊपर को उछाली हुई सू डो से बचते हुए, लहलहाते बेतो से घिरे हुए इस स्थान से अर्थात् आश्रम से उत्तर की ओर मुख करके आकाश मे उडो।

अब यक्ष मेघ को कहता है कि मोर के पखो को धारण करने वाले ग्वाले के वेष मे श्री विष्णु के श्यामल शरीर के समान तुम्हारा नीला रूप भी आकाश मे चमकते हुए भिन्न भिन्न रगो वाले इन्द्र धनुष से अत्यन्त शोभायुक्त हो जायेगा। यात्रा मे इन्द्रधनुष का दर्शन अच्छा शकुन माना जाता है । इन्ही भावो को सुन्दर सरस भाषा मे अभिव्यक्त करते हुए कवि कहता है—

रत्नच्छाया व्यतिकर इव प्रेक्ष्य मेतत्पुरस्ता
द्वल्मीकाग्रात्प्रभवति धनुः खण्ड माखण्डलस्य ।
येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोप वेषस्य विष्णोः ।।१५।।

अर्थ—हे मेघ ! बाँबी के अग्रभाग से निकलते हुए, पद्मराज आदिम मणियो के प्रभा कुंज के समान चमकते हुए इन्द्र धनुष को सामने देखकर तुम्हारा श्यामल शरीर भी उसी तरह कान्ति को प्राप्त हो जायेगा अर्थात् तुम अधिक सुन्दर दिखाई दोगे जैसे चमकते हुए मोर पखो को धारण करके ग्वाले के वेष मे श्री विष्णु का श्यामल शरीर अनूठी छवि धारण करता था।

कवि सम्राट् कालिदास प्रकृति के स्वाभाविक वर्णन मे सिद्धहस्त है। अगले श्लोक मे कवि ने जहाँ इस शाश्वत सत्य का प्रतिपादन किया है कि वृष्टि ही खेती का एकमात्र आधार है और ग्रामीणो का सर्वस्व है खेती का सफल होना, वहाँ ग्रामीण स्त्रिया के भोलेपन का भी बडा सजीव वर्णन किया है। ग्रामीण स्त्रियाँ भौहे मटकाना नही जानती और उनकी चितवन मे सरलता, स्वाभाविकता और स्निग्धता होती है। इन सभी रहस्यो का प्राञ्जल भाषा मे वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि हे मेघ ! मार्ग मे ग्राम की

भोलीभाली स्त्रियाँ तुम्हे स्नेहसनी आँखो से देखेगी क्योंकि उनकी खेती की सफलता तुम्हारी वर्षा पर ही निर्भर है। अब माल नाम के उन्नत भूमि मे स्थित खेतों मे होते हुए पहले पश्चिम की ओर जाना फिर उत्तर की ओर चल पड़ना .—

त्वय्यात्त कृषि फलमिति भ्रूविकारान भिज्ञैः—
प्रीति स्निग्धै र्जनपदवधू लोचनैः पीयमानः।
सद्यःसीरोत्कषरण सुरभि क्षेत्र मारुह्यमालं
किंचित्पश्चाद् व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण ।। १६ ।।

अर्थ—हे मेघ ! खेती का फल तुम्हारे पर ही निर्भर है इसलिए प्रेमभरी, भौहो के मटकाने से अपरिचित ग्रामीण स्त्रियो की आँखो से देखे जाने वाले, अभी अभी हल चलाने से सुगन्धित माल के खेत पर चढकर हल्की चाल से पहले कुछ दूर पश्चिम को जाना फिर उत्तर दिशा को ही चल पडना।

अगले श्लोक मे मर्मज्ञ कवि मेघ की सार्थकता सिद्ध करता हुआ उपकार प्रत्युपकार का बहुत ही भावपूर्ण चित्रण करता है अब यक्ष कहता है हे मेघ ! तुमने कई बार अपनी मूसलाधार वृष्टि से दारुण दावाग्नि को शान्त करके वनो की और पर्वतो की रक्षा की है अत आम्रकूट पर्वत तुम्हारे पूर्व उपकारो को याद करके मार्ग की थकावट को दूर करने के लिये सहर्ष तुम्हारा स्वागत करेगा —

त्वामासार प्रशमित वनोल्पवं साधु मूर्घ्ना
वक्ष्यत्यध्वश्रम परिगतं सानुमाना म्रकूटः ।
न क्षुद्रोऽपि प्रथम सुकृतापेक्षया संश्रयाय
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः ।।१७।।

अर्थ—हे मेघ ! अपनी मूसलाधार वृष्टि से वनो की अग्नि को शान्त करने वाले, मार्ग की थकान से थकित तुमको आम्रकूट नाम का पर्वत अच्छी तरह सिर पर धारण करेगा अर्थात् आदर पूर्वक तुम्हे आश्रय देगा क्योकि छोटा मनुष्य भी आश्रय के लिए आये हुए मित्र को देखकर पहले उपकारो को याद करके विमुख नही होता है फिर जो ऊँचा हो उसका तो कहना ही क्या अर्थात् वह तो कदापि विमुख हो ही नही सकता। यहाँ कवि ने यह भी भाव व्यक्त किया है कि जिसको यात्रा के आरम्भ मे ही मान सत्कार प्राप्त हो और अच्छे मित्र मिलें उसकी यात्रा अवश्य सफल होती है। अतः मेघ की यात्रा की सफलता प्रकट की है जैसा कि निमित्त निदान मे कहा है—

प्रथमावसथे यस्य सौख्यं तस्याखिले ऽध्वनि ।
शिवं भवति यात्रा या मन्यथा त्वशुभं ध्रुवम् ।

अर्थात् प्रथम स्थान मे ही जिसको यात्रा मे सुख मिलता है उसका कल्याण है अन्यथा निश्चित रूप से उसकी यात्रा अशुभ होती है।'

अब यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! देखो, पके हुए फलों से लदे हुए आम

के वृक्षो से घिरा हुआ आम्रकूट पर्वत तो सुनहरी है और उसकी चोटी पर जब तुम चिकनी वेणी के समान श्याम वर्ण लिए बैठोगे तब वह सुनहरी पर्वत बीच मे काला दिखाई देगा और पृथ्वी रूपी स्त्री के स्तन के समान मालूम होगा क्योकि स्तन भी बीच मे काला होता है और चारो ओर से सुनहरी। इसी प्राकृतिक सौन्दर्य को वर्णन करते हुए कवि कहता है —

छन्नोपान्तः परिणतफल द्योतिभिः काननाम्रै
स्त्वय्यारूढे शिखरमचल स्निग्धवेणी सवर्णे।
नूनं यास्यत्यमर मिथुन प्रेक्षणीया म वस्थाँ
मध्ये श्यामःस्तन इवभुवः शेष विस्तार पाण्डुः ॥१८॥

अर्थ—हे मेघ! इसमे सन्देह नही कि चिकने केशो की चोटी के समान रग वाले तुम्हारे पर्वत की चोटी पर चढने पर पके हुए फलो से चमकते हुए वन के आम के पेडो से ढके हुए भागो वाला, बीच मे काला और चारो तरफ से सुनहरी पृथ्वी के स्तन के समान वह पर्वत देवताओ के दम्पतियो द्वारा देखने योग्य अवस्था को प्राप्त हो जायेगा अर्थात् देव जाति के नर-नारी तुम्हे बडे आश्चर्य से देखेगे।

अब यक्ष यात्रा मे आने वाले नर्मदा नदी के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुए मेघ को कहता है कि हे मेघ! आम्रकूट पर्वत की कुँजो मे थोडी देर विश्राम करके कुछ जल बरसाना जिससे तुम हल्के हो जाओगे और तुम्हारी गति मे तीव्रता आ जायेगी और सुगमता से अगला मार्ग पार कर सकोगे। आगे चलकर विन्ध्य पर्वत के पठार पर बहुत-सी धाराओ मे बँटी रेवा नदी इस प्रकार दिखाई देगी जैसे किसी ने हाथी के शरीर पर भभूत की रेखाओ से शृगार किया हो। अब मूल श्लोक मे विन्ध्य पर्वत और रेवा नदी का वर्णन देखिये :—

स्थित्वा तस्मिन् बनचर वधू भुक्त कुँजे मुहूर्तं
तोयोत्सर्गं द्रुततरगति स्तत्परं वर्त्म तीर्णः।
रेवा द्रक्ष्य स्युपल विषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमगे गजस्य ॥१६॥

अर्थ—हे मेघ! जगली लोगो की स्त्रियो द्वारा भोगे गये कुजो वाले उस आम्रकूट पर्वत पर थोड़ी देर ठहरकर और पानी बरसाने के कारण तीव्रगति से आगे के मार्ग को पार करके तुम हाथी के शरीर पर की गई सजावट के समान ऊबड-खाबड़ विन्ध्य-पर्वत के चरणो मे अनेक धाराओ मे बँटी हुई रेवा नदी को देखोगे। अर्थात् आम्रकूट के रमणीय कुँजो से तुम्हारा नयन विनोद भी होगा और गगा के समान पुण्य सलिला रेवा नदी के दर्शनो का लाभ भी होगा जो तुम्हारी यात्रा के लिये शुभ है।

अब यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ! पहले तुम रेवा नदी पर वृष्टि करना और जगली हाथियो के सुगन्धित मद से सुवासित और कुँजो मे टकराने से धीरे-धीरे

बहने वाले रेवा नदी के पानी को पीकर भारी होकर आगे बढना, जिससे तुम्हे वायु इधर-उधर उडाने मे अर्थात् छिन्न-भिन्न करने मे समर्थ नही होगा क्योकि हल्के को हर कोई ठुकराता है और शक्तिशाली को कोई नही छेडता। स्थान-स्थान पर कवि ने प्राकृतिक बातो का वर्णन कर व्यावहारिक उपदेश भी दिये है। इन्ही सारगर्भित बातो को कवि के अपने शब्दो मे ही देखिये—

तस्यास्ति क्तैर्वन गजमदैर्वासितं वान्तवृष्टि
र्जम्बू कुंज प्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छेः।
अन्त सारं धन तुलयितुं नानिल. शक्ष्यतित्वां
रिक्तः सर्वोभवति हिलघुः पूर्णता गौरवाय।।२०।।

अर्थ—वृष्टि करके जगली हाथियो के सुगन्धित मद से सुवासित, जामुन के कुजो मे रुके हुए वेग वाले उस रेवा नदी के पानी को पीकर आगे जाना। हे मेघ! अपने अन्दर पानी रूप बल को धारण करने वाले तुमको वायु इधर-उधर उडाने मे समर्थ नही होगा क्योकि खाली सब कोई हलका होता है परन्तु पूर्णता से गौरव प्राप्त होता है अर्थात् बादल जब जल से भरे हुए होते है तब वायु उनको छिन्न-भिन्न नही कर सकते।

वर्षा हो जाने पर प्रकृति की रमणीयता का मनोरम वर्णन करता हुआ कवि मेघ की महिमा दिखाता है। इसीलिये यक्ष मेघ को कहता है कि देखो जब पानी बरसाते जा रहे होगे तब अधपके हरे पीले कदम्ब पर मडराते हुए भौरे, दलदलो मे कदली की नई फूली पत्तियो को चरते हुए हरिण तुम्हे मार्ग दिखायेगे। ये हरिण आदि बन पृथ्वी की भीनी भीनी गन्ध से मस्त होगे। वर्षा मे नीप और कदली खिल जाती है और पृथ्वी महकने लगती है—इन सब प्राकृतिक छटाओ का हृदयहारी वर्णन करते हुए कवि कहता है—

नीपं दृष्ट्वा हरित कपिशं केसरै रर्ध रूढै
राविर्भूत प्रथम मुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम्
जगध्वाऽरण्येष्वधिक सुरभिं गन्धमाघ्राय चौर्व्या.
सारंगास्ते जललवमुचः सूचयिष्यति मार्गम्।।२१।।

अर्थ—हे मेघ! अधखिले किञ्जलको से हरे पीले कदम्ब को देखकर और दलदलो मे पहली बार प्रकट हुई कलियो वाली कदलियो को खाकर और जगलो मे पृथ्वी की अत्यन्त सुगन्ध वाली महक को सूंघकर भौरे, हरिण और हाथी जल की बूंदो को बरसाने वाले तुम्हे मार्ग दिखायेगे।

अब अगले श्लोक मे रसिक शिरोमणि कालिदास वर्षा से उत्पन्न हुए उन्मादक वातावरण मे सभी नर नारियो के प्रेमोद्दीपन का विशद वर्णन करता है और बताता है कि शीतल वातावरण मे सिद्ध भी अपनी प्रियाओ से गाढालिगन किये बिना नही रह सकते अन्य प्राणियो का तो कहना ही क्या। इसीलिये यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ! तुम्हारे बरसने पर आकाश मे वर्षा की बूंदो को पीते हुए चातको को देखकर

सिद्ध अति प्रसन्न होगे और बगुलो की पक्तियो को गिन गिन कर अपनी स्त्रियो को भी दिखायेगे और आनन्द मे मग्न होकर तुम्हारा मान करेगे। अब देखिये कवि के अपने शब्द—

अम्भोबिन्दुग्रहण चतुराश्चातकान् वीक्षमाणाः
श्रेणीभूताः परिगणनया निर्दिशन्तो बलाकाः ।
त्वामासाद्य स्तनितसमये मानयिष्यन्ति सिद्धाः
सोत्कम्पानि प्रिय सहचरी संभ्रमालिंगितानि ॥२२॥

अर्थ—पानी की बूंद ग्रहण करने मे चतुर पपीहो को देखते हुए, पक्तिबद्ध बगुलो को गिन-गिनकर बताते हुए सिद्ध तुम्हारे गर्जन के समय काँपती हुई अपनी प्यारी पत्नियो के व्यग्र और आतुर आलिगनो को प्राप्त करके तुम्हारा मान करेगे।

अगले श्लोक मे अपनी प्रेयसी तक प्रणय सन्देश को पहुँचाने की आतुरता और मेघ के प्रति प्रशसात्मक अनुनय विनय के भावो का चारु-चित्रण कर कवि ने मेघदूत की महिमा मे चार चाँद लगा दिये है। यक्ष मेघ को कहता है कि हे मित्र मेघ ! तुम मुझ पर बडे कृपालु हो और मेरे प्रणय सन्देश को प्रिया तक पहुँचाने मे शीघ्रता करना भी चाहोगे फिर भी ऐसा न कर पाओगे क्योकि कुन्ज कुसुमो से सुवासित प्रत्येक पर्वत पर तुम्हे रुकना पडेगा और प्रेम के आँसू छलकाते हुए मोर अपनी मधुर कूको से तुम्हारा स्वागत करेगे फिर भी हे प्रिय मित्र ! जैसे-तैसे तुम आगे जाने मे शीघ्रता ही करना। अब देखिये कवि की अपनी वाणी मे—

उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे ! मत्प्रियार्थं मियासोः
कासक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते ।
शुक्लापाँगे सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः
प्रत्युद्यातः कथमपि भवान् गन्तुमाशु व्यवस्येत् ॥२३॥

अर्थ—हे मित्र ! यद्यपि आप मेरे प्रिय कार्य की सिद्धि के लिये जाने को उत्सुक है फिर भी मैं यह अनुमान करता हूँ कि कुन्ज कुसुमो से सुगन्धित प्रत्येक पर्वत पर आपको कुछ-न-कुछ समय बिताना पडेगा। आसुओ से भरी हुई आँखों वाले मोरों द्वारा कूको से सत्कृत आप किसी न किसी प्रकार आगे जाने का यत्न करे।

अग्रिम श्लोक मे कवीश्वर कालिदास वर्षा के कारण वन-उपवन, वृक्ष-लता तथा पक्षियो के आनन्द आल्हाद का हृदयहारी वर्णन करता है। यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! तुम्हारे आगमन पर दशार्ण देश के वन उपवनो मे केवड़े के फूल खिल जायेगे, चैत्यवृक्ष कौवे आदि पक्षियो के घोसलो से भर जायेगे और काले काले जामुनो से जामुनों के वृक्षो की अपूर्व शोभा होगी। इसी वर्णन को कवि इस प्रकार चित्रित करता है—

पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नै
र्नीडारम्भै गृंहबलिभुजामाकुलग्राम चैत्याः ।

त्वय्यासन्ने परिणत फलश्याम जम्बूवनान्ताः
सपत्स्यन्ते कतिपय दिन स्थायिहंसा दशार्णा ।।२४।।

अर्थ—दशार्ण देश तुम्हारे पहुँचने पर कलियो के अग्रभाग मे विकसित केवड़े के फूलो से सफेद पीली कान्तियुक्त बाडो वाला, घर की बलिखाने वाले पक्षियो के घोसले बनाने के कामो से भरे हुए गाँवो के वृक्षो वाला, पके हुए फलो के कारण काले बने हुए जामुन के वनो की सीमा वाला और कुछ दिन तक हसो द्वारा निवास किये जाने वाला हो जाएगा अर्थात् दशार्ण देश मे हस थोड़े दिन ही ठहरेगे।

अगले श्लोक मे कवि ने जहाँ दशार्ण देश की प्रसिद्ध नगरी विदिशा का मनोरम वर्णन कर अपने विस्तृत भौगोलिक ज्ञान का परिचय दिया है वहाँ मेघ की कामुकता की पूर्णता भी परिलक्षित की है। कवि अपनी कमनीय कल्पना के द्वारा वेत्रवती नदी को मेघ की पत्नी बनाता है और उसके जल को उसका मुख। "कामिनामधरास्वाद. सुरतादतिरिच्यते" इस युक्ति के अनुसार कामी पुरुषो के लिए कामनियो का अधर पान सम्भोग से बढकर है। अत यक्ष मेघ को कहता है कि हे मित्र तुम वेत्रवती रूपी पत्नी के जल रूपी अधर का पानकर निहाल हो जाओगे और तुम्हे अपनी कामुकता का पूरा फल प्राप्त हो जायेगा अब देखिये कवि की अपनी सारगर्भित भाषा—

तेषाँ दिक्षु प्रथित विदिशालक्षणां राजधानीं
गत्वा सद्यः फलमविकलं कामुकत्वस्य लब्ध्वा।
तीरोपान्त स्तनित सुभगं पास्यसि स्वादु यस्मा
त्सभ्रूभंग मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि ।।२५।।

अर्थ—हे मेघ! दिशाओ मे प्रसिद्ध विदिशा नाम वाली उस देश की राजधानी मे जाकर तुम कामुकता का पूरा फल प्राप्त करोगे क्योकि वहाँ तुम स्वादिष्ट, चचल लहरों से युक्त वेत्रवती नदी के जल रूपी मुख का पान करोगे जो किनारे के समीप गरजने से आनन्ददायक होगा।

अब यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ! तुम नीचै नाम वाले पर्वत पर विश्राम करना जो तुम्हारे ठहरने से पुलकित हो उठेगा अर्थात् हरा भरा हो जायेगा।

श्लोक की अन्तिम दो पक्तियो मे कवि पर्वत पर निवास करने वाले नागरिकों की सामाजिक दशा का भी सकेत करता है। यक्ष अपने प्रिय मित्र मेघ का मार्ग निर्देशन तो करता ही है साथ-साथ उसको मार्ग मे आये हुए प्रत्येक पर्वत पर विश्राम करने को भी कहता है जिससे उसके प्रणय सन्देश ले जाने मे बाधा न पड़े।

हर्ष मे मनुष्य के रोगटे खडे हो जाते है। यहाँ पर मेघ के आने पर कदम्ब के वृक्ष अपनी कोमल कलियो को विकसित कर हर्ष प्रकट करते है। इनको ही कवि पर्वत के पुलकों के रूप मे वर्णित करता है। अब देखिये कवि की अपनी अमर वाणी—

नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्राम हेतो
स्त्वत्सम्पर्कात् पुलकि तमिव प्रौढ पुष्पैः कदम्बैः।

य:पण्यस्त्री रति परिमलोद्गारिभि र्नागराणा
मुद्दामानि प्रथयति शिला वेश्मभि र्यौवनानि ।। २६ ।।

अर्थ—हे मेघ वहाँ पर जो वेश्याओ द्वारा रति क्रीडा के समय प्रयुक्त सुगन्ध को उगलने वाले पत्थरो के घरो के द्वारा नागरिको के उत्कट यौवन को प्रकट करता है, पूर्ण रूप से विकसित पुष्पो वाले कदम्ब के वृक्षो से मानो तुमसे मिलने के कारण रोमाँचित हुए उस नीचै नाम के पर्वत पर विश्राम के लिए ठहरना।

अब अगले श्लोक मे कवि प्रकृति के सौन्दर्य को बढाने वाले तथा उसमे नव-जीवन का सचार करने वाले मेघ के अनेक सुखद कृत्यो का मनोहारी वर्णन करता है। यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ! नीचै गिरि पर विश्राम करने के पश्चात् नदी के तट पर स्थित वन उपवनो मे चमेली के फूलो के समूहो को नूतन जल कणो से सिंचित करते जाना और वहाँ मालिनो के कर्णफूल कपोलो पर पसीने के बार-बार पोछने से मुरझा गये होगे इसलिए हे भावुक मेघ! उनके कोमल मुख पर छाया करके उनसे थोडी-सी जान-पहचान करना और फिर आगे बढना क्योकि आपको मेरे प्रणय सन्देश को दूर ले जाना है कही ऐसा न हो मालिनो के कपोलो के चक्कर मे पड कर वही अटक जाओ।

इन्ही सब सरल सुमधुर भावो को कवि ने किस सुन्दर ढग से श्लोक बद्ध किया है, देखिये—

विश्रान्तः सन् व्रज वन नदी तीर जानां निषिंच
न्नुद्यानाना नव जल कणै र्यूथिका जाल कानि ।
गंड स्वेदाय नयन रुजा क्लान्त कर्णोत्पलानां
छाया दानात्क्षण परिचितः पुष्पलावी मुखानाम् ।।२७।।

अर्थ—हे मेघ! विश्राम करके वन नदियो के तट पर स्थित उपवनो के चमेली के फूलो की कलियो को नूतन जलकणो से सीचते हुए, कपोलो के पसीने को बार-बार पोछने से मुरझाये हुए कर्णोत्पल वाले मालिनो के मुखो पर छाया करके और उनसे थोडी देर के लिये जान पहचान करके आगे बढना।

अब यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ! उत्तर दिशा को जाते हुए तुम्हारे रास्ते मे, यद्यपि सुन्दर नगरी उज्जयिनी नही आयेगी वहाँ जाने के लिए तुम्हे टेढे मेढे मार्ग अपनाने पडेगे फिर भी तुम उज्जयिनी के गगन चुम्बी प्रासादो की अनुपम छटा को अवश्य देखना। यदि तुमने उज्जयिनी की रमणियो के चमकते हुए चचल नेत्रो के दर्शन का आनन्द न लिया तो तुम्हारा जन्म ही वृथा है। उज्जयिनी के प्रति कवि के अनन्य अनुराग का यह श्लोक एक उत्तम उदाहरण है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि इसी प्रदेश मे उत्पन्न हुआ होगा या चिरकाल तक रहा होगा। अब देखिये उस सुन्दर नगरी का वर्णन कवि के अपने शब्दो मे—

वक्रः पन्था यदपिभवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
सौधोत्संग प्रणयविमुखो मा स्मभूरुज्जयिन्याः ।
विद्युद्दाम स्फुरित चकितैस्तत्र पौरांगनानां
लोला पांगै र्यदिन रमसे लोत्र नैर्वञ्चितोऽसि ॥ २८ ॥

अर्थ—उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान करते हुए आपका मार्ग यद्यपि टेढा पडेगा तो भी उज्जयिनी के प्रासादो के छज्जो से परिचय प्राप्त करने मे विमुखता न दिखाना अर्थात् उन ऊँचे महलो की शोभा को अवश्य देखते जाना । यदि नगर की सुन्दरियो के (आपकी) बिजली की चमक से चकित चंचल नेत्रो से तुम क्रीडा नही करते अर्थात् उनके देखने का आनन्द नही लेते तो तुम्हारा जन्म व्यर्थ है ।

अब कामीयक्ष अपनी प्रियतमा के प्रणय प्रसगो को याद करके दु खी होता है और किसी न किसी रूप मे अपने हृदय के उद्गारो को प्रकट करता हुआ कहता है कि हे मेघ ! मार्ग मे तुम निर्विन्ध्या नदी का उपभोग करना। उसकी मतवाली चाल, चचल लहरे और भँवर तुम्हे अपनी ओर आकृष्ट करेंगे । वास्तव मे इस श्लोक मे कवि ने निर्विन्ध्या को रतिसुख के लिए लालायित कामातुर रमणी के रूप मे दर्शाया है । चंचल जलो मे कूजते हुए पक्षी उसकी तगडी (तडागी) है, भँवर उसकी नाभि हैं और उसका जल ही रतिसुख है । प्रेम प्रदर्शन के समय प्रणयिनी अपने प्रियतम को रिझाने के लिये नाभि दिखाती है क्योकि नाभि प्रदर्शन कामोत्पत्ति मे, भोग लिप्सा को उद्दीप्त करने मे विशेष सहायक है । इन्ही भाव विलासो का विशद वर्णन देखिये कवि के अपने शब्दो मे—

वीचि क्षोभ स्तनित विहग श्रेणी कांची गुणायाः
संसर्पन्त्याः स्खलित सुभगं दर्शितावर्तनाभेः ।
निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः संनिपत्य
स्त्रीणामाद्यं प्रणय वचनं विभ्रमोहि प्रियेषु ॥२९॥

अर्थ—मार्ग मे लहरो के विक्षोभ से कूजते हुए पक्षियो की पंक्ति रूपी तगडी वाली, डगमगाती हुई चाल से सुन्दर रूप मे बहती हुई, भँवर रूपी अपनी नाभि को दिखाने वाली निर्विन्ध्या रूपी रमणी से मिलकर उसके जल (रतिसुख) मे निमग्न होकर सुखा स्वाद करना क्योकि स्त्रियो के हाव-भाव ही सबसे पहले प्रेम प्रकट करने वाले वचन होते है, मेघदूत क्या है वियोगी वियोगिनी के प्रणय की पवित्रगाथा है । यक्ष अपनी वियुक्ता पत्नी की कृशता क ाकल्पना कर व्यथित होता हुआ मेघ से कहता है कि हे प्रणय सदेश वाहक मित्र मेघ ! जैसे पति के वियोग मे प्रोषित भर्तृकाये एक वेणी धारण करती हैं और वियोगाग्नि मे झुलसकर सूख जाती है उसी प्रकार मार्ग मे तुम्हारे वियोग में दु खी होकर पतली और पीली पडी हुई सिन्धु नदी मिलेगी । तुम अपनी वर्षा से उसके वियोग के दु ख को दूर करना । भाव यह है कि गर्मी के कारण नदी की धारा सूखकर पतली हो जाती है । अत वह प्रोषितभर्तृका की एक वेणी के समान

प्रतीत होती है ? शाकुन्तल मे दुष्यन्त के वियोग मे कृश हुई शकुन्तला का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है "नियम क्षाम मुखी धृतैक वेणि" श्लोक की अन्तिम दो पक्तियो मे कवि ने सिन्धु नदी को उस पतिव्रता नारी के समान दिखाया है जो पति-वियोग मे क्षीण हो जाती है और पीली पड जाती है। अतः मेघ का यह सौभाग्य ही है कि उसे ऐसी पतिव्रता पत्नी सिन्धु नदी के रूप मे मिली है। इन्ही सब गूढ रहस्यो को दिखाते हुए कवि कहता है—

वेणीभूत प्रतनुसलिला तामतीतस्य सिन्धुः
पाण्डुच्छाया तट रूहतरु भ्रशिभि र्जीर्णपर्णैः।
सौभाग्यं ते सुभग ! विरहावस्थया व्यंजयन्ती
कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ।।३०।।

अर्थ—हे भाग्यशाली मेघ ! चोटी बनी हुई पतली जल की धार वाली, तट पर उगे हुए वृक्षो से गिरे हुए सूखे पत्तो वाली वियोग की अवस्था से उस निर्विन्ध्या नदी से पार हुए तुम्हारे सौभाग्य को प्रकट करती हुई सिन्धु नदी जिस प्रकार अपनी कृशता को दूर कर सके वैसा उपाय तुम्हे ही करना चाहिये।

अब यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ अवन्ति मे पहुँच कर तुम धनधान्य से समृद्धि विशाला नगरी को अवश्य जाना क्योकि यह नगरी तो इस पृथ्वी पर स्वर्ग का चमकता हुआ एक खण्ड है। उज्जयिनी का दूसरा नाम विशाला है जिसका अर्थ है बड़े विशाल भवनो वाली नगरी। कवि कोमलकान्त पदावली के प्रयोग मे सिद्धहस्त है। श्लोक मे "श्री विशाला विशालाम्" लिख कर शब्द सौन्दर्य की अनुपम छटा दिखाई है। श्री विशालाम् का अर्थ सकल ऐश्वर्य से युक्त। उस विशाल वैभववाली नगरी का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

प्राप्यावन्ती नुदयनकथा कोविद ग्रामवृद्धा—
न्पूर्वोद्दिष्टामुपसर पुरीं श्री विशालां विशालाम्।
स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां
शेषै: पुण्यैर्हृत मिव दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम् ।।३१।।

अर्थ:—हे मेघ उदयन की कहानी कहने मे कुशल गाँव के बूढे पुरुषो वाले अवन्ति देश मे पहुँच कर पहले वर्णन की हुई धनधान्य से समृद्ध, शुभ कर्मों के क्षीण होने पर भूलोक मे पुन आये हुए स्वर्ग मे रहने वाले जनो के शेष पुण्यो के कारण स्वर्ग से लाये हुए चमकते हुए एक टुकड़े के समान विशाला नगरी को जाना। अर्थात् विशाला नगरी पृथ्वी पर स्वर्ग का एक चमकता हुआ टुकडा है। कवि ने इस श्लोक मे उदयन कथा का सकेत किया है। अत उदयन के सम्बन्ध मे कुछ बताना अवश्यक है।

उदयन—यह चन्द्रवंशी राजा था और इसके पिता का नाम सहस्रानीक था। यह वत्सदेश का राजा था कौशाम्बी इसकी राजधानी थी। आजकल इसे "कोसम"

कहते है जो इलाहाबाद के समीप यमुना के किनारे बसी हुई है। उज्जयिनी के राजा प्रद्योत ने उदयन को बदी बना लिया। उसे जेल मे डाल अपनी लडकी वासवदत्ता को वीणा सिखाने के लिए नियुक्त कर दिया। उदयन और वासवदत्ता का आपस मे प्रेम हो गया और उदयन अपने नीतिनिपुण मन्त्री यौगन्धरायण की सहायता से वासवदत्ता को लेकर भाग गया। महा कवि भास ने तो इस पर एक सुन्दर नाटक ही लिख दिया है जिसका नाम "स्वप्न-वासवदत्ता" है।

अब यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ! जब तुम परम वैभवशालिनी विशाला नगरी के अपार ऐश्वर्य को देखने जाओगे तो वहा शीतल जलवाली शिप्रा नदी का मनोरम दृश्य भी तुम्हे देखने को मिलेगा। सुन्दर हस अपनी अव्यक्त मधुर बोलियो से इस नदी की शोभा बढाते है और यह अपने शीतल कण मिश्रित वायु से वहाँ की रमणियो की सुरत क्रीडा की थकावट को दूर करती है। अब कवि के अपने ही भावपूर्ण शब्दो मे देखिये—

दीर्घीकुर्वन पटु मदकलं कूजितं सारसानां
प्रत्यूषेषु स्फुटित कमलामोद मैत्री कषायः।
यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानि मङ्गानुकूलः
शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थना चाटुकारः ॥३२॥

अर्थ—जहाँ प्रात काल के समय तीव्र, मद से अव्यक्त मधुर हसो के कूजन को अधिक बढाती हुई, विकसित कमलो की सुगन्ध के साथ सम्पर्क होने के कारण तीक्ष्ण सुगन्ध से युक्त, शरीर को सुख देने वाली शिप्रा नदी की वायु रात के समय मधुर वचन बोलने वाले प्रेमी के समान स्त्रियो की रतिक्रीडा की थकावट को दूर करती है।

अब यक्ष मेघ को विशाला के विपुल वैभव का विशेष वर्णन करते हुए कहता है कि हे मेघ। उस विशाला नगरी के बाजारो मे दुकानो पर बहुमूल्य मोतियो के हार, असंख्य शख, मुक्ता, मणियाँ और विद्रुम दिखाई देगे। उन अमूल्य रत्नो को देख कर मन मे यही विचार उत्पन्न होता है कि समुद्र के सब रत्न, हीरे मणियाँ लाकर इस नगरी के बाजारो मे एकत्रित कर दिये है और समुद्र मे तो केवल जल ही शेष रह गया है। कालिदास विशाला के वैभव के नाते अपने देश की असीम समृद्धि का अनुपम वर्णन करता हुआ कहता है—

हारांस्ता रांस्तरल गुटिकान्कोटिशः शङ्खशुक्तीः
शष्पश्यामान्मरकतमणी नुन्मयूख प्ररोहान्।
दृष्ट्वा यस्या विपणि रचिता न्विद्रुमाणां च भङ्गा—
न्संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयःस्तोय मात्रावशेषाः ॥३३॥

अर्थ—जिस नगरी मे करोड़ो की सख्या मे बाजारो मे दुकानो मे सजाये हुए शुद्ध चमकीले और बीच मे बहुमूल्य मणिवाले मोतियो के हारो, शखो, सीपियो, हरित

घास के सदृश हरे ऊपर प्रकट होती हुई प्रकाश की किरणरूपी अंकुरों वाले पन्नों और मूँगो के टुकडो को देखकर पानी के खजाने समुद्र केवल जलवाले ही दिखाई देते है अर्थात् उनके सब रत्न तो विशाला के बाजारो मे इकट्ठे हो गये और समुद्रो मे केवल जल ही शेष रह गया दिखाई देता है। क्या कहना विशाला के इस विशाल वैभव का।

अब अगले श्लोक मे यक्ष विशाला का कुछ ऐतिहासिक परिचय देता हुआ मेघ को कहता है कि इसी प्रदेश मे उदयन वासवदत्ता को हरके ले गया था। यह प्रद्योत का वाडो का जगल था। यहाँ पर जल गिरि ने उत्पात मचाया था। इस प्रकार की कथाये वहाँ के लोग अपने अतिथियो को सुनाया करते हैं। तुम्हे भी ये सब बातें सुनने को मिलेगी और तुम्हारा मनोरजन भी होगा।

प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जह्रे
हैमं ताल द्रुमवन मभूदत्र तस्यैव राज्ञः।
अत्रोद्भ्रान्तः किल नलगिरिः स्तम्भ मुत्पाट्य दर्पा—
दि त्यागन्तून् रमयति जनो यत्र बन्धून भिज्ञः ॥३४॥

अर्थ—इसी जगह वत्सदेश के अधीश्वर उदयन ने प्रद्योत की प्यारी पुत्री का अपहरण किया था। यही उसी राजा का स्वर्ण जैसा अथवा सोने का ताड वृक्षो का वन था। इसी प्रदेश मे नलगिरि नामक हाथी ने मस्ती मे आकर बाँधने के खम्भे को उखाड कर उत्पात मचाया था। इस प्रकार जहाँ लोक कथाओ के जानने वाले बाहर से आये हुए अपने सम्बन्धियो को आनन्दित करते हैं अर्थात् इस प्रकार की कहानियाँ सुनाकर उनका मनोरजन करते है।

अब यक्ष मेघ के उत्साह को बढाने के लिए विशाला नगरी के मनोरम दृश्य को चित्रित करता हुआ कहता है कि हे मेघ! वहाँ पर खिडकियो के जालो मे से धुँआ निकल रहा होगा। जो तुम्हारे शरीर को पुष्ट करेगा। वैज्ञानिक दृष्टि से यह बात बडी भावपूर्ण है क्योकि धुँए को बादल का पोषक अग माना गया है अतः यह स्वाभाविक है कि धुएँ को पाकर बादल का आकार बढ जायेगा। वहाँ घरेलू मोर अपने मोहक नृत्य से तुम्हारा स्वागत करेगे कवि ने यहाँ भी प्रकृति के रहस्य को बडे सुन्दर ढग से प्रकट किया है। घनगर्जन सुनकर मयूर उन्मत्त होकर नाचने लगते है। वहाँ की सुन्दरियो के पैरो में मेहदी लगी होगी। तुम उनकी रूपमाधुरी का पान करके अपनी थकावट दूर करना जिससे मेरे सन्देश के ले जाने मे बाधा न पडे। इन्ही सब मज्जुलभावो को निम्नलिखित श्लोक मे कवि ने अनूठे ढग से दर्शाया है—

जालोद्गीर्णै रुपचितवपुः केशसंस्कार धूपै
र्बन्धु प्रीत्या-भवनशिखिभि र्दत्तनृत्योपहार।
हर्म्येष्वस्या. कुसुम सुरभिष्वध्व खेदं नयेथा।
लक्ष्मीं पश्यंल्ललित वनिता पादरागांकिडतेषु ॥३५॥

अर्थ—हे मेघ ! खिडकियो के जालो मे से निकलते हुए, केशो को सजाने मे प्रयुक्त धूपो से परिपुष्ट शरीर वाले, मित्र के स्नेह से पालतू मोरो द्वारा दी गई नाच रूपी भेट वाले तुम पुष्पो से सुवासित' सुन्दर रमणियो के चरणो की सजावट मे प्रयुक्त रगो से चिन्हित महलो मे इस नगरी की शोभा और समृद्धि को देख कर अपनी थकावट दूर करना ।

अब यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! तुम चण्डीश्वर अर्थात् शिव के मन्दिर मे जाना वहाँ शिव के कण्ठ के समान तुम्हारा रग देख कर शिव के सेवक तुम्हारा स्वागत करेगे शकुन्तला मे भी इस प्रकार का वर्णन आता है कि नीले बादल आजाने से गणो को आकाश मे शिव का भ्रम हो जाता है। पौराणिक कथा के अनुसार शिव को नीलकण्ठ और कण्ठेकाल भी कहते है । कहते है कि अमृत मथन के समय समुद्र से चौदह रत्न निकले थे । उनमे हलाहल (विष) भी एक था । इसे किसी ने नही लिया । देवताओ मे शिव ही एक ऐसे थे जिन्होने इसे स्वीकार किया और अमृत के कोष चन्द्रमा को अपने मस्तक पर स्थापित करके विष को पी लिया । तभी से विष के प्रभाव से उनका गला नीला पड गया । आगे यक्ष गन्धवती नदी की सुगन्धित वायु और स्नान करने वाली वहाँ की रमणियो के रमणीय अगराग का वर्णन करते हुए कहता है—

भर्तुः कण्ठच्छविरिति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणः
पुण्यं यायास्त्रिभुवन गुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य ।
धूतोद्यानं कुवलय रजोगन्धिभि र्गन्धवत्या
स्तोय क्रीडा निरत युवतिस्नान तिक्तै र्मरुद्भिः ।। ३६ ।।

अर्थ—हे मेघ ! अपने स्वामी शिवजी के गले की कान्ति के समान समझ कर शिवजी के गण अर्थात् सेवक आदर के दृष्टि से तुम्हे देखेगे और तुम गन्धवती नदी के कमलो की रज से सुगन्धित जलक्रीडा मे मग्न रमणियो की स्नान सामग्री से सुवासित पवनो से हिलाये गये उद्यानो वाले त्रिभुवन के स्वामी चण्डी देवी अर्थात् कात्यायनी के पति शिव के पवित्र धाम स्थान मे जाना अर्थात् तुम्हारी यात्रा के लिए यह भी शुभ है कि तुम शिवजी के दर्शन भी कर सकोगे और गन्धवती नदी की रमणीयता का आस्वाद भी लोगे।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! यदि तुम महाकाल अर्थात् शिवजी के मन्दिर मे सायकाल होने से पहले पहुँच जाओ तो वहाँ ठहरकर कुछ देर प्रतीक्षा करना । सायकाल की पूजा के समय तुम्हारा गर्जन नगाड़े का काम देगा और तुम्हे इसका बडा फल मिलेगा । उज्जयिनी के शिवजी के मन्दिर और उसमें स्थापित शिव की मूर्ति को **महाकाल** कहते है । उसी प्राचीन महाकाल के मन्दिर का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

अप्यन्यस्मिञ्जलधर महाकाल मासाद्यकाले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः।
कुर्वन् संध्या बलि पटहतां शूलिनः श्लाघनीया
मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम् ॥३७॥

अर्थ—हे मेघ ! सायकाल से पहले अन्य किसी समय मे भी महाकाल अर्थात् शिवजी के मन्दिर मे पहुँच कर जब तक सूर्य आखो के मार्ग से ओझल हो तब तक तुम्हे वहाँ प्रतीक्षा करनी चाहिए। त्रिशूल धारण करने वाले महादेव की सायकाल की बलि के लिए ढोल की प्रशसा के योग्य ध्वनि का काम करते हुए गम्भीर गर्जनो के सम्पूर्ण फल को प्राप्त करोगे।

अब यक्ष उज्जयिनी के विलासपूर्ण वैभव का वर्णन करते हुए मेघ को कहता है कि वहाँ वेश्याये तुम्हारी प्रथम दृष्टि से प्रसन्न होकर तुम्हे स्नेहभरी दृष्टि से देखेंगी। नृत्य के समय पैरो की ठुमकी से उनकी तगडियाँ बज रही होगी और उनके हाथ चँवरो के हिलाने से थके हुए होंगे। यहाँ यक्ष का यह अभिप्राय प्रतीत होता है कि हे मेघ ! तुम्हे शिवजी के दर्शनो का एक लाभ यह भी होगा कि जब वेश्याये महाकाल के समक्ष नाचती आयेगी तब तुम्हे कामिनी दर्शन हो जायगा। इन्ही सब भावो को दृष्टि मे रखकर कवि कहता है—

पाद न्यासैः क्वणितर शनास्तत्र लीला वधूतैः
रत्नच्छायाखचित वलिभिश्चामरैः क्लान्त हस्ताः।
वेश्यास्त्वत्तो नख पद सुखान् प्राप्य वर्षाग्रबिन्दू—
नामोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकर श्रेणि दीर्घान कटाक्षान् ॥३८॥

अर्थ—हे मेघ ! पाद निक्षेप से शब्द करती हुई तगडियो वाली, विलास पूर्वक हिलाये जाते हुए रत्नो की चमक से युक्त डडो वाले चँवरो से थके हुए हाथो वाली, वेश्याये तुमसे अपने शरीर के नख क्षतो को आराम देने वाली वर्षा की प्रथम बूँदो को प्राप्त करके तुम पर भ्रमरो की पक्ति के समान दीर्घ कटाक्षो की बौछारें करेगी अर्थात् स्नेहभरी दृष्टि से देखेगी।

अब यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! महाकाल मन्दिर मे सायकाल जब शिवजी ताण्डव नाच आरम्भ करेंगे उस समय तुम लाल लाल रग के होकर उनकी भुजाओ पर छा जाना और शिवजी की आर्द्र गज चर्म धारण करने की इच्छा को पूरी करके उनके कृपा पात्र बन जाना और पार्वती जी भी तुम्हे प्रेम की दृष्टि से देखेंगी। यहाँ पौराणिक कथा का सकेत है। गजासुर मर्दन के पश्चात् शिव ने उसी गीली मृग चर्म को भुजाओ पर डाल कर ताण्डव नाच किया था इसी ताण्डव नृत्त का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीनः
सान्ध्यं तेजः प्रतिनव जपा पुष्प रक्तं दधानः।

नृत्तारम्भे हर पशुपते रार्द्रं नागाजिनेच्छां
शान्तो द्वेग स्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या ।३९।

अर्थ—हे मेघ ! फिर पशुपति अर्थात् शिव के ताण्डव नृत्त आरम्भ होने पर ऊँची भुजाओ रूपी वृक्षो के वनो का गोल रूप मे व्याप्त करके नये जवा कुसुमो के समान सायकाल के प्रकाश को धारण करते हुए पार्वती की भय दूर हो जाने से शान्त स्थिर आँखो से देखी जाती हुई भक्ति वाले तुम शिव की हाथी की भीगी खाल को धारण करने की इच्छा को दूर करना।

अगला श्लोक कवि की कमनीय कोमल भावनाओ का उत्कृष्ट उदाहरण है। यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! शिवजी की सेवा करने के पश्चात् तुम उज्जयिनी नगरी मे जाना। वहाँ अभिसारिकाये अधेरे मे अपने प्रेमियो के पास जा रही होगी। तुम बिजली चमकाकर मार्ग के अँधेरे को दूर करना किन्तु गरजना मत नही तो वे कोमल हृदय वाली अभिसारिकाये डर जायेगी और उनके प्रणय सम्बन्ध मे विघ्न पड जायेगा और उस समय तुम बरसना भी न क्योकि वे गीली होकर अपने प्रेमियो के पास अभिसार कैसे करेगी। अतः उनको किसी भी प्रकार कष्ट न हो–ऐसा करना। इन्ही कोमल भावनाओ को श्लोक बद्ध करता हुआ कवि कहता है—

गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं
रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः ।
सौदामन्या कनकनिकष स्निग्धया दर्शयोर्वीं
तोयोत्सर्गस्तनित मुखरो मा च भूर्विक्ल वास्ताः ॥४०॥

अर्थ—हे मेघ ! वहाँ रात्रि को प्रेमियो के निवास स्थान को जाती हुई स्त्रियो को सूची भेद्य अर्थात् गाढे अधेरे से नष्ट हुए प्रकाश वाले राज मार्ग पर कसौटी पर खीची हुई सोने की रेखा के समान चमकीली बिजली से उर्वी अर्थात् मार्ग को दिखाना और न तो गरजना न वर्षा करना क्योकि स्त्रियाँ स्वभाव से ही डरपोक होती हैं।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! तुम और तुम्हारी सहचरी बिजली थक चुके होगे अतः नगर की किसी ऊँची अट्टालिका पर विश्राम करके शेष मार्ग को अगले दिन सूर्य उदय होने पर पूरा करना। तुम मेरे प्रिय मित्र हो, अतः मेरे इष्ट कार्य अर्थात् वियुक्ता प्रियतमा के प्रति मेरे प्रणय-सन्देश के ले जाने मे देर न करना क्योकि सच्चे मित्र अपने मित्रो के कार्य मे विलम्ब नही किया करते। इस श्लोक मे बिजली को मेघ की पत्नी कहा है क्योकि दोनो का पक्का साथ है। मित्र का मित्र पर अटूट विश्वास दिखाते हुए कवि कहता है—

तां कस्याचिद्भवन वलभौ सुप्तपारावतायां
नीत्वा रात्रिं चिर विलसनात्खिन्न विद्युत्कलत्रः ।
दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान् वाहयेदध्व शेषं
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थ कृत्याः ॥४१॥

अर्थ—हे मेघ ! चिरकाल तक चमकने के कारण थकी हुई बिजली रूपी पत्नी वाले आप सोये हुए कबूतरो वाली किसी भवन के ऊँचे छज्जे पर रात बिताकर फिर बचे हुए मार्ग को पूरा करना । इसमे सन्देह नही कि 'अगीकृत सुकृतिन परिपालयन्ति' अच्छे मित्र अपने मित्र के जिस काम को स्वीकार कर लेते है उसे पूरा करने मे कदापि विलम्ब नही करते ।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! सूर्य उदय होने पर नायक खण्डिता नायिकाओ के आँसू पोंछकर उनको प्रसन्न करते है । जिस स्त्री का प्रिय रात्रि मे किसी अन्य स्त्री से सम्भोग करके नखदन्त आदि के चिन्हो से युक्त अलसाई आँखो के साथ पास आता है वह खण्डिता नायिका कहलाती है । सूर्य ने भी अपनी पत्नी नलिनी की इसी प्रकार रात को उपेक्षा की थी । वह ओस के आँसू बहा बहाकर रोई । अत सूर्य भी अपनी प्यारी के आँसू पोछने के लिये आयेगा । तुम उसका मार्ग छोड देना नही तो वह तुम पर कुपित हो जायेगा और उसकी क्रोधाग्नि मे तुम भस्म हो जाओगे और मेरे कार्य मे बाधा पडेगी । अत विचारपूर्वक कार्य करना ।

सूर्य अस्त होने पर नलिनी उदास हो जाती है और ओस के आँसू बहाती है । सूर्य पुन उदित होकर उसे विकसित करता है । भगवान् भास्कर के प्रचण्ड होने पर बादल छिन्न भिन्न हो जाते है—इन्ही सब प्राकृतिक गम्भीर भावो का अलकृत भाषा मे वर्णन करते हुए कवि कहता है :—

तस्मिन काले नयन सलिलं योषितां खण्डितानां
शान्तिंनेयं प्रणयिभिरितोवर्त्मभानो स्त्यजाशु ।
प्रालेयास्त्रं कमलवदनात् सोऽपिहर्तु नलिन्याः
प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्य सूयः ।।४२।।

अर्थ—हे मेघ ! उस समय अर्थात् सूर्य के निकलने पर प्रेमियों द्वारा उपेक्षित स्त्रियो के आँसू पूँछे जाते है इसलिए तुम सूर्य के मार्ग को शीघ्र ही छोड देना । वह सूर्य भी नलिनी के कमल रूपी मुख से ओस रूपी आँसुओ को पोंछने के लिए लौटा हुआ तुम्हारे किरण रूपी हाथो को रोकने वाला होने पर अर्थात् यदि तुम छाया करोगे तो वह तुम पर विशेष रूप से क्रुद्ध होगा ।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! तुम गम्भीरा नदी के दर्शन करोगे । उसके निर्मल नीर मे तुम्हारी छाया पडेगी । वह तुम्हारे प्रति अपने प्रेम को चचल मछलियो की सुन्दर मतवाली दृष्टियो से प्रकट करेगी । तुम उसकी उपेक्षा न करना और उसका उपभोग कर उसका आदर करना । कवि ने सुखद यात्रा में स्थान-स्थान पर मेघ का नदियो के साथ सम्पर्क दिखाकर मेघ को पुष्ट रखने का विचित्र प्रयास किया है और मेघ और नदियो के प्राकृतिक सम्बन्ध का अलकारिक ढग चित्रण कर काव्य के सौन्दर्य को उत्कृष्ट कर दिया है । इस श्लोक मे गम्भीरा नदी को उत्तम प्रकृत्ति की नायिका बताकर कवि ने व्यजना की अपूर्व अभिव्यक्ति की है । देखिये कवि के अपने शब्द :—

गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने
छायात्माऽपि प्रकृति सुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम् ।
तस्मादस्याः कुमुद विशदान्यर्हसि त्वं न धैर्या
न्मोघीकर्तुं चटुल श फरोद्वर्तन प्रक्षितानि ॥४३॥

अर्थ—हे मेघ ! गम्भीरा नाम की नदी के निर्मल चित्त के समान स्वच्छ जल मे स्वभाव से सुन्दर तुम्हारा छाया रूपी शरीर प्रवेश प्राप्त करेगा । इसलिए तुम कमल के सदृश श्वेत शफर नामक मछली के चचल उल्टावो, रूपी दृष्टियो को उपेक्षा से विफल करने योग्य नही हो अर्थात् तुम उसकी उपेक्षा न करना । वह नदी तो तुम्हे हृदय मे धारण करेगी ।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहना है कि हे मेघ ! वर्षा ऋतु मे पानी नदी के किनारो तक पहुँच जाता है और किनारे के बेतो की शाखाओ को छूने लगता है परन्तु ग्रीष्म काल मे वही पानी किनारो से दूर चला जाता है । कवि ने इस श्लोक मे अपनी कमनीय कल्पना से बेतो को नदी के हाथ बताया है, किनारों को नदी रूपी स्त्री के सघन जघन और पानी को नीले वस्त्र । ग्रीष्म ऋतु मे मेघ नदी के पानी को पी लेता है । अत कवि कहता है कि गम्भीरा नदी के वानीर रूपी हाथो से पकडे हुए जल रूपी वस्त्र को किनारे रूपी जघनो से हटाकर उसका सुख भोगने के कारण तुम्हे वहाँ कुछ देर लगेगी और तुम्हारा वहाँ से जाना भी कठिन हो जायेगा फिर भी जैसे तैसे तुम मेरे काम के लिये आगे बढ़ना ।

तस्याः किं चित्करधृतमिव प्राप्त वानीर शाखं
हृत्वा नीलं सलिल वसनं मुक्तरोधो नितम्बम् ।
प्रस्थानं ते कथम पि सखे ! लम्बमानस्य भावि
ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः ॥४४॥

अर्थ—हे मित्र मेघ ! बेत की शाखाओ द्वारा छूए जाने वाले, मानों कुछ हाथ मे पकडे हुए, किनारे रूपी जघनों से खिसके हुए, नीले रग के उस गम्भीरा नदी के जलरूपी वस्त्र को उतार कर पानी से भरे होने के कारण लटकते हुए तुम्हारा वहाँ से चलना कुछ कठिन होगा क्योकि जो व्यक्ति एक बार कामिनी के सम्भोग सुख का आस्वाद ले लेता है उसके लिए नगे सघन जघनो वाली स्त्री को छोडना कठिन हो जाता है ।

अब यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! तुम्हारे मार्ग मे देवगिरि आयेगा और तुम्हारे नीचे से शीतल मन्द सुगन्ध और गूलरो को पकाने वाली वायु चलेगी । भाव यह है कि वर्षा की बूंदो के गिरने से पृथ्वी से भीनी भीनी सुगन्ध निकलती है और उस गन्ध से मिलने पर वायु भी सुगन्धित हो जाती है ।

त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसित वसुधागन्ध संपर्क रम्यः
स्रोतोरन्ध्र ध्वनित सुभगं दन्ति भिः पीयमानः ।

नीचैं र्वास्यत्युप जिगमिषोर्देव पूर्वं गिरि ते
शीतो वायु परिणमयिता काननोन्दुम्बराणाम् ।।४५।।

अर्थ—हे मेघ ! तुम्हारे बरसने से फूली हुई पृथ्वी के गन्ध के स्पर्श से सुख ने वाली नाक के नथनो के शब्द से सुन्दर रूप मे हाथियो द्वारा पीयी जाती हुई, जगल के गूलरो को पकाने वाली शीतल वायु देवगिरि के समीप जाने की इच्छा करने वाले तुम्हारे नीचे से बहेगी ।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! वहाँ देवगिरि पहाड पर तुम्हे स्कन्द अर्थात् कुमार कार्तिकेय के दर्शनो का सौभाग्य भी प्राप्त होगा । उन्हे शिवजी ने इन्द्र देवता की सेनाओ की रक्षा के लिए अग्नि के मुख मे वीर्य स्थापित करके पैदा किया है । अत वह स्कन्द सूर्य से भी अधिक बलवान और तेजस्वी है । अत उनको प्रसन्न करना बड़ा आवश्यक है । अत तुम फूलो के मेघ का रूप धारण करना और पुष्पो की वृष्टि से उनको स्नान कराना । पौराणिक कथा के अनुसार तारक राक्षस को मारकर देवताओ की प्रार्थना पर स्कन्द ने देवगिरि पर निवास करना स्वीकार किया था ।

तत्र स्कन्दं नियत बसति पुष्पमेघीकृतात्मा
पुष्पासारैः स्नपयतु भवान् व्योमगंगाजलार्द्रैः ।
रक्षाहेतोर्नवं शशिभृता वासवीनां चमूना—
मत्यादित्य हुतवह मुखे सभृतं तद्धि तेजः ।।४६।।

अर्थ—हे मेघ ! पुष्पो से बने बादल का रूप धारण कर आप वहाँ पर सदा रहने वाले स्कन्द को आकाश गगा के जलो से भीगे हुए फूलो की वृष्टि से स्नान कराना क्योकि वह इन्द्र की सेनाओ की रक्षा के लिये नूतन चन्द्र को धारण करने वाले शिव जी के द्वारा अग्नि के मुख मे स्थापित किया हुआ सूर्य से भी अधिक शक्तिशाली तेज है ।

अब यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! वहाँ पर पार्वतीजी अपने पुत्र स्कन्द के प्रेम से उसके मोर के पखो मे से गिरे हुए पिच्छ (पैंच) को अपने कानो मे धारण करती है । यह मोर शिव जी के मस्तक के चन्द्रमा की किरणो से सफेद हो रहा है । सभी मोर तुम्हे प्यार की दृष्टि से देखते है । अत तुम अच्छी तरह गरजना जिससे तुम्हारी गर्जन का शब्द पर्वतो की गुफाओ मे गूँजने लगेगा । इस गूँज से स्कन्द का मोर खूब नाचेगा । इस प्रकार शिव के पुत्र स्कन्द को प्रसन्न करने से तुम्हे बड़ा पुण्य मिलेगा ।

ज्योतिर्लेखावलयि गलितं यस्य बर्हं भवानी
पुत्रप्रेम्णा कुवलयदल प्रापि कर्णे करोति ।
धौतापांग हरशशिरुचा पावके स्तं मयूरं
पश्चादद्रि ग्रहण गुरुभि र्गर्जितैर्नर्तयेथाः ।।४७।।

अर्थ—हे मेघ ! चमकते हुए प्रकाश की रेखाओ के मण्डलो से युक्त गिरे हुए जिसके पैच को पार्वती जी पुत्र स्नेह से कमल की पत्तियो को धारण करने योग्य कान मे पहनती है। शिव के चन्द्रमा की कान्ति से धुली हुई आँखो के कोरों वाले स्कन्द के उस मोर को पीछे हो कर पर्वतो मे गूँजने के कारण बढी हुई अपनी गर्जनो से नचाना अर्थात् ऐसा करने से स्कन्द के भी तुम कृपा पात्र बन जाओगे और यात्रा मे तुम्हे सफलता मिलेगी।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! स्कन्द अर्थात् कुमार कार्तिकेय की आराधना कर तुम आगे बढना। तुम्हारी वर्षा के भीगने के डर से सिद्ध तुम्हारा मार्ग छोड देंगे और तुम बिना किसी रुकावट के आगे बढ सकोगे। तुम्हारे मार्ग मे चर्मण्वती नदी आयेगी उसका आदर अवश्य करना क्योकि वह नदी महाराज रन्तिदेव के गवालम्भ यज्ञ से उत्पन्न हुई है और उसके यश का चिह्न है। पौराणिक कथा के अनुसार एक बार रन्तिदेव ने यज्ञ मे इतनी गौओ की हत्या की कि उनके रुधिर से नदी बहने लगी और वह "चर्मण्वती" के रूप मे परिणत हो गई। आजकल इस नदी को चम्बल कहते है—

आराध्यैनं शरवणभवं देवमुल्लंघिताध्वा
सिद्ध द्वन्द्वैं र्जलकण भयाद्वीणिभि र्मुक्त मार्गः।
व्यालम्बेथा. सुरभित नयालम्भजां मानयिष्य
न्स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम् ॥४८॥

अर्थ—हे मेघ ! सरकडो के वन मे उत्पन्न हुए इस भगवान् स्कन्द की आराधना करके वीणधारी सिद्धो के जोडो द्वारा पानी की बूंदो के डर से त्यागे हुए मार्ग वाले, कुछ मार्ग पार करने वाले तुम गौ की हिंसा करने से अथवा गवालम्भ नामक यज्ञ से उत्पन्न इस पृथ्वी पर नदी के रूप मे बदले हुए रन्तिदेव के यश का मान करते हुए कुछ देर लगाना पुन आगे बढ़ना।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! तुम नील वर्ण हो। जब तुम दूर से कृश दिखाई देने वाली उस चर्मण्वती नदी पर जल पीने के लिये झुकोगे तब व्योम-बिहारी अर्थात् सिद्धगन्धर्व आदि एक टक दृष्टि से तुम्हे देखेंगे। उस समय तुम ऐसे प्रतीत होगे जैसे पृथ्वी के हार के बीच की मोटी इन्द्र नीलमणि हो। कवि का अभिप्राय यह है कि नदी की धारा मोतियो के समान प्रतीत होगी। जैसे हार मे एक धागे मे श्वेत मोती पिरोये हुए होते है। बीच मे एक मोटी-सी इन्द्र नीलमणि पिरो दी जाती है। नदी की धारा सफेद है और एक सूत्र मे पिरोई मालूमहोती है। उस पर झुका हुआ नीले रग का मेघ इन्द्र नीलमणि के समान दिखाई देगा ऐसा ही वर्णन कालिदास ने रघुवश महाकाव्य मे किया है—

त्वयादातुं जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्ण चौरे
तस्याः सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात्प्रवाहम्।
प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयों नूनमावर्ज्य दृष्टी—
रेकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूल मध्येन्द्र नीलम् ॥४९॥

अर्थ— हे मेघ ! आकाश मे विचरण करने वाले अवश्य ही दृष्टि फेर कर अथवा स्थिर दृष्टि से कृष्ण के रग को चुराने वाले अर्थात् श्याम वर्ण तुम्हारे पानी लेने के लिए झुकने पर विशाल होती हुई भी दूरी के कारण पतली प्रतीत होने वाली उस नदी की धारा को बीच मे बडी इन्द्र नीलमणि वाले पृथ्वी के एक मोतियो के हार के समान देखेगे।

अब यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! उस चर्मण्वती नदी को पार कर तुम दशपुर मे प्रस्थान करना। वहाँ की ललनाये तुम्हे हर्षोल्लास और आश्चर्य से देखेगी। मुग्ध करने वाली उनकी भौहे मटक रही होगी और पलको के खुले रहने के कारण उनसे तरह तरह की चमक निकल रही होगी और भ्रमरो की शोभा को भी मात कर रही होगी। अर्थात् वहाँ की सुन्दर स्त्रियाँ अपने काले काले नेत्रो से तुम्हे प्रेमपूर्वक देखेगी —

तामुत्तीर्य व्रज परिचित भ्रूलता विभ्रमाणाँ
पक्ष्मो त्क्षेपादुपरि विलसत्कृष्ण शार प्रभाणाम् ।
कुन्द क्षेपानुगम मधुकर श्रीमुषा मात्म बिम्बं
पात्री कुर्वन् दशपुर बधू नेत्र कौतू हलानाम् ॥५०॥

अर्थ—हे मेघ ! उस चर्मण्वती नदी को पार करके अपने रूप को कोमल सुन्दर भौंहो के मटकाने से परिचित, पलको को ऊपर उठाने के कारण ऊपर को चमकने वाली काली रग विरगी कान्ति वाले कुन्द फूलो के हिलने पर पीछे पीछे भ्रमण करने वाले भ्रमरो की छवि को चुराने वाले दशपुर की बहुओ की आँखों का विषय बनाते हुए जाना। आर्थात् दशपुर बधू तुम्हे प्रेम भरी दृष्टि से देखेगी।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! तुम ब्रह्मावर्त देश मे पहुँचकर कुरुक्षेत्र जाना जहाँ गाण्डीव धनुर्धारी अर्जुन ने अपने तीक्ष्ण शरो से असख्य क्षत्रियो के सिरो को काटा था—

ब्रह्मावर्तं जनपदमथच्छायया गाहमानः
क्षेत्रं क्षत्रप्रधन पिशुनं कौरवं तद्भजेथाः ।
राजन्यानां शितशर शतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा
धारापा तैस्त्वमिव कमलान्यम्य वर्षन्मुखानि ॥५१॥

अर्थ—हे मेघ ! इसके पश्चात् ब्रह्मावर्त नाम के देश को अपनी छाया से अवगाहन करते हुए क्षत्रियो के विनाश को बतलाने वाले उस कुरुओ के क्षेत्र को अर्थात् कुरुक्षेत्र को जाना जहाँ जल धारा द्वारा कमलो पर तुम्हारे समान गाण्डीव धनुष को धारण करने वाले अर्जुन ने अपने तीक्ष्ण बाणो से राजाओ के मुखो पर वर्षा की थी अर्थात् उनके सिरो को काटा था।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे सौम्य मेघ ! तुम सरस्वती नदी के पवित्र जल का पान अवश्य करना इस पवित्र पानी के पीने से तुम्हारा अन्तः-

करण शुद्ध हो जायेगा। तुम केवल बाहर से ही कृष्ण वर्ण रह जाओगे। श्री कृष्ण के भाई बलराम ने महाभारत के भयकर युद्ध से विमुख होकर अपनी प्यारी पत्नी रेवती के नेत्रो से अकित प्रेमभरी मदिरा को छोड़कर हृदय की शुद्धि के लिए इसी पुण्य सलिला सरस्वती के पवित्र जल का पान किया था अत तुम भी ऐसा ही पुरुषार्थ करना—

हित्वाहालामभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्कां
बन्धु प्रीत्या समरविमुखो लांगली याः सिषेवे।
कृत्वा तासामधिगममपां सौम्य सारस्वतीना—
मन्तः शुद्धस्त्व मपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः ॥५२॥

अर्थ—हे सुन्दर मेघ ! बान्धवो के स्नेह के कारण महाभारत के युद्ध से विमुख होने वाले हलधर अर्थात् बलराम ने सुन्दर स्वाद वाली रेवती के नेत्रो के चिन्हो वाली मदिरा को छोडकर जिन जलो का पान किया था तुम उन्ही सरस्वती के स्वादु सलिलो को प्राप्त करके अन्दर से पवित्र होते हुए भी केवल रग से काले रहोगे अर्थात् सरस्वती के पवित्र जल का पान करके आपका हृदय पवित्र हो जायेगा और इस प्रकार आपको आध्यात्मिक लाभ होगा।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! उस कुरुक्षेत्र से आगे तुम कनखल जाना जहाँ गगा हिमालय से नीचे उतरती है। वह जन्हु की पुत्री गगा सगर के पुत्रो को स्वर्ग देने वाली है और पार्वती की सौत है और उसकी अवहेलना करके शिवजी की जटाओ मे निवास करती है। अत यह नदी परम पवित्र है और इसके जल से तुम्हारे सब पाप नष्ट हो जायेगे अत तुम गगा पर अवश्य जाना —

तस्माद्गच्छेरनु कनखलं शैल राजावतीर्णां
जह्नो कन्यां सगरतनय स्वर्ग सोपान पंक्तिम्।
गौरी वक्त्र भ्रकुटि रचनां या विहस्येव फेनैः
शम्भोः केश ग्रहणम करोदिन्दु लग्नोर्मिहस्ता ॥५३॥

अर्थ—हे मेघ ! उस कुरुक्षेत्र से पार्वती के मुख की भौहों के भग पर मानो अपने फेन से हँसकर, चन्द्रमा को छूने वाली लहरों रूपी हाथो वाली जिसने शिवजी के केशों को पकडा था उस कनखल के समीप पर्वतराज हिमालय से उतरी हुई सगर के पुत्रों के लिए स्वर्ग की सीढी के समान जह्नु कन्या अर्थात् गगा पर जाना।

अब अगले श्लोक में यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! जब तुम भगवती भागीरथी के पवित्र जल का पान करने के लिए झुकोगे तो ऐसा प्रतीत होगा मानो गंगा और यमुना का प्रयाग से भिन्न स्थान मे सगम हो रहा है क्योकि तुम्हारा रंग यमुना के जल के समान श्याम है—

तस्या. पातुं सुरगजइव व्योम्नियश्चार्धलम्बी
त्वं चेदच्छस्फटिक विशदं तर्क ये स्तिर्यगम्भ.।

संसर्पन्त्या सपदि भवत स्रोतसिच्छाययाऽसौ
स्यादस्थानोपगत यमुनासंगमेवाभि रामा ।।५४।

अर्थ—हे मेघ ! यदि देवताओं के हाथी के समान आकाश मे पीछे को आधा लटकते हुए तुम उस गगा के सफेद स्फटिक मणि के समान निर्मल जल को टेढे होकर पीने का विचार करो तो शीघ्र ही धारा मे चलते हुए आपके प्रतिबिम्ब से सुन्दर वह गंगा मानो प्रयाग से भिन्न स्थान मे यमुना से मेल प्राप्त करने वाली प्रतीत होगी। गंगा और यमुना का सगमस्थल प्रयागराज है किन्तु मेघ के साथ मेल हाने के कारण कनखल मे सगम का दृश्य दिखाई देगा।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! तुम गगा के उत्पत्ति स्थान पर्वतराज हिमालय पर अवश्य जाना। यह पर्वत मृगो की नाभि से निकली हुई कस्तूरी की मोहक सुगन्ध से सुवासित है और शुभ्र हिम से ढँका हुआ है। जब तुम विश्राम करने के लिए इस हिमाच्छादित पर्वत पर बैठोगे तो ऐसा प्रतीत होगा मानो शिवजी के बैल ने अपने ऊपर कीचड उछाली है। शिवजी का बैल सफेद माना गया है। क्रीडा करते हुए वह मिट्टी के टीले आदि से टक्कर मारता है और उसके शरीर पर काली-काली कीचड लग जाती है। इधर हिमालय पर्वत सफेद है और काला बादल उसकी चोटियो पर बैठा है अत दोनो मे समानता है। इसी भाव को लेकर कवि कहता है:—

आसीनानां सुरभितशिलं नाभि गन्धै मृंगाणां
तस्या एव प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारैः।
वक्ष्य स्यध्व श्रय विनयने तस्य शृङ्गे निषण्णः
शोभां शुभ्रत्रिनयन वृषोत्खात पंकोपमेयाम् ।।५५।।

अर्थ—हे मेघ ! बैठे हुए मृगो की नाभि मे स्थित कस्तूरी का गन्ध से सुगन्धित शिला वाले उसी गंगा नदी के उद्‌गम स्थान बर्फ से सफेद पर्वत पर पहुँचकर मार्ग की थकावट को दूर करने वाली उसकी चोटी पर बैठे हुए तुम तीन नेत्रो वाले शिवजी के सफेद बैल द्वारा ऊपर डाली हुई कीचड के समान शोभा को धारण करोगे।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! यदि गिरिराज हिमालय के जगलो मे तीव्र वायु के चलने से सरकण्डो की रगड से दावाग्नि अपना प्रकोप दिखाये अर्थात् आग लग जाये तो अपने जल की सहस्र धाराओ से उसे बुझा देना—

तं चेद्वायौ सरति सरल स्कन्ध संघट्टजन्मा
बाधेतोल्का क्षपित चमरी बालभारो दवाग्निः।
अर्हस्येनं शमयितुमलं वारिधारा सहस्रै—
रापन्नार्ति प्रशमनफलाः सम्पदोह्युत्तमानाम् ।।५६।।

अर्थ—हे मेघ ! यदि वायु के चलने पर चीड़ के वृक्षो के तनो की रगड से उत्पन्न हुई, लपटो से चमरी मृगो के बालो के समूह को दग्ध करने वाली वन की

अग्नि उस हिमालय पर्वत को सताये तो तुम्हे इसको जल की सहस्र धाराओ से शान्त करना चाहिए क्योकि श्रेष्ठो की सम्पत्ति का एकमात्र प्रयोजन दु खियो के दु.ख को दूर करना है ।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! यदि क्रोध मे आकर शरभ नाम के मृग आपके मार्ग मे बाधा उपस्थित करे तो उन्हे ओलो की तीव्र वृष्टि से तितर-वितर कर देना अर्थात् इधर-उधर भगा देना क्योकि ऐसा करने मे कोई दोष नही । जो व्यर्थ ही दूसरो के कार्य मे बाधा डालते है उन्हे दण्ड मिलना ही चाहिए —

ये संरम्भोत्पतनरभसाः स्वांगभंगाय तस्मि—
न्मुक्ताध्वानं सपदि शरभा लङ्घयेयुर्भवन्तम् ।
तान्कुर्वीथा स्तुमुल करकावृष्टि पातावकीर्णा—
न्के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः ।।५७।।

अर्थ—हे मेघ ! उस हिमालय पर्वत पर क्रोध से तीव्र दौडने वाले अथवा ऊपर को उछलने वाले जो शरभ मृग विशेष मार्ग छोडने वाले आपको शीघ्र ही अपने अगो को तुडवाने के इच्छुक उल्लघन करे अर्थात् आपके मार्ग मे रुकावट डाले तो उनको ओलो की घोर वर्षा करके इधर-उधर भगा देना । ठीक कहा है कि व्यर्थ कामों मे परिश्रम करने वाला कौन व्यक्ति तिरस्कार को नही प्राप्त होता अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति अपमान का विषय बन जाता है ।

महाकवि कालिदास शिव के अनन्य भक्त प्रतीत होते है । उन्होने पूर्वमेघ में कई स्थानों पर भक्तवत्सल शिव का वर्णन किया है । अब अगले श्लोक मे भी यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! उस हिमालय पर्वत पर सब का कल्याण करने वाले शिवजी के पावन चरणो के चिन्ह अभी तक दिखाई देते है । सिद्ध उनकी ही पूजा करते हैं क्योकि शकर के दर्शन से पाप दूर हो जाते है अत तुम भी अविचल भक्ति से एवं नम्रता से उनके दर्शन करना । तुम्हारी जीवन नौका भी अपार भवसागर से पार हो जायेगी क्योकि शिवजी के उपासक मरने के बाद शिवजी के गणो मे स्थान पाते है—

तत्र व्यक्तं दृषदि चरणन्यास मर्धेन्दुमौलेः
शश्वत्सिद्धै रुपचितबलिं भक्तिनम्रः परीयाः ।
यस्मिन् दृष्टे करण विगमादूर्ध्वमुद्धूत पापाः
कल्पिष्यन्ते स्थिर गणपद प्राप्तये श्रद्दधानः ।।५८।।

अर्थ—हे मेघ ! भक्तिभाव से नम्र होकर तुम उस हिमालय पर्वत की किसी शिला पर स्पष्ट रूप से दिखाई देने वाले, सिद्धों द्वारा लगातार बलि प्राप्त करने के लिए अर्धचन्द्र को मस्तक पर धारण करने वाले शिवजी के पदो के चिह्नो की परिक्रमा करना जिसके दर्शन करने पर नष्ट हुए पापो वाले श्रद्धालु व्यक्ति साधन रूप

शरीर की समाप्ति के पश्चात् शिवजी के गणो के स्थायी पद को प्राप्त करते है अर्थात् मृत्यु के पश्चात् परम गति को प्राप्त होते हैं।

अब अगले श्लोक मे भी यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! उस हिमालय पर्वत पर जब तीव्र वायु चलती है और वह बाँसो मे भर जाती है तब उनमे से मधुर ध्वनि प्रकट होती है। किन्नरो की स्त्रियाँ मिलकर त्रिपुर विजय के मगलगान गाती है। यदि तुम भी वहाँ गुफाओ मे गम्भीर गर्जन कर दो तो शिवजी के सगीत के सभी अग पूर्ण हो जायेगे। अत अपनी गरजन द्वारा तुम्हे शिवजी की सेवा अवश्य करनी चाहिये। ऐसा करने से तुम्हारा वास्तविक भक्तिभाव प्रकट होगा —

शब्दायन्ते मधुर मनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः
संरक्ताभिस्त्रिपुर विजयो गीयते किंनरीभिः।
निर्ह्रादस्ते मुरज इव चेत्कन्दरेषु ध्वनिस्या—
त्संगीतार्थो ननु पशुपते स्तत्र भावी समग्रः ॥५९॥

अर्थ—हे मेघ ! हवाओ से भरे जाते हुए बाँस मधुर-मधुर शब्द करते है। इकट्ठी हुई किन्नर-नारियो द्वारा त्रिपुर विजय के गीत गाये जाते है। यदि कन्दराओ मे तुम्हारा गम्भीर गर्जन मृदङ्ग के शब्द के समान हो जाये तो निश्चय ही वहाँ शिव के सगीत की सामग्री पूरी हो जायेगी।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! तुम हिमालय पर्वत के रमणीय स्थानो को पार करते हुए क्रौचरन्ध्र मे से निकलकर उत्तर की ओर जाना। यह क्रौचरन्ध्र परशुराम जी की कीर्ति को बढाने वाला है और मानसरोवर जाने के लिए हसो का द्वार है। इससे निकलते हुए श्याम वर्ण के तुम ऐसे दिखाई दोगे जैसे बलि को ठगने के लिए विष्णु ने अपना चरण फैलाया हुआ हो:—

प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्य तां स्तान्विशेषा।
न्हंसद्वारं भृगुपति यशोवर्त्म यत्क्रौंचरन्ध्रम्।
तेनोदीचीं दिशमनुसरे स्तिर्यगायाम् शोभी
श्यामः पादो बलि नियमनाभ्युद्यतस्येव विष्णोः ॥६०॥

अर्थ—हे मेघ ! हिमालय के तट के समीप अर्थात् सीमा के पास उन विशेष स्थानों को पार करके हसो के द्वार, परशुराम की कीर्ति का व्यापक जो क्रौञ्च पर्वत का रन्ध्र है उससे बलि को वश मे करने के लिए उतारू विष्णु के काले चरण के समान, टेढ़े फैलाव की शोभा वाले तुम उत्तर दिशा की ओर जाना।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! आगे चलकर तुम कैलास पर्वत पर पहुँचोगे। जिसके जोड़ो को रावण ने हिलाया था। यह पर्वत देवताओ की स्त्रियो का दर्पण है। इसके शिखर गगन चुम्बी है और इतने श्वेत है मानो शिवजी का अट्टहास एकत्रित हो गया हो:—

गत्वा चोर्ध्वं दशमुख भुजोच्छ्वासित प्रस्थ सधेः।
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः।
शृंगोच्छ्रायैः कुमुद विशदैर्यो वितत्य स्थितः खं
राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः॥६१॥

अर्थ—हे मेघ ! आगे जाकर रावण की भुजाओ द्वारा हिलाये गये जोडों वाले, देवताओ की स्त्रियो के लिए दर्पण कैलास पर्वत के अतिथि होना जो कुमुद के समान स्वच्छ उन्नत शिखरो से आकाश को व्याप्त करके खडा हुआ है और शिवजी के एकत्रित हुए अट्टहास के समान अत्यन्त धवल है।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! तुम्हारा रंग मसले हुए काजल के समान श्याम है और कैलास का रूप तुरन्त काटे हुए हाथी दांत के समान है। अत. जब तुम पर्वत के शिखर पर बैठोगे तब तुम ऐसे लगोगे जैसे बलराम जी ने अपने कन्धे पर नीले वस्त्र रखे हो—

उत्पश्यामि त्वयि तटगते स्निग्ध भिन्नाञ्जनाभे
सद्यः कृत्त द्विरददशनच्छेद गौरस्य तस्य।
शोभामद्रेः स्तिमितनयन प्रेक्षणीया भवित्री
मसन्यस्ते सति हलभृतो मेचकेवाससीव॥६२॥

अर्थ—हे मेघ ! चमकीले, चिकने मसले हुए काजल के समान तुम्हारे पर्वत के शिखरो पर चढ जाने पर तुरन्त काटे हुए हाथी के दाँत के टुकडे के समान श्वेत उस पर्वत के नीले वस्त्र के कन्धे पर रख लेने पर बलराम की जैसी शोभा होती है वैसी ही तुम्हारी दिखाई दे रही है।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! वहाँ कैलास पर्वत पर तुम शिवजी की सेवा मे प्रमाद न करना प्रत्युत्त बडी श्रद्धा से उनकी सेवा मे तत्पर रहना। यदि वहाँ भवानी जी शिवजी का हाथ पकड़ कर भ्रमण कर रही हो तो अपने शरीर को सीढी के रूप मे परिवर्तित कर लेना जिससे पार्वती जी और शिवजी सरलता से मणि तट पर चढ जायें—

हित्वा तस्मिन् भुजगवलय शुम्भना दत्तहस्ता
क्रीडाशैले यदि च विचरेत्पाद चारेण गौरी।
भंगीभक्तया विरचितवपुः स्तम्भितान्तर्जलौघ
सोपानत्व कुरु मणितटा रोहणायाग्रयायी॥६३॥

अर्थ—हे मेघ ! और उस क्रीडा पर्वत पर शिवजी के द्वारा साप रूपी कड़े को छोडकर दिये हुए हाथ वाली पार्वती यदि पैदल घूमे तो आगे होकर अपने जल समूह को अन्दर ही रोककर जोड़ो की रचना द्वारा शरीर को ढाल कर तुम मणि तट पर चढने के लिए सीढी का काम देना। ऐसा करने से तुम शिवजी और पार्वती जी के स्नेह भाजन बन जाओगे।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! उस सुन्दर कैलास पर्वत पर देवागनाये तुम्हे अपने स्नान के लिये फुब्बारा बनायेगी और कुछ देर के लिये वे तुम्हे रोकेगी। यदि वहाँ कुछ अधिक विलम्ब हो और शीघ्र छुटकारा न मिले तो कठोरता से गरज कर उन्हे डरा देना और उनसे बच कर आगे बढना—

तत्रावश्यं वलय कुलिशोद्धट्टनोद्गीर्णतोयं
नेष्यन्ति त्वां सुरयुवतयो यन्त्राधारागृहत्वम् ।
ताभ्यो मोक्षस्तव यदि सखे ! धर्मलब्धस्य नस्या-
त्क्रीडालोला: श्रवण परुषैर्गर्जितैर्भाय येस्ताः ॥६४॥

अर्थ—हे मित्र मेघ ! वहाँ कैलास पर्वत पर देवताओ की स्त्रिया अपने कडो की टक्कर से पानी बरसाने वाले तुमको फुब्बारे का स्नानग्रह बनायेगी। गर्मी की ऋतु मे मिले हुए तुम्हारा वहाँ से शीघ्र छुटकारा न हो तो सुनने मे कठोर अपने गर्जनो से क्रीडा मे मग्न हुई उन सुरागानाओ, को डरा देना।

अव अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! वहाँ मानसरोवर के स्वच्छ जल का पान करना वहाँ सुनहरी कमल उत्पन्न होते है। अत. तुम्हे बडा आनन्द प्राप्त होगा ! कुछ देर ऐरावत के मुख को ढककर उसे सुख पहुँचाना जिससे वह तुम्हे किसी प्रकार की हानि न पहुँचाये। वही कल्पवृक्ष के पत्तो मे चचलता उत्पन्न करना और उस रमणीय पर्वत पर आनन्दपूर्वक विचरण करना —

हेमाम्भोज प्रसवि सलिल मानसस्याददानः
कुर्वन् काम क्षणमुख पटप्रीति मैरावतस्य
धुन्वन् कल्पद्रुम किसलयान्य शुकानीव वातै—
र्नाना चेष्टै र्जलद ललितै र्निर्विशे स्त नगेन्द्रम् ॥६५॥

अर्थ—हे मेघ ! मानसरोवर के सुनहरी कमलो को उत्पन्न करने वाले पानी को लेते हुए मुँह पर कपड़ा देने के कारण ऐरावत को प्रसन्न करते हुए वस्त्रों के समान कल्पवृक्ष की कोंपलो को हवा से हिलाते हुए इस प्रकार अन्य लीलाओ से उस पर्वत-राज पर अपनी इच्छानुसार विचरण करना।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! उस मनोरम पर्वत कैलास की गोद मे अलकापुरी है। उसके नीचे गगा बह रही है अत वह प्रिय को गोद में बैठी हुई वस्त्र हीन प्रेमिका के ससान प्रतीत होती है। वहाँ वडे-बड़े गगनचुम्बी प्रासाद है। वर्षा ऋतु मे मेघ जल की वर्षा करते हुए वहाँ बैठते है। वह दृश्य ऐसा मालूम होता है मानो सुन्दरियों के काले काले केशो मे श्वेत मोती लगे हुए हो। ऐसी सुन्दर नगरी को तुम अवश्य पहचान लोगे। वही तुम्हारा गन्तव्य स्थान है:—

तस्योत्संगे प्रणयिन इव स्रस्तगङ्गादुकूलां
न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन् ।

या वः काले वहति सलिलोद्‌गारमुच्चैर्विमाना
मुक्ता जालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम् ॥६६॥

अर्थः—हे इच्छा के अनुसार विचरने वाले मेघ ! प्रेमी की गोद मे वर्तमान, गिरे हुए गंगा रूपी रेशमी वस्त्र वाली अलका नगरी को देखकर तुम अवश्य ही पहचान जाओगे । ऊँचे-ऊँचे महलो वाली जो नगरी वर्षा ऋतु मे मोतियो के गुच्छो से गूँथे हुए केशो को स्त्री के समान जल बरसाने वाले बादलो के समूह को धारण करती है ।

उत्तर मेघ

उत्तर मेघ मे महाकवि कालिदास ने यक्ष और उसकी प्रियतमा की दारुण विरह व्यथा का वर्णन कर उनकी अन्त प्रकृति का मर्मस्पर्शी चित्र उपस्थित किया है। वास्तव मे मेघ दूत एक वियोग व्यथित एव उत्कठिण्त हृदय की मर्मभरी कहानी है। प्रत्येक पद्य मे उसकी विकलता, विह्वलता, कातरता, आतुरता, उसके स्पन्दन, उसके करुण क्रन्दन की भावपूर्ण तान झकृत होरही है। सबसे पहले कवि उत्तर मेघ मे अलका-पुरी के गगन चुम्बी प्रासादो का हृदयहारी वर्णन करता है। उत्तर मेघ के प्रथम श्लोक मे मेघ और अलका के प्रासादो की पारस्परिक तुलना मे कवि ने एक, अद्भुत,उदात्त और भावपूर्ण समास शैली का परिचय दिया है। यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! अलका-पुरी के वे गगन चुम्बी प्रासाद सभी तरह से तुम्हारी तुलना मे समर्थ है यदि तुम्हारे साथ बिजली है तो उन सुन्दर भवनो मे विद्युत् के समान गौरवर्ण सुन्दरियाँ है। यदि तुम इन्द्र धनुष से शोभित हो तो वे प्रासाद भी रग-बिरगे चित्रो से सज्जित है। यदि तुम मृदु गम्भीर गर्जन करना जानते हो तो वे अलकापुरी के भव्य भवन भी मृदग की मधुर तान से गु जित हैं। यदि तुम्हारे अन्दर सुन्दर स्वच्छ स्फटिकोपम पानी भरा हुआ है तो उन भवनो के फर्शों पर भी उज्ज्वल मणियाँ जड़ी हुई है। यदि तुमको अपनी उत्तुँगता पर गर्व है तो वहाँ भी सुन्दर अट्टालिकाये आकाश से बाते करती है:—

> **विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः**
> **संगीताय प्रहृत मुरजाः स्निग्ध गम्भीर घोषम् ।**
> **अन्तस्तोयं मणिमय भुवस्तुगंमभ्रंलिहाग्राः**
> **प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ॥१॥**

अर्थ—हे मेघ ! अलकापुरी के ऊँचे-ऊँचे भवन सब प्रकार से तुम्हारी तुलना मे समर्थ है। यदि तुम्हारे साथ बिजली है वे भव्य भवन चटक मटक वाली सुन्दरी स्त्रियो से जगमगाते हैं। यदि तुम्हारे पास इन्द्र धनुष है तो उन प्रासादो मे भी अनेक प्रकार के रग बिरगे चकित करने वाले चित्र लटके है यदि तुममे मृदुल घन गर्जन है तो उन भवनो मे भी सगीत के लिए तबले की मधुर तान गूँजती है। यदि तुम्हारे अन्दर नील सलिल है तो उन महलो के फर्श भी नीलम से जड़े हुए है। यदि तुम ऊँचे हो तो उन भवनो की अट्टालिकाये भी आकाश को चूमती है।

अब दूसरे श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! वह परम रमणीय

अलकापुरी इस भूमण्डल पर एक अनोखी नगरी है जहाँ समय समय पर छः ऋतुये अपनी निराली छटा दिखाती है और विविध विकसित कुसुमो से वहाँ की सुन्दरियाँ शृगार करती है:—

हस्ते लीला कमलमलके बालकुन्दानुबिद्धं
नीता लोध्रप्रसव रजसा पाण्डुता माननेश्रीः ।
चूडा पाशे नव कुरबक चारु कर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं बधूनाम् ॥ २ ॥

अर्थ—हे मेघ ! जिस अलकापुरी मे स्त्रियो के हाथ मे लीला कमल है और बालो में ताजे खिले हुए कुन्द पुष्प गुँथे हुए है मुख की कान्ति लोध्र पुष्पों की पराग से पीली हो गई है, केशपाश मे नया खिला हुआ कुरबक पुष्प है, कान मे सुन्दर शिरीष पुष्प है, और माँगो मे वर्षा मे उत्पन्न हुआ कदम्ब का फूल है अर्थात् अलकापुरी मे बारी बारी से छ ऋतुएँ अनेक प्रकार के सुन्दर सुमन विकसित कर वहाँ की रमणियो की रमणीयता मे चार चाँद लगाती है ।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! तुम उस अलकापुरी मे जाओगे जहाँ वृक्षो पर सदा पुष्प खिले रहते है और उन पर भौंरे उन्मत होकर गूँजते मैं जहाँ कमल सदा खिले रहते है और मोर आनन्द मग्न हो ऊँची गर्दन कर मधुर शब्द करते है और जहाँ सायङ्काल बहुत ही रमणीय होते है—

यत्रोन्मत्त भ्रमरमुखराः पादपा नित्य पुष्पा
हंस श्रेणी रचित रशना नित्य पद्मा नलिन्यः ।
केकोत्कण्ठा भवन शिखिनो नित्य भास्वत्कलापा
नित्य ज्योत्स्नाः प्रतिहततमोवृत्ति रम्याः प्रदोषाः ॥ ३ ॥

अर्थ—हे मेघ ! जिस अलकापुरी मे सदा पुष्प धारण करने वाले वृक्ष उन्मत्त भ्रमरों के शब्द से गूँजते है, जहाँ पद्मिनी सदा विकसित रहती है और हस उन्हें सदा घेरे रहते है, जहाँ पालतू मोर अपने सदा चमकते हुए कलापो के साथ गर्दन ऊँची उठाकर मधुर शब्द करते है और जहाँ अन्धकार नष्ट होने के कारण रम्य प्रतीत होने वाले सायङ्काल स्थायी चाँदनी से प्रकाशित रहते हैं ।

अब अगले श्लोक मे अलका के अपार वैभव और शान्तिमय वातावरण का विशद वर्णन करते हुए यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! वह परम रमणीय अलका इतनी बिचित्र नगरी है जहाँ यक्ष सदा प्रेम के ही आँसू बहाते है, जहाँ कामदेव के अतिरिक्त उन्हे अन्य कोई सन्तोष नही, जहाँ प्रेम कलह के अतिरिक्त अन्य कोई झगडा नही, जहाँ सदा यौवन अपनी शोभा दिखाता है अर्थात् वहाँ कोई बूढा ही नही होता—

आनन्दोत्थं नयनसलिलं यत्र नान्यैं निमित्तै—
र्नान्यस्तापः कुसुम शरजादिष्ट संयोग साध्यात् ।
नाप्यन्यस्मात्प्रणयकलहाद्विप्रयोगो पपत्ति—
वित्तेशानां न च खलुवयो यौवना दन्य दस्ति ॥४॥

अर्थ— हे मेघ ! जिस अलकापुरी मे धन के स्वामी यक्षो की आखो मे प्रेम के कारण ही आँसू छलकते है अन्य शोकादि कारणो से नही, जहा इष्ट सयोग से उत्पन्न होने वाले काम देव से ही ताप होता है और दूसरा दुःख कोई नही होता, जहाँ प्रणय कलह के अतिरिक्त विरह का कोई प्रस ग ही नही आता

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! तुम उस अनोखी अलकापुरी मे जाओगे जहाँ धनपति यक्ष अपने अपार ऐश्वर्य और विपुल भोग-विलास मे मस्त होकर अपनी स्त्रियो के साथ रत्नजड़ित मदिरालयो मे सुन्दर शीतल मधुपान करते है अर्थात् जहाँ प्रति क्षण आनन्दोल्लास का ही साम्राज्य रहता है—

यस्यां यक्षाः सितमणिमयान्येत्य हर्म्यस्थलानि
ज्योतिश्छाया कुसुम रचितान्युत्तमस्त्री सहायाः ।
आसेवन्ते मधु रतिफलं कल्पवृक्ष प्रसूतं
त्वद् गम्भीर ध्वनिषु शनकैः पुष्करेस्वाहतेषु ॥५॥

अर्थ—हे मेघ ! अतुल ऐश्वर्य वाली जिस अलकापुरी मे यक्ष अपनी उत्तम स्त्रियो के साथ चन्द्रकान्त मणियों से जटित तारो प्रतिबिम्बरूपी कुसुमो से सुशोभित मदिरालयो मे पहुँचकर तुम्हारी गर्जन के समान गूँजते हुए और धीरे-धीरे बजाये जाते हुए वाद्यो के साथ कल्पवृक्ष से उत्पन्न हुए रति फल नाम वाले स्वादु शीतल का पान करते है।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! तुम उस दिव्य अलकापुरी मे जाओगे जहाँ देवताओं के प्रार्थना करने पर यक्ष कन्याये भगवती भागीरथी के जल कणों से शीतल हुए समीरो का सेवन करती हुई और शीतल सुखद छाया वाले मन्दार वृक्षो के नीचे बैठी हुई मणियों के साथ खेलती है—

मंन्दाकिन्याः सलिल शिशिरैः सेव्यमाना मरुद्भि—
र्मन्दाराणा मनुतटरुहां छायया वारितोष्णा ।
अन्वेष्टव्यैः कनकसिकता मुष्टि निक्षेप गूढ़ै
संक्रीडन्ते मणिभि रमर प्रार्थिता यत्र कन्याः ॥६॥

अर्थ—हे मेघ ! जिस अलकापुरी मे देवताओ से प्रार्थित अर्थात् वे इतनी सुन्दर हैं कि देवता भी उनसे विवाह के लिए इच्छुक है। यक्ष कन्यायें गंगा के शीतल जल कणो से युक्त वायु का सेवन करती हुईं, किनारे पर उगे हुए मन्दार वृक्षों की छाया से शांत हुई गर्मी वाली, सुनहरी सिकताओं मे मुट्ठियों मे भर-भर के फैंकने के कारण छिपी हुई फिर ढूंढी जाने वाली मणियो से क्रीडा करती है।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! तुम उस अलकापुरी मे जाओगे जहाँ सुन्दरियाँ अपने प्रियो के साथ अनेक प्रकार क्रीडा करती हुई अपने भोलेपन को प्रकट करती है अर्थात् मुग्धाये मुट्ठी मे कुंकुम का चूर्ण लेकर रत्न दीपो को अज्ञानवश बुझाना चाहती है किन्तु रत्नो के दीपक बुझे कैसे—

नीवी बन्धोच्छ्वसित शिथिल यत्र बिम्बाधराणां
क्षौमं रागादनिभृत करेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु ।
अर्चिस्तुंगानभि मुखमपि प्राप्य रत्न प्रदीपा—
न्ह्री मूढानां भवति विफल प्रेरणा चूर्णमुष्टिः ॥७॥

अर्थ—हे मेघ ! जिस अलकापुरी मे चचल हाथ वाले प्रिय अत्यन्त प्रेम के कारण अथवा कामुकतावश नाले के टूटने से शिथिल हुए रेशमी वस्त्र को खीच लेते है और लाल होठो वाली वे मुग्धाये लज्जा के कारण किरणो से ऊँचे उठे हुए रत्न-दीपो को सामने पहुँचकर भी कुंकुम आदि के चूर्ण से बुझाने का विफल प्रयास करती है ।

अब अगले श्लोक मे अनेक मनोरम क्रीडा करते हुए मेघो का हृदयहारी दृश्य उपस्थित करता हुआ यक्ष मेघ को कहता है—

नेत्रा नीताः सततगतिना यद्विमानाग्रभूमी—
रालेख्यानां सलिल कणिका दोषमुत्पाद्य सद्यः ।
शंका स्पृष्टा इव जलमुचस्त्वादृशा जालमार्गै—
धूंमोद्‌गारानुकृति निपुणा जर्जरा निष्पतन्ति ॥८॥

अर्थ—हे मेघ ! तुम्हारे सदृश बहुत से बादल वायु के झोको से प्रासादो के ऊपरी भागों में प्रविष्ट होकर अन्दर लटके हुए चित्रो को अपने जल कणो से भिगो-कर बिगाड देते हैं और शकित हुए धुएँ का रूप बदलने मे चतुर बादल शीघ्रता से झरोखो से छिन्न-भिन्न होकर भाग निकलते है ।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! तुम उस सुन्दर अलकापुरी को जाओगे जहाँ रात को चन्द्रकात मणियाँ प्रियतमो के साथ रति-क्रीडा करने के कारण थकी हुई सुन्दरियो की थकावट को दूर करती हैं—

यत्र स्त्रीणां प्रियतमभुजोच्छ्वासितालिंगिताना—
मंगग्लानिं सुरतजनितां तन्तु जालावलम्बाः ।
त्वत्सरोधा पगम विशदैश्चन्द्रपादैर्निशीथे
व्यालुम्पन्ति स्फुट जलल वस्यन्दिनश्चन्द्रकांताः ॥९॥

अर्थ—जिस अलकापुरी मे आधी रात को जल की बडी-बडी बूँदो को टपकाने वाली, तन्तु समूह से गुँफित चन्द्रकांत मणियाँ मेघ के आवरण के हट जाने के कारण निर्मल चन्द्र किरणो से प्रेमियो की भुजाओ के गाढालिंगन से छुटकारा पाई हुई स्त्रियो

की रतिक्रीडा से उत्पन्न हुई थकावट को दूर करती हैं।

अब अगले श्लोक मे अप्सरारूपी वारागनाओ के साथ कामी पुरुषो के हास-विलास का मनोरम चित्रण करता हुआ यक्ष मेघ को कहता है—

अक्षय्यान्तर्भवननिधयः प्रत्यहं रक्त कण्ठै—
रुद्गायद्भिर्धनपतियशः किंनरैर्यत्र सार्धम्।
वैभ्राजाख्यं विबुध वनिता वारमुख्या सहाया
बद्धालापा बहिरुपवनं कामिनो निर्विशन्ति ॥१०॥

अर्थ—जिस अलकापुरी मे भवनो के अन्दर अक्षय निधि वाले, अप्सरारूपी वारागनाओ के साथ कामी पुरुष मधुर कण्ठ वाले, यक्षेश्वर के यश को गाने वाले किंनरो के साथ बात करते हुए प्रतिदिन वैभ्राज नाम वाले बाहर के उद्यान मे प्रवेश करते है।

अब अगले श्लोक मे प्रेमी के घर छुपकर रात को रमण करने वाली अभि-सारिकाओ के रात के रास्ते का सरस सुमधुर एव भावपूर्ण भाषा मे वर्णन करता हुआ यक्ष मेघ को कहता है—

गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दार पुष्पैः—
पत्रच्छेदैः कनककमलैः कर्णविभ्रंशिभिश्च।
मुक्ताजालैः स्तन परिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारै—
र्नैशोमार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम् ॥११॥

अर्थ—जिस अलकापुरी मे अभिसारिकाओ का रात का मार्ग सूर्य उदय होने पर चलने के समय कांपने के कारण केशो से गिरे हुए मन्दार पुष्पो से, मार्ग मे गिरे हुए पत्तो के टुकडो से, कानों से गिरे हुए सुनहरी कमलो से, मोतियों की मालाओ से और स्तनो को ढकने वाले टूटे हुए धागों वाले हारो से स्पष्ट दिखाई देता है अर्थात् जब रात को छुपकर जब अभिसारिकाएँ अपने प्रेमियों के पास रमण के लिए जाती है तब मार्ग मे उनकी गति मे कम्प होता है और उनके सिर के, कानो के फूल मार्ग मे गिर पडते हैं।

अब अगले श्लोक मे अलकापुरी के कल्प वृक्ष की महिमा का वर्णन करते हुए यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ! तुम उस परम वैभवशालिनी नगरी मे जा रहे हो जहाँ अकेला एक कल्प वृक्ष ही सुन्दरियो की साज-सज्जा का सब सामान उत्पन्न करता है—

वासश्चित्रं मधुनयनयोर्विभ्रमादेशदक्षं
पुष्पोद्भेदं सह किसलयै र्भूषणानां विकल्पम्।
लाक्षारागं चरणकमलन्यास योग्यं च यस्या
मेकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः ॥१२॥

अर्थ—हे मेघ! जिस अलकापुरी मे अकेला कल्प वृक्ष ही सुन्दरियो की साज-

सज्जा का सब सामान उत्पन्न करता है जैसे रंग-बिरंगे पहनने के वस्त्र, नेत्रों को हाव-भाव सिखाने मे चतुर मद्य, पत्तो के साथ अधखिले फूल, नाना प्रकार के आभूषण, कोमल चरणो मे लगाए जाने वाला लाक्षा रग । रसाकर मे लिखा है—

कचधार्यं, देहधार्यं परिधेयं विलेयनम् ।
चतुर्धाभूषण प्राहु स्त्रीणामन्यच्चदैशिकम् ।।

अर्थात् केशो मे धारण करने वाला, शरीर पर धारण करने वाला, पहनने वाला और लेप—ये चार प्रकार के स्त्रियो के भूषण होते है । इसके अनुसार कल्प वृक्ष ने विधिपूर्वक चारो भूषण कामिनियो की शोभा बढाने के लिए पैदा कर दिए । उस अलकापुरी के विशाल वैभव का कैसा हृदयहारी चित्रण है ।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! तुम उस दिव्य नगरी अलकापुरी जाओगे जहाँ शक्तिशाली, तीव्र गति से दौडने वाले हरे-हरे घोडे पाए जाते हैं । जहाँ बडे ऊँचे मस्त हाथी है । जहाँ के योद्धा युद्धो मे सदैव विजयी रहे है और उनके शरीर पर तलवारो के चिह्नो ने शोभा बढाई है—

पत्रश्यामा दिनकरहयस्पर्धिनो यत्र वाहा.
शैलोदग्रास्त्वमिव करिणो वृष्टिमन्तः प्रभेदात् ।
योधाग्रण्यः प्रतिदशमुखं संयुगे तस्थिवांस·
प्रत्यादिष्टाभरणरुचयश्चन्द्र हासव्रणांकै· ।।१३।।

अर्थ—जिस अलकापुरी मे घोडे पत्रो के समान हरे और सूर्य के घोडो से स्पर्धा करने वाले हैं । पर्वतो के समान विशाल हाथी मद के फूटने के कारण तुम्हारे समान ही वृष्टि करने वाले है । युद्ध मे रावण के विरुद्ध खडे हुए श्रेष्ठ योद्धा तलवार के घावो से चिह्नित आभूषणो के धारण करने मे अरुचि दिखाते है अर्थात् वे उन तलवार के चिह्नो को ही अपने शरीर का सुन्दर आभूषण मानते है ।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! तुम उस अलकापुरी मे जाओगे जहाँ कामदेव यक्षेश्वर के मित्र शिव जी के रहने के कारण भ्रमररूपी प्रत्यञ्चा वाले अपने बाण का प्रयोग नही करता क्योकि शिवजी ने एक बार काम को अपने तीसरे नेत्र की अग्नि से भस्म कर दिया था । जहाँ कामदेव कामीजनो मे भोग-लिप्सा पैदा करने के लिए सुन्दरियों की मटकती हुई तिरछी भौहो से अपना काम सिद्ध कर लेता है अर्थात् वह पुरी सुन्दरियो से परिपूर्ण है—

मत्वा देवं धनपति सखं यत्रसाक्षाद्वसन्तं
प्रायश्चापं न वहति भयान्मन्मथः षट्पदज्यम् ।
सभ्रूभंग प्रहित नयनैः कामिलक्ष्येष्वमोघै
स्तस्यारम्भश्चतुरवनिता विभ्रमैरेव सिद्धः ।।१४।।

अर्थ—जिस अलकापुरी मे कामदेव कुबेर के मित्र शिवजी को निजी रूप से रहते हुए देखकर भय से भ्रमर रूपी प्रत्यचा वाले अपने धनुष का प्रयोग नही करता । उसका कार्य तो कामी पुरुषों को लक्ष्य बनाने मे तिरछी भौंहो वाले नेत्रो के सहित,

सदा सफल चतुर स्त्रियों के भावपूर्ण विलासो ही हो जाता है ।

इस प्रकार अलकापुरी का वर्णन करके अब यक्ष वहाँ अपने घर का परिचय देते हुए मेघ को कहता है —

तत्रागारं धनपति गृहानुत्तरेणास्मदीयं
दूराल्लक्ष्यं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन ।
यस्योपान्ते कृतकतनयः कान्तयावर्धितोमे
हस्त प्राप्यस्तबकनमितो बालमन्दारवृक्षः ।। १५।।

अर्थ—हे मेघ ! वही अर्थात् अलकापुरी मे कुबेर के भवनो से उत्तर की ओर मेरा घर है जो इन्द्रधनुष के समान सुन्दर तोरण द्वार के कारण दूर से ही दिखाई देगा अर्थात् तुम्हे मेरे घर को ढूँढने मे कष्ट नही होगा । वही मेरी प्रियतमा द्वारा पुत्र रूप से पाला हुआ एक छोटा सा कल्पवृक्ष है जो फूलो से लदे होने के कारण इतना झुक रहा होगा कि उसके फूलो के गुच्छे खड़े खडे हाथ मे आ जाते है ।

अब आगे यक्ष अपने घर की और अधिक पहचान बताता हुआ मेघ को कहता है ।—

वापीचास्मिन् मरकतशिलाबद्ध सोपानमार्गा
हैमैश्छन्ना विकच कमलैः स्निग्ध वैदूर्यनालैः ।
यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं संनिकृष्टं
नाध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्यहंसाः ।। १६ ।।

अर्थ—इस मेरे घर मे एक बावड़ी है जिसकी सीढियों का मार्ग चन्द्रकाँत मणियो का बना हुआ है और वह सदा स्निग्ध वैदूर्य मणि के समान चमकते हुए नाल वाले सुनहरी विकसित कमलो से आच्छादित है और जिसके जल मे निवास करने वाले हंस तुमको देखकर भी सब दु खो से रहित होकर समीपस्थ मानसरोवर का भी ध्यान नही करेंगे अर्थात् उसे भी भूल जायेगे ।

अब अगले श्लोक मे उसी वापी के किनारे पर बने हुए सुरम्य क्रीडा शैल का सुन्दर वर्णन करता हुआ यक्ष मेघ को कहता है--

तस्यास्तीरे रचित शिखरः पेशलैरिन्द्रनीलैः
क्रीडाशैल कनककन्दलोवेष्ट न प्रेक्षणीयः ।
मद्गेहिन्याः प्रिय इति सखे चेतसाकातरेण
प्रेक्ष्योपान्त स्फुरित तडितं त्वां तमेवस्मरामि ।।१७ ।।

अर्थ—हे सुन्दर मेघ ! वहाँ बावडी के किनारे पर एक पर्वत है जिसका शिखर सुन्दर नील मणियो से बना हुआ है और चारो ओर सुनहरी केलो की बाड से देखने योग्य है । वह मेरी पत्नी को अति प्रिय है । अत प्रान्तभाग मे चमकती हुई बिजली वाले तुमको देखकर कातर हृदय से मै कीडा शैल को ही याद करता हूँ ।

अब अगले श्लोक मे ऊपर कहे गये क्रीडा शैल पर माधवीलता से बने हुए सुन्दर मडप के समीप खड़े हुए लाल अशोक वृक्ष और बकुल वृक्ष का अपनी प्रियतमा के साथ स्नेह का वर्णन करता हुआ यक्ष मेघ को कहता है :—

रक्ताशोकश्चल किसलयः केसरश्चात्रकान्तः
प्रत्यासन्नौ कुरबकवृतेर्माधवीमण्डवस्य ।
एकः सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषि
कांक्षत्यन्यो वदनमदिरां दोहदच्छद्मनाऽस्याः ॥ १८ ॥

अर्थ—हे मेघ ! यहाँ क्रीडा पर्वव पर कुरबक पुष्पो से अच्छादित माधवीलता के बने हुए मण्डप के समीप चञ्चल पत्तो वाला एक रक्त अशोक वृक्ष है । एक सुन्दर बकुल वृक्ष है । उनमे सेएक अर्थात् अशोक वृक्ष तो दोहद के बहाने मेरे साथ तेरी सखी अर्थात् मेरी पत्नी के बाये पैर की ठोकर चाहता है क्योकि सुन्दरियों के चरण लगते ही रक्ताशोक खिल उठता है इसी क्रिया को कवि लोग दोहद कहते है दूसरा बकुल वृक्ष मेरी प्रिया के मुख से निकले हुए मद्य को चाहता है ।

अब अगले श्लोक मे अपनी प्रिया द्वारा नचाये जाने वाले मयूर का सुन्दर वर्णन करता हुआ यक्ष मेघ को कहता है —

तन्मध्ये च स्फटिक फलका काञ्चनी वासयष्टि
मूंलेबध्दा मणिभिरनति प्रौढवंश प्रकाशैः ।
तालैः शिजावलय सुभगै र्नर्तितः कान्तयामे
यामाध्यास्ते दिवसगमये लीलकण्ठः सुहृद्वः॥१६ ॥

अर्थ—हे मेघ ! इन दोनो वृक्षो के बीच मे एक सुनहरी, स्फटिक मणि के बने हुए फट्टे वाला छत्ता है जो तरुण बाँस की सी छवि वाली मणिमय शिलाओं से मूल मे बँधा हुआ है । शब्द करने वाले कङ्कडो के कारण सुन्दर लगने वाली तालियो अथवा करतल ध्वनि से मेरी प्रिया द्वारा नचाया गया तुम्हारा मित्र मोर सायङ्काल को उस छत्ते पर बैठता है ।

अब अगले श्लोक मे अपनी अनुपस्थिति के कारण शोभाहीन अपने भवन की पहचान कराता हुआ यक्ष मेघ को कहता है.—

एभिः साधो हृदय निहितै र्लक्षणै र्लक्षयेथा
द्वारो पान्ते लिखित वपुषौ शंख पद्मौ च दृष्ट्वा ।
क्षामच्छायं भवन मधुना मद्वियोगेन नूनं
सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम् ॥ २० ॥

अर्थ—हे चतुर मेघ ! पूर्वोक्त हृदय मे धारण किये हुए इन लक्ष्णो से मेरे घर को पहचान लेना । उसके द्वार पर लिखी हुई आकृति वाले शख और पद्म—दो विशेष निधियो को देखकर भी तुम मेरे घर को जान लोगे निस्सन्देह मेरे बिना वह घर

शोभाहीन दिखाई देगा जैसे सूर्य अस्त होने पर कमल अपनी शोभा को धारण नही करता अर्थात् स्वामी के बिना घर सूना लगता है और सूर्य के बिना कमल कान्तिहीन प्रतीत होता है।

अब अगले श्लोक मे अपने घर मे प्रवेश करने के ढग को बताता हुआ यक्ष मेघ को कहता है—

गत्वा सद्यः कलभतनुतां शीघ्र संपात हेतोः
क्रीडा शैले प्रथम कथिते रम्यसानौ निषण्णः
अर्हस्यन्तर्भवन पतिता कर्तुमल्पाल्प भासं
खद्योताली विलसित निभा विद्युदुन्मेष दृष्टिम् ॥२१॥

अर्थ—हे मेघ ! यदि तुम मेरे घर मे जल्दी प्रवेश करना चाहो तो शीघ्र ही हाथी के बच्चे के समान लघु रूप धारण करके पहले बताये हुए, सुन्दर शिखर वाले क्रीडा पर्वत पर बैठना और वहाँ जुगुनुओ की पक्ति की चमक के समान थोडी-थोडी बिजली चमकाकर अन्दर झाँकना।

अब अगले श्लोक मे पति की वियोगव्यथा से व्यथित कृशागी, डरी हुई हरिणी के समान चकित दृष्टि से देखने वाली, पतली कमरवाली अपनी प्रिया की पहचान बताता हुआ यक्ष मेघ को कहता है—

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्व बिम्बाधरोष्ठी
मध्ये श्यामा चकित हरिणी प्रेक्षणा निम्ननाभि. ।
श्रोणीभारादलस गमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवति विषये सृष्टि राद्येव धातुः ॥२२॥

अर्थ—हे मेघ ! वहाँ जो कृशकाय अर्थात् दुबली-पतली, श्याम वर्ण की, पतले दाँतो वाली, डरे हुए हरिणो के समान चकित दृष्टि से देखने वाली, नीची नाभि वाली, पतली कमर वाली, स्तनो से थोडी झुकी हुई, नितम्बों के भार से धीरे-धीरे चलने वाली हो उसी को तुम विधाता की प्रथम सृष्टि के समान मेरी प्रिया समझना।

अब अगले श्लोक मे भी यक्ष थोडा बोलने वाली, अत्यन्त उत्कठित और पति वियोग से सूखी हुई अपनी प्रेयसी की पहचान बताता हुआ मेघ को कहता है—

ताजानीथाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीय
दूरी भूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम् ।
गाढोत्कण्ठां गुरुषुदिवसे ष्वेषु गच्छत्सु बालां
जाता मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वाऽन्यरूपाम् ॥२३॥

अर्थ—हे मेघ ! उस मितभाषिणी को मेरा दूसरा प्राण ही समझना। मुझ-साथी के दूर रहने के कारण अकेली चकवी के समान वह छटपटा रही होगी। मुझसे इतने दिनो से वियुक्त होने के कारण वह अत्यन्त उत्कठित होगी और मेरे वियोग में सूखकर काँटा हो गई होगी। जैसे शिशिर ऋतु की ठण्ड से कमलिनी मुर्झा जाती है।

अब अगले श्लोक मे यक्ष विरह विधुरा अपनी पत्नी की दयनीय दशा का वर्णन करता हुआ मेघ को कहता है:—

नूनं तस्याः प्रबल रुदितोच्छून नेत्रं प्रियाया
निःश्वासानाम शिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम् ।
हस्तन्यस्तं मुखसकलव्यक्ति लम्बालकत्वा
दिन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरण क्लिष्टकान्तेर्बिभर्ति ।।२४।।

अर्थ—हे मेघ ! अधिक रोने के कारण निश्चय ही उसकी आँखे सूज गई होगी, गरम-गरम आहे भरने से अथवा गरम साँसो से उसके निचले होठ का रंग भी फीका पड गया होगा, चिन्ता के कारण गालो पर हाथ रखने से और बालो के मुख पर आ जाने से उसका मुख अस्पष्ट और धुंधला दिखाई देगा जैसे मेघो से आच्छादित चन्द्रमा की कान्ति मलिन दिखाई देती है ।

अब अगले श्लोक मे यक्ष विरह-व्याकुल अपनी पत्नी की पिंजड़े मे पडी मधुर भाषिणी मैना के साथ तुलना करता हुआ मेघ को कहता है :—

आलोके ते निपतति पुरा सा बलि व्याकुलावा
मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्य लिखन्ती ।
पृच्छन्ती च मधुरवचनां सारिकां पंजरस्थां
कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हितस्य प्रियेति ।।२५।।

अर्थ—हे मेघ ! जब वह पहले-पहले तुम्हारे सामने आयेगी तुम देखोगे कि वह पति के शीघ्र लौटने की प्रार्थना के कारण देवताओ को बलि देने मे व्यस्त होगी अथवा विरह के कारण मेरे कृश शरीर का अनुमान लगाकर चित्र खीच रही होगी अथवा पिंजरे में पड़ी हुई मैना से मीठे वचनो मे पूछ रही होगी कि हे रसिक मैना ! क्या तुम अपने पति का कभी स्मरण करती हो जिसकी तुम प्रिया हो ?

अब अगले श्लोक मे मलिन वस्त्र पहने हुए, गोद में वीणा लिये, विरह का मर्मभेदी राग अलापती हुई कृशाङ्गी अपनी प्रिया का वर्णन करते हुए यक्ष मेघ को कहता है·—

उत्संगे वा मलिन वसने सौम्य निक्षिप्य वीणां ।
मद्गोत्राकं विरचितपदं गेय मुद्गातुकामा ।
तन्त्री मार्द्रां नयन सलिलैः सारयित्वा कथंचि—
द्भूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती ।।२६।।

अर्थ—हे सुन्दर मेघ ! वह मैलेवस्त्रवाली अपनी गोद में वीणा को रखकर मेरे नाम के गीतों की रचना करके वह उच्चस्वर में गाना चाहेगी और आंसुओ से गीली हुई वीणा को किसी तरह पोछने पर वह स्वरों का उतार चढ़ाव भूल जायेगी चाहे वह रचना उसकी अपनी ही होगी ।

अब अगले श्लोक मे पतियो के वियोग मे विरह व्याकुल स्त्रियाँ अपने दु खी मन को बहलाने के लिए क्या-क्या उपाय करती है—इस बात का वर्णन करता हुआ यक्ष मेघ को कहता हैः—

शेषान्मासान्विरह दिवस स्थापितस्यावधेर्वा
विन्यस्यन्ती भुविगणनया देहलीदत्त पुष्पैः ।
सभोग वा हृदय निहितारम्भमास्वादयन्ती
प्रायेणैते रमण विरहेष्वगनानां विनोदाः ।।२७।।

अर्थ—हे मेघ ! वह विरह की अवधि के शेष महीनो को देहली पर इकट्ठे किए हुए पुष्पो को जमीन पर रखकर गिन रही होगी अथवा हृदय मे सोचे हुए रति सुख का आस्वाद ले रही होगी । पतियो से वियुक्त होने पर स्त्रियो के प्राय इसी प्रकार के विनोद हुआ करते है अर्थात् ऐसे ही उपायो से वे अपने मन को बहलाया करती हैं ।

अब अगले श्लोक मे जमीन पर सोई हुई ओघती हुई अपनी प्रिया को सन्देश देने की प्रार्थना करता हुआ यक्ष मेघ को कहता है —

सव्यापारा महनिन तथा पीडयेद्विप्रयोग
शंके रात्रौ गुरुतरशुचं निर्विनोदां सखी ते ।
मत्सन्देश सुखयितुमल पश्य साध्वी निशीथे
तामुन्निद्रामवनि ,शयनां सौधवातायनस्थः ।।२८।।

अर्थ—हे मेघ ! दिन मे काम मे व्यस्त रहने के कारण वियोग इतना नही सताता किन्तु मुझे डर है कि रात के समय खाली बैठी होने के कारण वह बहुत दुःखी होती होगी । अत. तुम उस पतिव्रता को सुख देने के लिए रात के समय महल के किसी झरोखे मे बैठकर मेरा सन्देश देना वह ओघती हुई जमीन पर लेटी होगी ।

अब अगले श्लोक मे अपनी प्रिया की विपुल मनोव्यथा और कृशता का भावपूर्ण वर्णन करता हुआ यक्ष मेघ को कहता है —

आधिक्षामा विरह शयने सनिषण्णैक पार्श्वां
प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः ।
नीता रात्रि. क्षण इव मया सार्धमिच्छारतैर्या
तामेवोष्णैं विरहमहती मश्रुमिर्यापयन्तीम् ।।२९।।

अर्थ—हे मेघ ! मनोव्यथा से दुर्बल हुई मेरी प्रिया सूने पलँग पर एक करबट लेटी-लेटी ऐसी हो गई होगी जैसे उदयगिरि प्रान्त मे कृष्ण पक्ष की चौदश के चन्द्रमा की कला क्षीण हो जाती है । जो मेरे साथ इच्छानुकूल समागम मे रात को क्षण के समान बिता देती थी, वही अब मेरे बिना रात गरम-गरम आँसू बहाकर व्यतीत करती होगी अर्थात् जुदाई की रात बड़ी लम्बी मालूम होती होगी ।

अब अगले श्लोक मे भी अपनी प्रिया की विरहव्यथा की अतिशयता पर

प्रकाश डालता हुआ यक्ष मेघ को कहता है —

पादानिन्दोरमृत शिशिराञ्जाल मार्ग प्रविष्टा—
न्पूर्वं प्रीत्या गतमभिमुखं संनिवृत्त तथैव ।
चक्षुः खेदात्सलिल गुरुभिः पक्ष्मभिश्छादयन्तीं
साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनी न प्रबुद्धां न सुप्ताम् ॥३०॥

अर्थ—हे मेघ ! जालियो मे छन-छन कर आती हुई चन्द्रमा की किरणो को वह मेरी प्रिया यह समझ कर कि जैसे पहले सयोग के समय वे अमृतमय और ठंडी थी वैसे अब भी शीतलता प्रदान करेगी, वह अपना मुँह इधर जैसे ही घुमाती होगी वैसे ही झट पट उसे हटाभी लेती होगी दु ख के कारण निकलते हुये आँसुओ की धाराओ से भरी हुई पलको से जब उसके नेत्र मुद जाते होगे तब उसकी दशा ऐसी होती होगी जसे बादल के दिन अर्धविकसित स्थल-कमलिनी होती है ।

अब अगले श्लोक मे भी बिना तेल के सादे जल से स्नान करने वाली वियोग-व्यथा से व्यथित अपनी प्रियतमा का मर्मस्पर्शी वर्णन करता हुआ यक्ष मेघ को कहता है—

निःश्वासेनाधर किसलय क्लेशिना विक्षिपन्तीं
शुद्धस्नानात्परुषमलकं नून माागण्डलम्बम् ।
मत्सम्भोगः कथमुपनमेत्स्वप्नजोऽपीतिनिद्रा—
माकांक्षन्ती नयन सलिलोत्पीड रुद्धावकाशाम् ॥३१॥

अर्थ—हे मेघ ! वह मेरी प्रियतमा मेरे विरह मे तेल आदि के बिना सादे पानी से स्नान करती होगी, इसलिए उसके रूखे-सूखे बालो की लटाये उसके गालो पर लटक रही होगी और कोमल पतले होठो को कष्ट देने वाले गरम-गरम श्वासवायु से उन्हे वह हिलाती होगी । मेरे साथ स्वप्न मे ही सभोग प्राप्त हो इस विचार से वह नीद भी चाहती होगी किन्तु आँसुओ की धारा से रुके हुए नेत्रो मे भला नीद कहाँ ? अर्थात् वह इतनी व्याकुल होगी कि स्वप्न मे समागम की इच्छा से नीद की इच्छा करते हुए भी सो नही सकती होगी ।

अब अगले श्लोक मे विरह से व्याकुल, बालो को फैलाकर बैठी हुई अपनी प्रियतमा की करुण दशा का हृदयहारी वर्णन करता हुआ यक्ष मेघ को कहता है —

आद्ये बद्धा विरह दिवसे या शिखादाम हित्वा
शापस्यान्ते विगलित शुचा तां मयोद्वेष्टनीयाम् ।
स्पर्शक्लिष्टामयमित नखेनासकृत्प्रसारयन्तीं
गण्डाभोगात्कठिन विषमामेकवेणीं करेण ॥३२॥

अर्थ—हे मेघ ! वह मेरी प्रिया विरह के पहले दिन बाँधी हुई और शाप की समाप्ति पर मेरे द्वारा पुन. खोली, जाने वाली छूने मात्र से कष्ट देने वाली, गालो के

सूज जाने के कारण कठिन और अनियमित एक गुत वाली शिखा को न काटे हुए नाखूनो वाले हाथ से इधर-उधर हटा रही होगी ।

अब अगले श्लोक मे आभूषण छोड देने वाली और विरह के असह्य सन्ताप से मूर्च्छित अवस्था मे पडी हुई अपनी प्रिया की दारुण दशा का मर्मभेदी वर्णन करता हुआ यक्ष मेघ को कहता है —

सा संन्यस्ता भरण मबला पेशल धारयन्ती
शय्योत्संगे निहित मसकृद्दु:ख दु खेन गात्रम् ।
त्वामप्यस्रं नवजलमयं मोचयिष्यत्यवश्यं
प्राय सर्वोभवति करुणा वृत्तिरार्द्रान्तिरात्मा ।।३३ ।।

अर्थ–हे मेघ ! उस मेरी प्रिया ने कमजोर होने के कारण आभूषण छोड दिये होगे और किसी न किसी प्रकार अनेक दु खो के साथ चारपाई पर अपने कोमल शरीर को धारण कर रही होगी । उसकी ऐसी दमनीय दशा देखकर तुम भी नये पानी के रूप मे आँसू बहाने लगोगे । सच है सभी दयालु हृदय वाले सहृदयो का हृदय दूसरो के दु ख से पिघल जाता है । विरहानल से सन्तप्त मेरी प्रिया के प्राण भी अब सकट मे हैं ।

अब अगले श्लोक मे भी यक्ष अपनी प्रियतमा के सच्चे स्नेह का सुन्दर वर्णन करता हुआ मेघ को कहता है ।

जाने सख्यास्तव मयि मनः सम्भृतस्नेहमस्मा—
दित्थंभूतां प्रथम विरहे तामहं तर्कयामि ।
बाचालं मां न खलु सुभगं मन्यभाव करोति
प्रत्यक्षं ते निखिलमचिराद्भ्रातरुक्तं मया यत् ।।३४।।

अर्थ—हे भाई मेघ ! मेरी स्नेहमयी प्रिया मुझ मे पूर्णरूप से अनुरक्त है और मैं सोचता हूँ कि वह प्रथम वियोग मे ही ऐसी दशा को प्राप्त हो गई होगी। हे मित्र ! तुम यह न समझना कि इस प्रकार की पतिव्रता स्त्री के पति होने के नाते मैं बार बार इस प्रकार वाचालता दिखा रहा हूँ । जो कुछ मैंने तुम्हे उसके विषय मे बताया है अर्थात् उसकी दयनीय दशा का दारुण चित्र तुम्हारे सामने रखा है तुम उसे प्रत्यक्ष अपनी आँखो से देख लोगे ।

अब अगले श्लोक मे भी विरह विधुरा, सुरमे आदि के न लगाने से फीकी आँखो वाली, मद्य छोड़ देने के कारण भौहो के मटकाने को त्याग देने वाली अपनी प्रिया का करुण चित्र उपस्थित करता हुआ यक्ष मेघ को कहता है—

रुद्धापांग प्रसर मलकै रञ्जन स्नेह शून्यं
प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रूविलासम् ।

त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शंके मृगाक्ष्या
मीन क्षोभाच्चल कुवलय श्री तुलामेष्यतीति ।।३५।।

अर्थ—हे मेघ ! मैं समझता हूँ कि मृग के समान चचल और सुन्दर नेत्रो वाली मेरी प्रिया के केशो के फैलने के कारण रुकी हुई हलचल वाले, सुरमा की शोभा से शून्य, मद्यपान छोडने के कारण भौंहो के मटकाने आदि से रहित, वाम नेत्र की दशा तुम्हारे समीप पहुँचने ऊपर को फडकने के कारण ऐसी होगी जैसे मछलियो की हल-चल से चलायमान कमल के पत्ते की होती है अर्थात् तुम्हारे जैसे हितैषी को देखकर वह अपने बाँये नेत्र को खोलकर तुम्हे देखने की चेष्टा करेगी, स्त्रियो के बाँये नेत्र का फडकना शुभ माना जाता है।

अब अगले श्लोक मे अपनी प्रियतमा के बाँये उरू स्थल के सुखद स्पन्दन का सुन्दर वर्णन करता हुआ यक्ष मेघ को भाव भरे शब्दो मे अपने हृदय के उद्गार प्रकट करते हुए कहता है—

वामश्चास्याः कररुह पदैर्मुच्यमानो मदीयै—
र्मुक्ताजालं चिरपरिचितं त्याजितो दैवगत्या।
संभोगान्ते मम समुचितो हस्त संवाहनानां
यास्यत्यूरुः सरस कदली स्तम्भ गौरश्चलत्वम् ।।३६।।

अर्थ—हे मेघ ! इस मेरी प्रिया का बाँया उरु स्थल मेरे नाखूनो के चिन्ह से रहित, दैववश चिरअभ्यस्त मोतियो के बने हुए कटि भूषण से शून्य, सभोग के पश्चात् मेरे हाथो से दबाने योग्य हरे हरे केलो के खम्भे के समान स्पन्दन शील हो जायेगा अर्थात् तुम्हारे समीप पहुँचने पर पहले उसका बाँया नेत्र फड़केगा और बाँया जघन। यह भी शुभ लक्षण माना जाता है।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! तुम्हारे पहुँचने पर यदि मेरी प्राण प्रिया सोई हुई हो तो स्वप्न मे मेरे साथ गाढालिङ्गन का सुख भोगने वाली की निद्रा को अपनी गर्जन से भङ्गन करना, थोड़ी देर इन्तजार करना—

तस्मिन्काले जलद यदि सा लब्धनिद्रासुखास्या—
दन्वास्यैनां स्तनित विमुखो याममात्रं सहस्व।
मा भूदस्याः प्रणयिनि मयि स्वप्नलब्धे कथंचि—
त्सद्यः कण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि गाढोपगाढम् ।।३७।

अर्थ—हे मेघ ! तुम्हारे वहाँ पहुँचने के समय यदि मेरी प्रिया सो रही हो तो उसके पीछे बैठकर अपनी गर्जन मत करना और क्षण भर के लिए प्रतीक्षा करना। तुम्हारे गरजने से कही ऐसा न हो कि स्वप्न मे प्राप्त हुए मुझ प्रेमी के साथ अपनी कोमल भुजाओ से गाढालिङ्गन करती हुई की नीद उचट जाये और उसके स्वप्न

प्राप्त सयोग मे बाधा न पडे ।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! तुम अपने शीतल जल कणो से ठडे हुए पवन से उसे उठाकर स्वस्थ करना और अपने धीरे धीरे गर्जन रूपी वचनो से उसे मेरा सन्देश सुनाना आरम्भ करना ।

तामुत्थाप्य स्वजलकणिका शीतलेनानिलेन
प्रत्याश्वस्तां सममभिनवै र्जालिकै र्मालतीनाम् ।
विद्युद्गर्भः स्मितनयनां त्वत्सनाथे गवाक्षे
वक्तुं धीरः स्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथा ॥३८॥

अर्थ—हे मेघ ! मेरी उस प्रिया को अपने शीतल जल कणो से ठडे हुए पवन से उठाकर मालती के नव विकसित पुष्पो के साथ होश मे आई हुई, मुस्कराती हुई आँखो वाली मानवाली को अन्दर बिजली धारण करने वाले धैर्यशाली तुम अपने गम्भीर मृदु गर्जन रूपी वचनो से मेरा सन्देश सुनाना आरम्भ करना ।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को दूत की चातुरी का ज्ञान कराता हुआ कहता है :—

भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धि मामम्बुवाहं
तत्सन्देशैर्हृदय निहितैरागतं त्वत्समीपम् ।
यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां
मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबला वेणि मोक्षोत्सुकानि ॥३९॥

अर्थ—हे मेघ ! मेरी प्रिया को अपना परिचय देते हुए इस प्रकार कहना आरम्भ करना, "हे सुहागिन ! मुझे तुम अपने पति यक्ष का हृदय मे धारण किए हुए उसके सन्देश को लाने वाले, तुम्हारे समीप आए हुए मेघ को मित्र के रूप मे जानो अर्थात् मैं केवल बात करने ही नही आया अपितु तुम्हारे हित की इच्छा से तुम्हारे पति का मित्र बनकर तुम्हारे पास आया हूँ । मैं वह मेघ हूँ जो अपने स्निग्ध गम्भीर गर्जनो से अपनी प्रियाओ के बँधे हुए बालो को खोलने के लिए उत्सुक थके हुए प्रवासी पथिको के समूह को अपनी अपनी प्रियाओ के पास पहुँचाने मे शीघ्रता प्रदान करता है ।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! जब मेरी प्रियतमा को अपना परिचय दोगे और कहोगे कि मैं अपने मित्र यक्ष का प्रणय सन्देश तुम्हारे लिए लाया हूँ तो वह हनुमान् जी के लका जाने पर सीता जी के समान बड़ी उत्सुकता से तुम्हारी बात सुनेगी और तुम्हारा आदर भी करेगी ।

इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा
त्वामुत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया वीक्ष्य सभाव्य चैव ।

श्रोष्यत्यस्मात्परमवहिता सौम्य सीमन्तिनीनां
कान्तो दन्त सुहृदुपनतः सगमात्किंचिदून ॥४०॥

अर्थ—हे सौम्य मेघ ! जब तुम ऐसा कहोगे तब वह मेरी प्रियतमा हनुमान जी को देखकर सीता जी के समान उत्कण्ठित हृदय से तुम्हे देखकर और आदर करके ध्यान देकर आगे की सब बाते सुनेगी क्योकि स्त्रियो के लिए मित्र द्वारा लाया गया पति का कुशल समाचार सगम से थोडा ही कम होता है अर्थात् जैसे कान्त के साथ सम्पर्क होने से जितना आनन्द स्त्रियाँ अनुभव करती है उतना ही आनन्द उन्हे मित्र द्वारा लाये गये पति की कुशल क्षेम सुनकर होता है ।

अब अगले श्लोक मे अपना सन्देश देता हुआ यक्ष मेघ को कहता है—

तामायुष्मन्मम च वचना दात्मनश्चोपकर्तुं
ब्रूया एव तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थः ।
अव्यापन्नः कुशलमबले पृच्छति त्वां वियुक्तः
पूर्वाभाष्यं सुलभ विपदां प्राणिना मेतदेव ॥४१॥

अर्थ—हे दीर्घ आयु वाले मेघ ! तुम मेरे कहने से और अपना पुण्य कमाने के विचार से उस मेरी प्रिया को कहना कि तुम्हारा पति तुमसे वियुक्त होकर रामगिरि आश्रम मे सकुशल रह रहा है। तुम्हारे पुनर्मिलन की आशा मे वह अभी जीवित है । वह तुम्हारा कुशल समाचार पूछ रहा है और तुमसे जुदा होकर भी तुम्हारी कुशल क्षेम जानने के लिए आतुर है । अनायास आपत्तियो के शिकार बने हुए प्राणियों के लिए सबसे पहली बात कुशल मगल पूछना ही उचित होता है ।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! मेरी प्रिया को यह भी बताना कि जैसे तुम्हारा शरीर विहर-व्यथा से सन्तप्त होकर कृश हो गया है वैसे ही तुम्हारे पति अर्थात् यक्ष का भी शरीर अति दुर्बल हो गया है। वह सब तरह से तुम्हारी बराबरी कर रहा है—

अंगेनाङ्गं प्रतनु तनुना गाढ़तप्तेन तप्तं
सास्रेणा श्रुद्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्कण्ठितेव ।
उष्णोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्ती
संकल्पैस्तै विशति विधिना वैरिणा रुद्धमार्गः ॥४२॥

अर्थ—हे मेघ ! तुम मेरी प्रिया को बताना कि दूर बैठा हुआ वह तुम्हारा पति (यक्ष) तुम्हारे पास आने मे असमर्थ है क्योकि वाम विधाता ने उसका मार्ग रोक रखा है । किन्तु वह कृश, अत्यन्त सन्तप्त, अश्रुसहित उत्कण्ठित और लम्बी-लम्बी साँसें लेते हुए अपने कृश शरीर से तुम्हारे कृश, तप्त, अश्रुपूर्ण, निरन्तर उत्कण्ठित शरीर के साथ अपने अनुभवगम्य सकल्पो से एकाकार हो रहा है अर्थात् उसका शरीर

तुम्हारे शरीर के समान ही क्लेशमय है । जितनी तुम चिन्तित हो उतना ही वह चिंता चिता मे झुलस रहा है ।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! तुम मेरी प्रिया को कहना कि जो यक्ष सखियो के सामने ही तुम्हारे सुन्दर मुख को छूने के लोभ से तुम्हारे कानो मे हर एक बात कहा करता था आज दूर बैठा हुआ वह विवश होकर मेरे द्वारा यह सन्देश भेजता है—

शब्दाख्येयं यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्ता-
त्कर्णे लोल कथयितुमभूदानन स्पर्श लोभात
सोऽतिक्रान्तः श्रवण विषयं लोचनाभ्यामदृष्ट—
स्त्वामुत्कण्ठा विरचित पदं मन्मुखेनेद माह ॥४३॥

अर्थ—हे मेघ ! मेरी प्रिया को जाकर कहना कि जो तेरा प्रिय पति यक्ष सखियों के सामने ही तुम्हारे सुन्दर मुख के स्पर्श के लोभ से प्रत्येक बात कान मे कहने के लिए आतुर हो उठता था आज वह तुम्हारा पति सुनने मे असमर्थ और अति दूर होने के कारण न देखने योग्य अर्थात् जो न सुना जा सकता है और न देखा जा सकता है, उत्कण्ठा से रचे हुए पद वाले सन्देश को मेरे द्वारा भेज रहा है ।

अब अगले श्लोक मे यक्ष अपनी हृदयेश्वरी के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन सरस, सुमधुर एव भावपूर्ण शब्दो मे करता हुआ मेघद्व ारा कहता है—

श्यामास्वङ्गं चकित हरिणी प्रेक्षणे दृष्टिपातं
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेसु केशान् ।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदी वीचिषु भ्रू विलासा—
न्हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डिसादृश्यमस्ति ॥४४॥

अर्थ—हे कोप वाली प्रिये ! मैं यहाँ एकाकी प्रियङ्गु लताओ मे तुम्हारा शरीर, भयभीत मृगी के नेत्रों मे तुम्हारी चितवन, चन्द्रमा मे तुम्हारा सुन्दर मुख, मोरो के पखो मे तुम्हारे बाल, और नदी की छोटी-छोटी लहरो मे तुम्हारा भ्रू-विलास देखा करता हूँ परन्तु ! मुझे दु ख है कि इनमे से किसी एक वस्तु मे भी तुम्हारी समता नही पाता अर्थात् इनमे से कोई भी तुम्हारे अपूर्व रूप लावण्य की बराबरी नही करता ।

अब यक्ष कहता है कि हे प्रिये ! जब मै तुम्हारी सौम्य मूर्ति का चित्र बना-कर तुम्हारे चरणो मे अपने आपको गिरा हुआ दिखाना चाहता हूँ, मेरी आँखे आँसुओ से अवरुद्ध हो जाती है । ऐसा प्रतीत होता है कि वाम-विधाता इस अवस्था मे भी हमारे सगम को सहन नही कर सकता—

त्वामालिख्य प्रणय कुपितां धातुरागैः शिलाया—
मात्मानं ते चरण पतितं यावदिच्छामि कर्तुम् ।

अस्त्रैं स्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौकृतान्तः ॥४५॥

अर्थ—हे प्रिये ! जब मैं शिला पर गेरू से तुम्हारी प्रणय से कुपित मूर्ति का चित्र बनाकर अपने आपको तुम्हारे चरणो मे गिरा हुआ दिखाना चाहता हूँ तो उसी समय अति वेग से निकलते हुए आँसुओ से मेरी दृष्टि रुक जाती है । निष्ठुर दैव चित्र मे भी हमारे समागम को सहन नही कर सकता । कैसा दुर्भाग्य है ।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ द्वारा अपनी स्वप्नदशा का मर्मस्पर्शी वर्णन करता हुआ कहता है—

मामाकाश प्रणिहितभुजं निर्दया श्लेष हेतो—
र्लब्धायास्ते कथमपि मय स्वप्न संदर्शनेषु ।
पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थल देवतानां
मुक्तास्थूला स्तरु किसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति ॥४६॥

अर्थ—हे प्रिये ! जब कभी मैं स्वप्न दिखाई देने पर बडे प्रयत्न से काबू मे आई तुम्हारे गाढालिङ्गन के लिए आकाश मे हाथ फैलाता हूँ तब ऐसा करते हुए मुझको देखकर वन देवताओ की आँखो मे भी आँसू भर आते है और वे पत्तो के रूपो मे मोती जैसे आँसू कपोलो पर गिराने लगती हैं अर्थात् स्वप्न मे मेरी इस करुण उन्माद की दशा को देखकर वन देवता भी मुझ पर तरस खाते है ।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ द्वारा कहता है कि हे सुशील, सुकुमार प्रिये ! देवदारू वृक्षो की सुगन्ध को धारण करने वाले दक्षिण दिशा से बहने वाले पवनो को इसलिए आलिङ्गन करता हूँ कि शायद इन सुगन्धित पवनो ने तुम्हारे कोमल शरीर को अवश्य छुआ होगा—

भित्वासद्यः किसलयपुटान् देवदारुद्रुमाणां
ये तत्क्षीर स्रुति सुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः ।
आलिङ्ग्यन्ते गुणवति मया ते तुषाराद्रिवाताः
पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदंग मेभिस्तवेति ॥४७॥

अर्थ—हे प्रिये ! देवदारू वृक्षो के पत्तो को खोलकर उनसे बहकर निकलने वाले क्षीर से सुगन्धित दखिण की ओर से बहने वाले हिमालय के शीतल पवनो को इसलिए आलिङ्गन करता हूँ कि शायद कभी इन्होने तुम्हारे कोमल अङ्ग का भी स्पर्श किया हो ।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ द्वारा कहता है कि हे प्रिये ! तुम्हारे वियोग मे रातें बडी लम्बी दिखाई देती हैं, बीतने मे नही आती, दिन भी अपने तीव्र सन्ताप से दुःख देता है—इसी चिन्ता मे मैं अपने आपको असहाय पाता हूँ—

संक्षिप्येत क्षण इव कथं दीर्घयामा त्रियामा
सर्वावस्थास्वहरपि कथं मन्दमन्दातपं स्यात् ।
इत्थं चेतश्चटुलनयने दुर्लभ प्रार्थनं मे
गाढोष्माभिः कृतमशरणं त्वद्वियोग व्यथाभिः ।।४८।।

अर्थ—हे प्रिये ! लम्बे प्रहारों वाली रात्रियाँ एक क्षण के समान छोटी कैसे हो और दिन भी सब कालो मे अल्पसन्ताप वाला कैसे हो—इस प्रकार हे चचल नेत्रों वाली ! दुर्लभ प्रार्थना वाला मेरा चित्त अति तीव्र तुम्हारे वियोग की व्यथाओं से अपने आपको असहाय पाता है ।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ द्वारा अपनी प्राण प्रिया को धैर्य रखने के लिए कहता है—

नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे
तत्कल्याणि त्वमपि नितरां मा गमः कातरत्वम् ।
कस्यात्यन्त सुखमुपनतं दुःखमे कान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमि क्रमेण ।।४६।।

अर्थ—हे सुभगे ! बहुत सोच-विचार करने के पश्चात् मैं स्वय ही अपने आपको समझाता हूँ अर्थात् धैर्य धारण कर जैसे-तैसे जी रहा हूँ । अत तुम भी अधिक मत व्याकुल हो । सदा किसी को सुख नही मिलता और न सदा किसी को दु ख ही प्राप्त होता है । यह सुख-दुःख का क्रम पहिये के समान कभी नीचे कभी ऊपर होता ही रहता है अर्थात् ये दारुण दुःख के दिन सदा नही रहेगे । शाप अब शीघ्र ही समाप्त हो जाएगा और फिर हम दोनो पुर्नमिलन के मधुर फल का आस्वाद करेंगे ।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ द्वारा वियोग विधुरा अपनी प्रियतमा को पुनः धैर्य बंधाता हुआ कहता है—

शापान्तो मे भुजग शयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ
शेषान् मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा ।
पश्चादावां विरहे गुणितं तं तमात्माभिलाषं
निर्वेक्ष्यावः परिणत शरच्चन्द्रिकासु क्षपासु ।।५०।।

अर्थ—हे प्रिये ! आगामी देवोत्थानी एकादशी को जब विष्णु भगवान् शेष-शय्या से उठेंगे, उसी दिन मेरे शाप की समाप्ति हो जायेगी । अत इन शेष बचे हुए चार महीनो को जैसे तैसे आँख मीचकर बिता दो । फिर तो हम दोनो, विरह के दिनो मे सोची हुई अपने मन की इच्छायें, शरद् की सुहावनी चाँदनी रातो मे पूरी कर ही लेंगे ।

अब यक्ष मेघ द्वारा रात को सोने के समय प्रिया द्वारा कही गयी गूढ बातो को कहता है :—

भूयश्चाह त्वमपि शयने कण्ठलग्ना पुरा मे
निद्रां गत्वा किमपि रुदती सस्वरं विप्रबुद्धा ।
सान्तर्हासं कथितमसकृत्पृच्छतश्च त्वया मे
दृष्टः स्वप्ने कितव रमयन् कामपि त्वं मयेति ।।५१।।

अर्थ—हे अबले ! मेरे द्वारा तुम्हारे प्रिय यक्ष ने फिर भी कहा कि पहले अर्थात बहुत दिन बीत गये शय्या पर तुम मेरे गले से चिपटकर सोई हुई थी फिर जोर-ज़ोर से चिल्लाकर जाग पडी । जब मैने तुमसे इसका कारण बार-बार पूछा तो तुमने खिल-खिलाकर हँसते हुए कहा—"हे धूर्त ! मैंने स्पप्न मे तुम्हे किसी प्रेयसी के साथ रमण करते देखा ।"

अब यक्ष मेघ द्वारा प्रिया को कहता है कि हे प्रिये ! मुझको कुशल पूर्वक जानकर मुझ पर अविश्वास मत करो क्योकि मेरा प्रेम तुम्हारे प्रति दिन-प्रतिदिन बढ रहा है :—

एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञाना द्विदित्वा
मा कौलीनाद सितनयने मय्यविश्वासिनी भूः
स्नेहानाहुः किमपि विरहेध्वंसिनस्ते त्वभोगा—
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशी भवन्ति ।।५०।।

अर्थ :—हे सुन्दर नेत्रो वाली ! इसलिये अपने जीवित रहने के अभिज्ञान के पहुँचाने पर मुझे सकुशल जानकर लोगो की उल्टी सीधी निन्दात्मक बाते सुनकर मुझ पर अविश्वास न करो । लोग कहते है कि विरह मे प्रेम घट जाता है परन्तु सच्चाई यह है कि अभीष्ट वस्तुओ के प्राप्त न होने पर उनके लिये तृष्णा बढ जाती है और प्रेम ढेर का ढेर इकट्ठा हो जाता है ।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ ! इस प्रकार मेरी वियोग की व्यथा से व्यथित प्रिया को धैर्य दिलाकर मेरे लिये भी उसका कुशल-सन्देश लाओ :—

आश्वास्यैवं प्रथम विरहोदग्र शोकां सखीं ते
शैलादाशु त्रिनयन वृषोत्खात कूटान्निवृत्तः ।
साभिज्ञान प्रहित कुशलैस्तद्वचोभि र्ममापि
प्रातः कुन्द प्रसव शिथिलं जीवितं धारयेथाः ।।५३।।

अर्थ—हे मेघ ! इस पहले वियोग से व्यथित अपनी भाभी को धैर्य बँधाकर उससे कुशल क्षेम का समाचार और पहचान लेकर तुम मेरे पास शीघ्र ही उस कैलास पर्वत से लौट आना जिसकी चोटियाँ महादेव जी के साँड ने उखाड डाली थी । तत्-पश्चात् यहाँ पहुँचकर प्रात काल के समय खिले हुए कुन्द पुष्पो के समान क्षणभगुर

मेरे जीवन का अवलम्ब बनना अर्थात् प्रिया के प्रेम भरे सन्देश और उसकी पहचान लेकर जब तुम लौटोगे तो मेरी जान मे जान आएगी।

अब अगले श्लोक मे यक्ष मेघ की परोपकार प्रियता का वर्णन करता हुआ मेघ के प्रति आभार प्रकट करता हुआ कहता है :—

कच्चित्सौम्य व्यवसितमिदं बन्धुकृत्यं त्वया मे
प्रत्यादेशान्न खलुभवतो धीरतां कल्पयामि ।
नि.शब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्यः
प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सताभीप्स्तितार्थं क्रियैव ।।५४।।

अर्थ—हे सौम्य मेघ ! क्या तुमने अपने प्रिय बन्धु यक्ष का कार्य करने का निश्चय कर लिया है—मुझे विश्वास है कि तुमने अवश्य यह काम हाथ मे ले लिया है। तुम्हारे चुप होने पर भी अर्थात् हाँ मे उत्तर न देने पर भी मैं तुम्हारी अपार गम्भीरता का अनुमान नही लगा सकता क्योकि तुम तो बिना माँगे ही पपीहो को शीतल जल का दान देते हो। सच है याचको की इच्छाओ को पूरा करने से ही महा-पुरुष हाँ मे उत्तर दे देते हैं अर्थात् तुम्हारे जैसे सज्जन बोलते नही बल्कि काम करके दिखा देते है।

अब अगले श्लोक मे यक्ष अपने अपराध को मानता हुआ अपने कार्य को अवश्य ही करने की प्रार्थना करता हुआ मेघ को छोड़ देता है :—

एतत्कृत्वा प्रियमनुचित प्रार्थनावर्तिनो मे
सौहार्दाद्वा विधुर इति वा मय्यनुक्रोश बुद्धया ।
इष्टान् देशान् जलद विचर प्रावृषा सभृत श्री
मां भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः ।।५५।।

अर्थ—हे मेघ ! मैंने जो तुम्हे प्रार्थना की है वह चाहे अनुचित है, परन्तु उसे पूरा कर देना, चाहे मित्रता का नाता समझकर करना, अथवा मुझ वियोगी पर दया भाव से। इसके पश्चात् वर्षा ऋतु मे अपनी पूरी शोभा को एकत्रित कर अनेक देशो मे विचरण करना। मैं प्रार्थना करता हूँ कि तुम्हारा अपनी प्रिया बिजली से क्षणभर के लिए भी वियोग न हो जैसे मैं वियोग के दु ख को भोग रहा हूँ।

पूर्वमेघ

टिप्पणियां

मेघदूत शब्द की व्युत्पत्ति:—मेघदूत शब्द का विग्रह व्याकरण की दृष्टि से कई प्रकार से किया जाता है यथा —

"मेघ एव दूत, मेघश्चासौ दूत अभेदोपचारात् तत्सज्ञ काव्यमेघदूतम् अथवा मेघ: दूत यस्मिन् तत्काव्य मेघदूतम्" अर्थात् जिस काव्य मे मेघ, दूत बन कर जाता है उस काव्य को मेघदूत कहना चाहिए।

मगलाचरण —विघ्नो की शान्ति के लिए अपने इष्ट देव से जो प्रार्थना की जाती है उसे मगलाचरण कहते है। प्राय सभी कवि अपने ग्रन्थो के आरम्भ मे अपने-अपने इष्टदेव को मनाते है जिससे उनका ग्रन्थ अथवा काव्य निर्विघ्न रूप से समाप्त हो जाये। साहित्य के महान् आचार्य दण्डी ने तीन प्रकार के मगलो का वर्णन किया है। यथा :—"आशीर्नमस्क्रिया वस्तु निर्देशो वापि तन्मुखम्" अर्थात् आशी, नमस्क्रिया और वस्तु निर्देश। किसी ग्रथ के आरम्भ मे जब किसी देवता की स्तुति की जाती है वहाँ "आशी" इस मगल का प्रयोग किया जाता है और जब कवि ग्रन्थ के आरम्भ मे अपने इष्टदेव को प्रणाम करता है वहाँ "नमस्क्रिया" नामका मगलाचरण प्रयुक्त होता है। जब कवि या लेखक अपने ग्रन्थ के आरम्भ मे एकदम प्रतिपाद्य विषय का ही वर्णन आरम्भ करता है वहाँ "वस्तुनिर्देश" नामक मगल प्रयुक्त होता है। मेघदूत मे इसी प्रकार के मगल का प्रयोग किया गया है।

श्लोक १—कश्चित्=कोई, किसी

"मेघदूत" मे आदि से अन्त तक यक्ष का नाम कही नही आया। इस सम्बन्ध मे विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत है। कुछ विद्वान् कहते हैं कि "मेघदूत" एक काल्पनिक काव्य है। इसकी सुन्दरता और चमत्कारिता इसी में है कि पढने वाले के हृदय मे यक्ष के नाम जानने की उत्सुकता बनी रहे और काल्पनिक काव्य मे नाम बताने की आवश्यकता भी नही किन्तु यहतर्क युक्तिसगत प्रतीत नही होता। कुछ विद्वान कहते है कि यक्ष ने अपने कर्त्तव्य के पालन मे प्रमाद किया था अत: वह पाप का भागी था और उसका नाम लेना अशुभ था जैसा कि निम्न श्लोक मे बताया है।—

भर्तु राज्ञां न कुर्वन्ति येच विश्वासघातका:।
तेषां नमापि न ग्राह्य शास्त्रादो विशेषत:॥

अर्थात् जो अपने स्वामी की आज्ञा का पालन नही करते और जो विश्वास-

घाती हैं उनका शास्त्र के आरम्भ में नाम भी नहीं लेना चाहिये। इसके अतिरिक्त नीचे के श्लोक में नाम न लेने के जो कारण बताये गये है वे तो अक्षरश यक्ष के आचरण के सम्बन्ध मे घटित होते हैं :—

न नामग्रहण कुर्यात कृपणस्य गुरोस्तथा।
अभिशप्तस्य पत्न्याश्च माता पित्रोर्विशेषतः॥

अर्थात् कजूस, गुरु, जिसको शाप दिया गया है, पत्नी और विशेष रूप से माता-पिता का नाम नही लेना चाहिये।

इस श्लोक के अनुसार कर्तव्य मे प्रमाद करने के कारण यक्ष को दण्ड दिया गया था अत उसका नाम लेना उचित नही था। वास्तव मे काव्यमर्मज्ञ महाकवि ने काव्य के आरम्भ मे यक्ष का नाम न लेकर जहाँ पाठको की उत्कण्ठा को सदैव के लिये सजीव रखा है वहाँ लोकमर्यादा और शास्त्रमर्यादा का भी पालन किया है दूसरी बात यह है कि कालिदास जैसे आस्तिक कवि के लिये यह सर्वथा उचित ही था कि वह किसी-न-किसी रूप मे काव्य के आरम्भ मे भगवान का नाम लेता। "क ब्रह्म" ख ब्रह्म" इन श्रुति वाक्यों के अनुसार "क" शब्द विष्णु के लिये प्रयुक्त होता है अतः कहना न होगा कि कवि ने "कश्चित्" शब्द से आरम्भ करके सर्वव्यापक विष्णु का ध्यान अवश्य किया होगा। "जहाँ न पहुँचे रवि वहाँ पहुँचे कवि" इस उक्ति के अनुसार महाकवि ने प्रथम श्लोक के प्रथम शब्द मे अपनी प्रखर प्रतिभा, कमनीय कल्पना दूर-दर्शिता तथा भावों की सूक्ष्मता का परिचय दिया है और "कश्चित्" इस प्रथम शब्द के बाद ही "कान्ता" शब्द का विन्यास करके अनोखी अनुप्रास की छटा दिखाई है।

कान्ता बिरह गुरुणा—यक्ष और उसकी प्रियतमा के विह्वल वियोग की करुण गाथा ही "मेघदूत" का सार है। इसीलिए कवि ने प्रथम श्लोक मे "पत्नी, भार्या" आदि शब्दों का प्रयोग न करके भावपूर्ण "कान्ता" शब्द का प्रयोग के अपने अपूर्व काव्य-कौशल का परिचय दिया है। "कान्ता" शब्द का अर्थ है सुन्दर, रूपवती प्रिया। ऐसा कहने से यक्ष का अपनी प्राणेश्वरी के प्रति अनन्य अनुराग प्रकट होता है और इसीलिए यक्ष को उसका वियोग असह्य था।

स्वाधिकार प्रमत्त—यक्ष ने अपने अधिकार अर्थात् कर्तव्य के पालन मे प्रमाद किया था। वह प्रमाद क्या था—इस विषय मे कही भी कोई स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता। विद्वान भिन्न भिन्न रूप से अनुमान लगाते है। कोई कहता है कि यक्षेश्वर कुबेर ने देवार्चन के लिये यक्ष को सद्यो विकसित अर्थात् ताजे पुष्प लाने को कहा था वह अपने स्वामी का सन्तोष न कर सका। कुछ विद्वान कहते है कि यक्षेश्वर कुबेर ने यक्ष को अपने सुन्दर उद्यान की रक्षा के लिये नियुक्त किया था किन्तु यक्ष प्रमादवश वाटिका की उचित रूप से रक्षा न कर सका।

अस्तगमित महिमा—अपने स्वामी कुबेर के शाप से यक्ष की महिमा अर्थात्

दिव्य शक्ति नष्ट हो गई थी। समस्त काव्य का रहस्य इसी शक्ति की क्षीणता मे निहित है। यदि शाप से यक्ष की अलौकिक विभूति नष्ट नही हुई होती तो वह अदृश्य रूप से अथवा योगदर्शन मे प्रतिपादित अणिमा सिद्धि के द्वारा सूक्ष्म रूप धारण करके अपनी प्रिया से मिल आता और उसे मेघ से दूत बनकर प्रणय सन्देश को ले जाने के लिये अनुनय विनय नही करनी पड़ती।

यक्ष—यक्ष, किन्नर, गन्धर्व—ये देवताओ की विशेष योनिया मानी जाती है यक्षों को धनपति कुबेर का सेवक बताया गया है। इसीलिए पूर्वमेघ के सातवे श्लोक मे कुबेर के लिए यक्षेश्वर शब्द का प्रयोग किया है। यक्षो का काम कुबेर के उद्यानो और कोशों की रक्षा करना है। यक्ष शब्द की व्युत्पति कई प्रकार से होती है — यक्ष्यते पूज्यते इति यक्ष । ये कुबेर के दास हैं और ससार इनकी पूजा करता है। अथवा अप्सराये इनके सौन्दर्य पर मोहित होकर इनसे प्यार करती है। परन्तु 'मेघदूत' के अनुसार यक्षो की अपनी पत्नियां होती है। इ (काम) अक्षणो यस्य इतियक्ष. अर्थात् यक्ष स्वभाव से ही अत्यन्त कामी और अनुरागी होता है। इ (काम.) तस्य इव अक्षिणी यस्य इति यक्ष. अर्थात् यक्ष आकृति से परम रूपवान होते हैं। भगीरथ के अनुसार यक्ष शब्द की व्युत्पत्ति निम्न प्रकार है .—

जक्षति खादन्ति शिशूनिति जक्षा । जक्षा का यक्षा हो गया। किन्तु इस व्युत्पत्ति की निन्दा करते हुए विल्सन महोदय कहते हैं—Occasionally, indeed, the yakshas appear as imps of evil, but in general their character is perfectly inoffensive अर्थात् यद्यपि कभी कभी यक्ष राक्षस रूप मे भी दिखाई देते हैं परन्तु साधारणतया ये लोग पवित्रात्मा ही होते हैं।

जनक तनयास्नान पुण्योद केषु—वनवास के दिनो में भगवती सीता और यतिवर लक्ष्मण के साथ श्री रामचन्द्र जी कुछ दिन रामगिरि पर्वत पर रहे थे। सीता जी वहाँ प्रतिदिन स्नान किया करती थी अत. उनके पवित्र शरीर के साथ सम्पर्क होने के कारण उन पर्वतो के जल भी पवित्र हो गये थे।

स्निग्धच्छायातरुषु—प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ महोदय छायातरु का अर्थ "नमेरु" वृक्ष करते हैं किन्तु इस प्रकार अर्थ को संकुचित रूप मे लेना उचित प्रतीत नहीं होता। घनी छाया वाले वृक्ष—ऐसा ही अर्थ अधिक उपयुक्त रहेगा। एक टीकाकार लिखते हैं—"पूर्वापर दिग्भागेऽपि सवितरि येषु छाया न परिवर्तते ते छायातर व उच्यन्ते" अर्थात् जिन वृक्षो पर सूर्य की छाया नही पड़ती वे छायातरु हैं।

रामगिर्याश्रमेषु—महापण्डित मल्लिनाथ के अनुसार रामगिरि चित्रकूट पर्वत है जहाँ श्री रामचन्द्र जी कुछ दिन रहे थे किन्तु यक्ष द्वारा मेघ को बताये मार्ग के प्रारम्भिक स्थान को ध्यान में रखते हुए इसे नागपुर के दक्षिण मे थोड़ी दूर पर स्थित "रामटेक" ही समझना उचित है। श्री विल्सन कहते हैं कि "रामटेक" पर्वत पर राम के मन्दिर पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं और प्रतिवर्ष सैकड़ों यात्री यात्रा के लिए यहाँ

आते है। कुछ विद्वानो के अन्तिम अनुसन्धान के अनुसार "रामटेक" ही कवि का अभीष्ट स्थान सिद्ध होता है। "आश्रमेषु" इस बहुबचन के प्रयोग से कवि ने यह भाव प्रकट करने का प्रयत्न किया प्रतीत होता है कि काम पीडित यक्ष की बुद्धि ठिकाने नही थी अत. पुन: पुन स्थान परिवर्तन करके भटकता फिरता था।

श्लोक—२ कतिचित्—कुछ। उत्तर मेघ के ५०वे श्लोक मे लिखा है।

शापान्तो मे भुजग शयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ
शेषान्मासानन्गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा।

अर्थात् हे प्रिये! आगामी देवोत्थानी एकादशी को जब भगवान् विष्णु शेष-नाग रूपी शय्या से उठेगे, उसी दिन मेरे शाप की भी समाप्ति हो जायेगी। इसीलिए इन शेष बचे हुए चार महीनो को जैसे-तैसे आँख मीचकर व्यतीत कर लो—इससे प्रतीत होता है कि यक्ष आश्रम मे आठ मास बिता चुका था। इसलिए मल्लिनाथ ने कतिचित् का अर्थ। "अष्टौमासान्" किया है।

अबला—निर्बल, कृशकाय, असमर्थ अर्थात् जो पति से अलग होने के कारण अत्यन्त क्षीण काय हो गई है। अबला और यक्ष के लिए "कामी" शब्द का प्रयोग करके कवि ने पति पत्नी के कामजनित असह्य सन्ताप की अभिव्यक्ति की है। कामी होने के कारण यक्ष अपनी प्रिया के वियोग को सहने मे असमर्थ था और पत्नी की विवशता के कारण उसका दु ख दुगुना हो गया था। काव्य कुशल कवि ने इस श्लोक मे यक्ष यक्षिणी की विरह दशा को व्यक्त करते हुए उपयुक्त शब्दो के चयन मे अपूर्व काव्य चातुरी का परिचय दिया है।

कनक वलय—अत्यन्त कामुक होने के कारण यक्ष ने कडा पहना हुआ था और अपनी प्रिया के वियोग मे इतना दुर्बल हो गया था कि बिना उतारे ही वह कड़ा गिर गया था। अपनी प्रेमिकाओ की चिन्ता में कामियो की जो दशा होती है उसी का सुन्दर चित्रण कवि ने इस श्लोक मे किया। कालिदास के प्रसिद्ध नाटक शाकुन्तल मे भी ऐसे ही सोने के कड़े का गिरना वर्णित है यथा—"मणि बन्धात् कनकवलय स्रस्त स्रस्त मया प्रतिसार्यते"।

आषाढस्य प्रथम दिवसे—प्रसिद्ध टीकाकार वल्लिनाथ ने व्याकरण की दृष्टि से आषाढ शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा है—आषाढ नक्षत्रेण युक्ता पौर्णमासी आषाढी। साऽऽषाढी अस्मिन् पौर्णमासीत्याषाढो मास:। इस देश मे मासो के भारतीय नाम उन नक्षत्रो के नाम पर रखे गये है जिनमे पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा स्थित होता है जैसे—चैत्र, पौष, माघ आदि।

कालिदास के समय मे वर्षा ऋतु का आरम्भ आषाढ के प्रथम दिवस मे ही हो जाता होगा। यह महीना अग्रेजी महीने जुलाई के आरम्भ मे आता है। नागपुर के कुछ क्षेत्रो मे अब भी आषाढ मे ही वर्षा का आरम्भ हो जाता है।

कुछ टीकाकार कहते है कि "प्रथम दिवसे" इस पाठ के स्थान मे "प्रशम-दिवसे" होना चाहिये क्योकि पूर्व मेघ के चौथे श्लोक मे "प्रत्यासन्ने नभसि" और उत्तर मेघ के ५०वें श्लोक मे "शेषान् मासान् गमय चतुर" इन दोनो पाठो के साथ "प्रथम दिवसे" ठीक मेल नही खाता क्योकि आषाढ के प्रथम दिवस और श्रावण के आरम्भ मे एक महीने का अन्तर होने से श्रावण को "प्रत्यासन्न" कहना ठीक नही तथा आषाढ के प्रथम दिन से देवोत्थानी एकादशी तक चार मास दस दिन होते है। अतः "प्रथम दिवसे" के स्थान मे "प्रशम दिवसे" ही होना चाहिये। किन्तु "प्रशम दिससे" ऐसा पाठ स्वीकार करना उचित प्रतीत नही होता क्योकि "प्रशम" शब्द का "अन्तिम" अर्थ करने मे बडी खीचातानी की आवश्यकता होगी जो महाकवि कालिदास को कदापि अभिष्ट नही। समस्त ग्रन्थो मे कालिदास ने इस प्रकार शब्दों की खीचातानी नही की। कवि तो शब्दो के उचित प्रयोग मे विश्वास रखते प्रतीत होते है। दूसरी बात यह है कि "प्रशम" शब्द के मानने से हमें वर्षा ऋतु को एक मास आगे श्रावण मास मे खदेड़ना पडेगा जो सर्वथा अनुचित प्रतीत होता है क्योकि यक्ष ने तो मेघ के प्रथम दर्शन पर ही अपनी प्रियतमा को ढाढस बन्धाने के लिए प्रणय सन्देश भेजने का विचार किया होगा। "प्रथम दिवसे" इस पाठ को यथावत् मानने से यक्ष के पास अपनी प्राणेश्वरी को प्राण धारण कराने वाले प्रणय सन्देश को भेजने के लिए पर्याप्त समय मिलता है। यह बात "प्रशम दिवसे" की कल्पना मे नही।

श्लोक—३—कथमपि—जैसे तैसे, बडी कठिनता से। क्योकि मेघ को देखकर यक्ष के हृदय मे उत्कण्ठा उत्पन्न हो गई थी और वह मेघ के सामने आसानी से खड़ा नही हो सकता था।

कौतुकाधान—काम विषयक उत्कण्ठा को कौतुक कहते हैं और मेघ के दर्शन से कौतुक उत्पन्न होता है। भाव यह है कि वर्षा ऋतु के आने पर प्रवासी अपने-अपने घरो को लौट आते हैं।

अन्तर्वाष्प—यक्ष ने जब मेघ को देखा तो उसे अपनी प्रिया याद आ गई और उसकी आंखो मे आंसू आये किन्तु उसने उनको अन्दर ही रोक लिया।

मेघालोके—ग्रीष्म ऋतु के भीषण सन्ताप से त्राण पाने के लिए सब लोग वर्षा ऋतु का स्वागत करते है और कामी तो विशेष रूप से प्रसन्न होते है।

अन्यथावृत्ति—यहाँ वृत्ति का अर्थ स्वस्थता है। अत अस्वस्थ, उत्कण्ठित दु खित, विचलित—यह अर्थ अभिप्रेत है।

श्लोक ४—नभसि अर्थात् श्रावणे—श्रावण मास के निकट आने पर। आषाढ़ मास की वृष्टि से गर्मी शान्त हो जाने के कारण श्रावण मास भोग के लिए उपयुक्त होता है किन्तु कामी इस मास मे दु खी होते है। श्रावण मास मे प्रकृति को सुन्दरता

कामियो के लिए उत्तेजक बन जाती है ।

जी मूतेन—सहृदय कवि ने इस शब्द का प्रयोग बडे भावपूर्ण अर्थ मे किया है । जी मूत शब्द की व्युत्पत्ति—जीवनस्य उदकस्य मूत पटबन्ध जीमूतः । बादल जल और प्राण देने की पूर्ण शक्ति रखता है ।

कल्पितार्घाय—किसी देवी देवता अथवा उपास्य व्यक्ति की पूजा के लिए जो सामग्री सर्मपित की जाती है उसे अर्घ कहते है । अर्घ की वस्तुओ की गणना निम्न श्लोक मे इस प्रकार की गई है —

आपः क्षीर कुशाग्राणि दधि सर्पिश्च तंडुलाः ।
यवाः सिद्धार्थक चैव अष्टांगोऽर्घो परिकीर्तित· ।।

यदि किसी असमर्थ व्यक्ति के पास दूध, घी, जौ, चावल आदि पदार्थ न हो तो वह मानसिक अर्घ भी कर सकता है । शतपथ ब्राह्मण (११-३-१-४) मे इसी प्रकार के मानसिक यज्ञ का विधान है । यथा—

अभावे दधि दूर्वादेर्मानस वा प्रकल्पयेत् ।

अर्थात्—दही, दूबघास आदि के अभाव मे मानसिक अर्घ दे ।

श्लोक ५—धूमज्योति-धूम, ज्योति, सलिल और वायु—इनके सघात से बादल बनता है—इस वैज्ञानिक तथ्य को महाकवि कालिदास अच्छी तरह जानते थे । जो लोग यह समझते है कि पूर्वकाल के लोग साइस से अनभिज्ञ थे उन्हे यह मिथ्या धारणा दूर कर देनी चाहिए ।

क्व क्व—इन दोनो क्व क्व का प्रयोग मेघ और सन्देश की घोर विषमता को प्रकट करने के लिए किया है ।

पटुकरणै—यहाँ करण शब्द का अर्थ इन्द्रियाँ है ।

गुह्यकः—यह शब्द यक्ष के लिए प्रयुक्त हुआ है । इस शब्द की व्युत्पत्ति कई प्रकार से की जाती है । जैसे—

१ गुह्य कुत्सितं कायति

२ गुह्य गोपनीय क सुख यस्य

३ गूहति निधि रक्षति—अर्थात् जो खजाने की रक्षा करता है । तीसरी व्युत्पत्ति तो यक्ष के कर्त्तव्य का प्रतिपादन स्पष्ट रूप से करती है ।

प्रकृतिकृपणाः—स्वभाव से ही विवेक शून्य कुछ विद्वान कहते हैं कि यहाँ 'प्रणय कृपणा" पाठ होना चाहिए । इसका अर्थ होगा—प्रार्थना करने के विषय मे ज्ञान शून्य अर्थात् जिसको यह न पता हो कि प्रार्थना किससे करनी चाहिए । कामातुर पुरुष वास्तव मे विवेकहीन हो जाते हैं जैसा कि लिखा है.—

नैव पश्यति जात्यन्धः कामान्धो नैव पश्यति ।
न पश्यति मदोन्मत्तस्त्वर्थी दोष न पश्यति ।।

अर्थात् जात्यन्ध, कामान्ध, मदोन्मत्त और स्वार्थी विवेक शून्य होने के कारण

दोष को नही देखता ।

श्लोक ६—पुष्करावर्तकानाम्—प्रसिद्ध टीकाकार महापण्डित मल्लिनाथ पुष्कर और आवर्तक को अलग-अलग मानते हैं किन्तु पुष्कर (जलम्) आवर्तयन्तीत पुष्करावर्तका —इस विग्रह के अनुसार पुष्करावर्तक को एक पद भी माना जा सकता है। मल्लिनाथ के अनुसार पुष्कर और आवर्तक दोनो ही प्रलयकाल मे वर्षा करने वाले मेघ हैं । ब्रह्माण्ड-पुराण मे तीन प्रकार के मेघो का वर्णन पाया जाता है, जैसे —

१. अग्नि से उत्पन्न हुए मेघ

२ ब्रह्म के नि श्वास से उत्पन्न

३ इन्द्र द्वारा छिन्न-भिन्न किये हुए पर्वतो के पखो से उत्पन्न । तृतीय प्रकार के मेघो को ही पुष्करावर्तक कहते हैं। इस वर्णन से कवि के व्यापक ज्ञान की अभिव्यक्ति होती है ।

प्रकृति पुरुषम्—प्रकृतिश्चा सौ पुरुषश्च । वेद के अनुसार इन्द्र को आकाश का देवता, वायुमण्डल का स्वामी तथा वर्षा करने वाला बताया है । अत: मेघ इन्द्र के सेवक हैं ।

कामरूपम्—कामकृतानि रूपाण्यस्य—अर्थात् इच्छा के अनुसार रूप धारण करने वाला । निम्नलिखित श्लोक मे भी यही बात बताई है, जैसे —

नाना रूप धरास्ते तु महाधीरस्वनास्तथा ।
कल्पन्ते वृष्टि कर्तार: संवर्ताग्नेर्नियामका: ।।

अर्थात् बादल अनेक रूप धारण करते हैं और घोर गर्जन करते हैं ।

दूरबन्धु—दूरेबन्धुर्यस्य स दूरबन्धु —अर्थात् अपनी पत्नी से वियुक्त हुआ । यहाँ बन्धु शब्द से भार्या ही अभीष्ट है । भार्या से बढ़कर सच्चा बन्धु हितैषी और कौन हो सकता है ।

लब्धकामा—लब्ध कामो यस्या सा । ऐसे ही भाव हंसदूत (९) में प्रकट किये गये हैं —

अतोऽहं दुःखार्त्ता शरणमबला त्वां गतवती
न भिक्षा सत्पक्षे व्रजति हि कदाचिद्विफलताम् ।

इसी प्रकार किरातार्जुनीय (१-८) मे भी कहा है.—

"समुन्नयन् भूतिमनार्य संगमाद
वर विरोधोऽपि सम महात्मभि: ।।

श्लोक ७—सन्तप्ताना त्वमसि शरणम्—अर्थात् हे मेघ ! तू गर्मी से सताये हुए प्राणियों का रक्षक है और यह भी भाव प्रकट होता है कि अपनी प्रियतमा से वियुक्त होने के कारण मेरे जैसे दु खित प्राणियो के प्रणय सन्देश को ले जाकर तू सुख

का कारण हो सकता है। मेघदूत का यह वाक्य अत्यन्त भावपूर्ण है अपितु यह कहना चाहिए कि मेघ की महिमा मे चार चाँद लगाने वाला है।

शरणम्—इस शब्द के दो अर्थ है—आश्रय, रक्षक प्रथम को वृष्टि द्वारा शीतलता प्रदान करके और दूसरो को प्रवासियो को घर लौटाकर। बाल्मीकि रामायण मे भी इसी भाव को प्रकट करते हुए लिखा है—

प्रवासिनो यान्ति नरा. प्रदेशान्—अर्थात् प्रवासी अपने-अपने घरो को लौट रहे हैं।

अलका—यह उत्तर दिशा के अधिपति, धन के स्वामी कुबेर की राजधानी है। अलतिभूषयति-इति अलका अर्थात् जो नगरी अपनी अपूर्व रमणीयता से पृथ्वी की शोभा बढाती है इसके अन्य नाम वसुधारा, वसुस्थली और प्रभा है जो इसके विपुल वैभव के द्योतक है। "यथानाम तथागुण" यह उक्ति अलका मे पूर्णतया चरितार्थ होती है।

बाह्योद्यान—यह कुबेर का प्रसिद्ध उद्यान है जिसे चैत्ररथ ने बनाया था। अतः इस उद्यान को **चैत्ररथ** भी कहते है। दूसरा नाम **वैभ्राज है**। भगवान् शकर कुबेर के मित्र है और इसी उद्यान मे निवास करते है। उनके मस्तक पर स्थित चन्द्रमा का प्रकाश सूर्य के प्रकाश को भी फीका कर देता है। इसी बात को ध्यान मे रखकर सम्भवत कवि ने महलो को चन्द्रिकाधौत कहा है। "चन्द्रिकाधौत" इस विशेषण का अर्थ श्री शकर शास्त्री ने बड़े रोचक एव भावतूर्ण ढग से किया है। वे कहते हैं कि जब मेघ किसी नगरी मे रात्रि को चक्कर लगाता है उस समय चन्द्रमा का प्रकाश अतिमन्द हो जाता है परन्तु अनोखी अलका मे शिवजी का चन्द्रमा नगरी के बराबर ऊँचाई पर रहता है और मेघ उसके प्रकाश को नही रोकते। अत अलका मे अद्भुत सौन्दर्य की छटा सदा विद्यमान रहती है।

श्लोक—८—उद्गृही ताल कान्ताः—जिन्होने अपने घुंघराले बाल ऊपर को उठाये हुए हैं। प्रवासियो की स्त्रिया पति के घर लौटने तक अपने बालो को खुला रखती हैं। महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपनी याज्ञवल्क्य स्मृति मे लिखा है—

क्रीडां शरीर सस्कार समाजोत्सवदर्शनम्।
हास्यं परग्रहे यान त्यजेत् प्रोषित भर्तृका॥

अर्थत् जिस स्त्री का पति बाहर गया हो वह क्रीडा, शरीर की सजावट, उत्सवों मे भाग लेना, हास्य और पराये घर मे जाना छोड दे। अत. कवि ने शास्त्र मर्यादा का पालन करते हुए उक्त विशेषण को श्लोक मे स्थान दिया है।

विधुरा—कवि ने इस शब्द को भी प्रसंग के अनुसार उपयुक्त अर्थ मे प्रयुक्त किया है। विगताधू. कार्यभारो यस्या सा अर्थात् किसी कार्य के भार को संभालने मे असमर्थ। अत इस शब्द का अर्थ हुआ—विवश, निस्सहाय, दु खित, सन्तप्त।

जाया—भावो के अनुकूल शब्दो के चयन मे कालिदास सिद्ध हस्त है। यक्ष की कामुक प्रकृति को प्रकट करने के लिए इस श्लोक मे कवि ने जान बूझकर "जाया" शब्द का प्रयोग किया है। भगवान् मनु अपने प्रसिद्ध धर्मशास्त्र मनुस्मृति मे जाया शब्द की विशद व्याख्या करते हुए लिखते है—

पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते ।
जायायास्तद्धि जायात्वदस्यां जायते पुन ॥ ६१८

अर्थात् स्वामी वीर्य रूप से स्त्री के गर्भाशय मे प्रवेश कर पुत्र रूप से उत्पन्न होता है पति उसमे फिर जायमान होता है। यही जाया (पत्नी) का "जायापन" है।

श्लोक—६—अविहतगति —अविहिता गतिर्यस्य स । यह विशेषण लिखकर कवि ने आचार की मर्यादा का पालन किया है। यक्ष कहता है कि हे मेघ ! बडे भाई की स्त्री माता के समान होती है। अत तुम उससे बिना किसी रुकावट के मिल सकोगे।

कुसुम सदृशम्—स्त्रियो के हृदय की कोमलता बतलाने के लिये कवि ने यह भावपूर्ण विशेषण लिखा है। महाकवि भवभूति ने अपने प्रसिद्ध नाटक उत्तरराम चरित मे इसी कमनीय कोमलता का हृदयहारी वर्णन किया है, यथा.—

"पुरन्ध्रीणां चेतः कुसुम सुकुमार हि भवति ।"

अर्थात् स्त्रियों का चित्त फूल के समान कोमल होता है।

श्लोक—१०—वामः—बाईं ओर पपीहा, मोर, हिरण आदि का आगमन शुभ समझा जाता है। यही भाव निम्न लिखित दो श्लोको मे स्पष्ट किया गया है—

बर्हिणश्चातकाश्चाषाये च पुंसज्ञिताः खगाः ।
मृगा वा वामगा दृष्टाः सैन्य सपद् बल प्रदाः ॥
कामं वाम समायुक्ताः भोज्ये भोग प्रदायिनः ।
दृष्टास्तुष्टि प्रयच्छन्ति प्रयातुर्मृग पक्षिणः ॥

श्रीरामनाथ तर्कालङ्कार वाम शब्द का अर्थ सुन्दर करते है किन्तु कवि का आशय बाईं ओर से ही है। वाम शब्द का सुन्दर अर्थ भी होता है इसमे सन्देह नही।

चातकः—पपीहा। यह एक अटल व्रत वाला पक्षी है जो स्वाति नक्षत्र मे गिरी हुई वर्षा की बूंदो को ही पीता है। दूसरे पानी को छूता भी नही चाहे प्यासा मर जाये इसीलिये कवि परम्परा मे चातकव्रत प्रसिद्ध है इसी दृढ़ व्रत के कारण कवियो को यह पक्षी बहुत प्रिय है।

गर्भाधान—वर्षा ऋतु मे आकाश मे उड़ते हुए बलाकाओ मे गर्भाधान की क्रिया कवियो मे प्रसिद्ध है।

श्लोक-११—उच्छिलीन्ध्राम्-उद्गतानि शिलीन्ध्राणि यस्या जिसमे कुकुरमुत्ता अथवा साँप की छतरियाँ उग आई है। यह अधिक अन्न उत्पन्न होने का चिन्ह हैं।

मान सोत्काः—मानसे उत्का अर्थात् मानसरोवर जाने के लिए उत्सुक। कहा

जाता है कि मानस झील कैलास पर्वत पर है। ब्रह्मा ने इसको मन से उत्पन्न किया था इसलिए इस झील को "मानस" कहते है। सरयू नदी का उद्गम स्थान भी यही है। यह भगवती भागीरथी के पवित्र जल से बने हुए अरुणोद, शीतोद, महाभद्र और मानस नामक चार सरोवरो मे से एक है। वास्तव मे यह झील हिमालय और कैलास के बीच मे है। वर्षा ऋतु मे हस यहाँ आ जाते है।

कैलास—इस पर्वत पर भगवान् शकर और कुबेर निवास करते है। यह स्फटिक मणि का बना हुआ है। यहाँ प्रत्येक प्रकार के वृक्ष पाये जाते है जो बारह महीने फल देते है। इस पुण्य पर्वत के वनो मे ऋषि, मुनि, यक्ष किन्नर आदि रहते हैं।

राजहंस—हस तीन प्रकार के होते हैं —(१) राजहंस जिनकी चोचे और पैर लाल होते है। (२) मल्लिकाक्ष जिनकी चोंचे और पैर भूरे होते है। (६) धार्तराष्ट्र जिनकी चोचें और पैर काले होते हैं।

पाथेय—यात्रा मे जो भोजन साथ ले जाया जाता है उसे पाथेय कहते हैं।

श्लोक—१२—प्रिय सखम्—प्रिय मित्र को। सस्कृत के कवियो ने बादल और पर्वतो को मित्र माना है, जैसे —

मेघ पर्वतयोरब्ज सूर्ययोरब्धि चन्द्रयोः।
शिखि जीमूतयोर्मैत्री वाताग्न्योश्च स्वभावतः॥

अर्थात् मेघ और पर्वत की, कमल और सूर्य की, समुद्र और जन्द्रमा की, मोर और बादल की, वायु और अग्नि की स्वाभाविक मैत्री होती है।

यहाँ पर यक्ष मेघ से कहता है कि हे मेघ! तुम अपने मित्र रामगिरि पर्वत से आदर पूर्वक विदा माँगो। इस आदर के दो कारण है—(१) वह मेघ का मित्र है (२) वह भगवान् राम के पवित्र चरणों से पावन हुआ है।

चिर विरह जम्—चिरं विरह, तस्मात् जातस्तम्। जैसे बहुत दिनो के बाद मिलने पर मित्र आँसू बहाते है उसी प्रकार जब मेघ पर्वत से मिलता है अथवा मेघ का जब पर्वत से सम्बन्ध होता है तब वह वर्षा रूपी आँसू बहाता है। सस्कृत साहित्य के विद्वन् ऐसा मानते भी हैं। जैसे —

"पर्वताहि जल वृष्ट्या स्निग्धा भवन्ति वाष्पं च मुञ्चन्ति"।

अर्थात् पहाड़ जल की वर्षा से गीले (स्नेहमय) हो जाते हैं और आँसू बहाते है।

श्लोक १३—यहाँ से काव्य मे आये हुए भौगोलिक स्थान का वर्णन आरम्भ होता है जो रामटेक पर्वत से हिमालय तक जाता है। विद्वानो के अनुसन्धान के अनुसार यह वर्णन यथार्थ सिद्ध हुआ है।

श्रोत्र पेयम्—जो कानों को प्यारी लगे अथवा कानो द्वारा प्रेम पूर्वक सुनी जाय उसे श्रोत्र पेय कहते हैं।

श्लोक १४—अद्रे:शृगम्—पर्वत की चोटी को। इन पदो से मेघ का महान् आकार दिखलाया गया है।

सिद्ध—सिद्धों में आठ प्रकार की सिद्धियाँ होती है। महर्षि पतंजलि ने अपने योग शास्त्र मे भी इन सिद्धियो का वर्णन किया है—

अणिमा महिमा चैव लघिमा गरिमा तथा ।
प्राप्तिः प्राकाम्य मीशित्वं वशित्वं चाष्टसिद्धयः ॥

सूर्य और पृथ्वी के बीच मे सिद्ध निवास करते हैं।

दिङ्नागानाम्—दिशा नागास्तेषाम् अर्थात् दिशाओ के हाथी। इनके आठ नाम हैं :—

ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः ।
पुष्पवन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गज्जाः ॥

बड़े आकार वाले हाथियो की विशाल सूंडो से बचना आवश्यक है।

श्लोक १५—वल्मीकाग्रातत्—"इन्द्रचापं किल वल्मीकान्त र्व्यवस्थित महानाग शिरोमणि किरण समूहात् समुत्पद्यते" इस पाठ के अनुसार कुछ विद्वान कहते हैं कि इन्द्रधनुष वल्मीक मे रहने वाले साँप की मणि से उत्पन्न होता है।

श्लोक १६—भ्रूविकार०—गाँव की भोली भाली स्त्रियाँ भौओ को मटकाने आदि शृंगारपूर्ण चेष्टाओं के ज्ञान से शून्य होती हैं और उनके स्वभाव में सरलता और मुग्धता होती है। इसी भाव को प्रकट करने के लिए कवि ने ये शब्द लिखे हैं।

मालम्—मल्लिनाथ ने उत्पल माला का प्रमाण देते हुए इस शब्द का अर्थ "मालमुन्नत भूतलम्" अर्थात् पहाडी उन्नत प्रदेश किया है। कुछ विद्वान कहते है कि "माल" किसी देश का नाम है। विल्सन महोदय कहते हैं कि "माल" छत्रीसगढ़ के उत्तर मे स्थित रत्नपुर के कुछ दक्षिण मे माल्दा नाम का स्थान है। इसमे सन्देह नहीं कि "आम्रकूट" माल के समीप कुछ पश्चिम की तरफ होगा।

श्लोक १७—विल्सन महोदय के विचारानुसार आम्रकूट आजकल का "अमर कंटक" है। यह विन्ध्य का पूर्व भाग है। इसी स्थान से नर्मदा नदी निकलती है तथा यहाँ आम अधिकता से होते हैं। यही मत ठीक प्रतीत होता है।

श्लोक १८—स्निग्ध—चिकनी अत चमकीली शेष विस्तार—कालिदास ने रघुवंश में "स्तनाविव दिशस्तस्या शैलौ" पर्वतो को पृथ्वी का स्तन बताया है।

श्लोक १९—वनचर—वनचराणा वधूभि मुक्ता कुंजा यस्मिन्, तस्मिन् आम्रकूटे। कवि ने आम्रकूट पर्वत का यह विशेषण इस अभिप्राय से दिया है कि उन कुंजो में थोड़ी देर ठहरने से मेघ को मनो विनोद की पर्याप्त सामग्री मिल जायेगी।

रेवा—नर्मदी नदी का दूसरा नाम **रेवा**, है। इसका उद्गम स्थान विन्ध्य पर्वत है। इसी नदी की पावनता भी गगा के समान है, जैसे —

गंगास्नानेन यत्पुण्यं तद्रेवा दर्शनेन च ।

यथा गंगा तथा रेवा तथा देवी सरस्वती।
सम पुण्यफलं प्रोक्त स्नानदर्शन चिन्तनै ।।

भक्तिच्छेदै —भक्तीना छेदास्तै अर्थात् सजावट की रेखाओ से ।

भूति—सजावट, राख की लकीरें । यहाँ पर विन्ध्य पर्वत की तलहटी मे अनेक धाराओ मे प्रवाहित होने वाली नर्मदा की गज के शरीर की सजावट की रेखाओ से उपमा अत्युत्तम बन पडी है।

श्लोक २०—तिक्त—सुगन्धित, तीक्ष्ण, कड़वा । मदोन्मत्तहाथियो के गण्डस्थलों से जो पानी निकलता है उसे "मदवारि" कहते है ।

वान्तवृष्टिः—वान्ता वृष्टय येनस अर्थात् जो जल की वर्षा कर चुका है। इस श्लोक मे एक अन्य ध्वनि भी निकलती है । अर्थात् जब बात का प्रकोप हो तब पहले वमन कराना चाहिये उसके पश्चात् हल्के तिक्त और कसाय जल का प्रयोग करना चाहिये । आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ वाग्भट मे भी ऐसा लिखा है। इससे प्रतीत होता है कि कालिदास आयुर्वेद का भी पूर्ण ज्ञान रखते थे ।

अन्त सारम्—अन्त सार बल यस्य तम् अर्थात् अन्दर बल धारण करने वाला ।

श्लोक २१—नीपम्—कदम्ब का फूल । वर्षा ऋतु मे वर्षा की प्रथम बूंदो से विकसित होने वाला फूल ।

श्लोक २२—मल्लिनाथ इस श्लोक को प्रक्षिप्त मानते है। इसमे चातको बलाकाओ का वर्णन है और सिद्धो को कामुक बताया गया है ।

श्लोक २३—मत्प्रियार्थम्—इसके दो अर्थ हो सकते है—(१) मेरे कार्य की सिद्धि के लिए (२) मेरी प्रिया के प्राणो की रक्षा के लिए ।

श्लोक २४—दशार्णा —विल्सन महोदय इसे ग्रीक लेखको का दोसरेने बताते है । आधुनिक छत्तीसगढ ही यह प्रदेश प्रतीत होता है । यहाँ से दशार्ण नाम की एक नदी भी निकलती है यह मालवा का पूर्वीय भाग है। इस प्रदेश की मुख्य नदी वेत्रवती है।

श्लोक २५—विदिशा मालवा प्रान्त मे स्थित भीलसा नगरी को ही विदिशा कहते है। यह वेत्रवती नदी के किनारे पर बसी हुई है।

श्लोक २६—नीचै राख्यम्—नीचै इति आख्या यस्य अर्थात् जो पर्वत "नीचै." इस नाम से पुकारा जाता हो यह विदिशा के समीप किसी छोटे पहाड़ का नाम प्रतीत होता है ।

पण्यस्त्री—वेश्यायें ।

श्लोक २७—पुष्पलावी —पुष्पाणि लुनन्ति इति पुष्पलाव्य । फूल चुनने वाली स्त्रियाँ अर्थात् मालिनें ।

श्लोक २८—वक्र—उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान करने वाले मेघ को यक्ष कहता है कि हे मेघ ! यद्यपि तुम्हारा रास्ता टेढा है अर्थात् उज्जयिनी नगरी तुम्हारे मार्ग मे नही आयेगी फिर भी तुम उस दिव्य नगरी के दर्शन अवश्य करना नही तो सदा के लिये पछताना पड़ेगा। इससे स्पष्ट प्रकट है कि कालिदास उज्जयिनी के रहने वाले थे अथवा वहाँ पर्याप्त समय तक रहे होगे। वैसे भी उन्होने मालवा देश की कई छोटी छोटी नदियो का वर्णन किया है। इससे भी यही निश्चय होता है कि कवि का मालवा से विशेष सम्बन्ध था अन्यथा मेघ से वहाँ जाने का ऐसा आग्रह न किया जाता।

उज्जयिन्या—यह नगरी शिप्रा नदी के तट पर स्थित थी और अवन्ति देश की राजधानी थी। इसके दूसरे नाम विशाला, अवन्तिका, अवन्ती और पुष्पकरण्डी हैं। प्राचीन काल से ही इसकी बहुत प्रसिद्धि रही है। इसका नाम सप्ततीर्थों मे आता है, जैसे —

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका।
पुरी द्वारवती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः॥

श्लोक २९—निर्विन्ध्याया—निष्क्रान्ता विन्ध्यात् अर्थात् जो विन्ध्य पर्वत से निकली हो। यह पार्वती और शिप्रो के बीच कोई छोटी नदी प्रतीत होती है जो विन्ध्य पर्वत से निकल कर उत्तर दिशा की ओर बहती होगी।

श्लोक ३०—वेणीभूत—ग्रीष्म ऋतु मे नदियो की धारायें सूख कर पतली हो जाती हैं अत नदी प्रोषितभर्तृका की एक वेणी के समान दिखाई देती है। वियोग मे जिन स्त्रियो के पति बाहर गये हुए होते है वे एक वेणी धारण करती है। दुष्यन्त से तिरस्कृत होकर वियोग सन्तप्त शकुन्तला का वर्णन करते हुए कालिदास ने शाकुन्तल नाटक मे लिखा है 'नियम क्षाममुखी धृतैकवेणि"।

सौभाग्यम्—सुभगस्यभाव. सौभाग्यम्। सिन्धु नदी मेघ के विरह मे क्षीणकाय और पीली पड गई है अत मेघ का सौभाग्य है कि उसे ऐसी पतिव्रता पत्नी मिली है।

श्लोक ३१—अवन्तीन्—इस देश का विस्तार दक्षिण मे नर्मदा नदी तक, पश्चिम मे माही और उत्तर मे चर्मण्वती तक था। यह देश मालवा का पूर्वीय भाग था। इसका विस्तार ६०० मील था।

उदयन—इसका जन्म चन्द्र वश मे हुआ था। इसके पिता का नाम सहस्रानीक था। यह वत्सदेश का अधिपति था। कौशाम्बी इसकी राजधानी थी। विद्वानो का विचार है कि कौशाम्बी को ही आजकल कोसम कहते है जो इलाहाबाद के समीप यमुना के तट पर बसी हुई है।

कथा—गुणाढ्य ने अपनी बृहत्कथा मे और महाकवि भास ने अपने स्वप्न नाटक में उदयन का वर्णन किया है। इसकी कथा इस प्रकार है—उज्जयिनी के राज प्रद्योत ने उदयन को कैद कर लिया। उसे बन्दी बना कर अपनी पुत्री वासवदत्ता को वीणा सिखाने के लिए नियुक्त कर दिया। वीणा वादन सिखाते सिखाते उदयन और

वासवदत्ता प्रेमपाश मे बँध गये और अपने सुयोग्य मन्त्री यौगन्धरायण की सहायता से उदयन वासवदत्ता को लेकर भाग गया।

विशाला—यह उज्जयिनी नगरी का दूसरा नाम है जो उसके वैभव को प्रकट करता है।

स्वल्पीभूते—

'ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक—
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥ ९/२० (गीता)
ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं।
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोक विशन्ति ॥ ९/२१ (गीता)

गीता के इन श्लोको के अनुसार पवित्र आत्मायें अपने शुभ कर्मो का फल भोगकर फिर मर्त्य लोक में जन्म धारण करती है। इस श्लोक के शास्त्रीय भावों से कवि का वेदान्त आदि शास्त्रों का गम्भीर ज्ञान प्रकट होता है।

हृतमिव—यहाँ कवि यह कहना चाहता है कि उज्जयिनी नगरी इतनी समृद्ध, वैभवशालिनी, पुण्य और सुख निधान थी कि उसको स्वर्ग का भाग मानना ही उचित है "स्वल्पीभूते" से लेकर "एकम्" तक अर्थात् श्लोक की अन्तिम दो पक्तियो मे कवि ने इस भाव को प्रकट किया है कि कुछ पुण्य आत्मायें अपने शुभ कर्मों के कारण स्वर्ग को गईं। वहाँ अभी उनके कर्मों के फलों का भोग समाप्त नही हुआ था कि उन्हे मर्त्य लोक मे आना पड़ा। उनके शुभ कर्मों का फल तो उन्हे अवश्य मिलना ही था अत. विधाता को इस पृथ्वी पर स्वर्ग के एक खण्ड की रचना करनी पड़ी। वही स्वर्ग का एक भाग उज्जयिनी है।

श्लोक ३२—शिप्रा—यह एक प्रसिद्ध नदी है। उज्जयिनी नगरी इसी नदी के किनारे बसी हुई है।

प्रार्थना चाटुकार—रतिक्रीडा मे प्रथम बार नायिका बहुत थक जाती है। उस समय प्रेमी पुन सुरत के लिए अनेक मीठी मीठी बाते बनाकर उसे तैयार करता है और भोली नायिका उसके चाटुकार वचनों से (खुशामद) पुन प्रसन्न हो जाती है और प्रेमी की कामेच्छा पूर्ण करती है।

श्लोक ३३—हार—मोतियो की माला। तार—चमकीले अथवा बड़े बड़े। तरलगुटिकान्—चमकते हुए हारों के बीच मे जड़ी हुई मणियाँ। गुटिका—बहुमूल्य बडी मणि।

शष्पश्यामान्—कवियों की वर्णन शैली मे मणियों और हरी घास की समता बताई जाती हैं।

विपणिरचितान्—दुकानों अथवा बाजारो में सजाये हुए।

तोयमात्र—समुद्र को रत्नो की खान कहते हैं। सस्कृत मे समुद्र को रत्नाकर भी कहते हैं। उज्जयिनी की अतुल धन राशि का वर्णन करते हुए कवि कहना चाहता

है कि उज्जयिनी में इतने बड़े बडे रत्नो के ढेर लगे हुए थे कि समुद्र मे रत्न कहाँ रह सकते थे। वहाँ तो पानी ही शेष था।

श्लोक ३४–प्रद्योतस्य—महाकवि भास तथा टीकाकारो के मत मे प्रद्योत उज्जयिनी के अधिपति चण्डमहासेन का ही नाम है किन्तु गुणाढ्य ऐसा नही मानता। वह कहता है कि यह प्रद्योत पद्मावती के पिता मगधराज का ही नाम है–परिपन्थी च तत्रैक प्रद्योतो मगधेश्वर । तत्तस्य कन्यका रत्न मस्ति पद्मावतीति।

हैमम्—सुनहरी। यह शब्द तालवृक्षो के सुनहरी पुष्पो की ओर सकेत करता है।

तालद्रुमवनम्—प्रद्योत आखेट के बड़े शौकीन थे। उनकी मृगया के लिए ही यह वन निश्चित किया हुआ प्रतीत होता है।

नलगिरिः—यह महासेन एक मदोन्मत्त हाथी का नाम है। कथा सरित्सागर मे इसे नडगिरि कहा है।

श्लोक ३५—केश संस्कारधूपै —केशाना संस्कार। केशो को धूप देकर सुवासित करना और उन्हे शुष्क करना।

बन्धुप्रीत्या—मेघो को देखकर मयूर मस्ती मे आकर नृत्य करने लगते है। इसी भाव को दृष्टि मे रखकर कवि ने मेघ और मोर मे बन्धुता दिखलाई है। यह बडी सुन्दर कल्पना है।

पादराग—आर्यावर्त मे भारतीय महिलायें उत्सवो के समय अपने हाथ और पैरो मे मेहदी आदि लगती हैं। इसी हिन्दु प्रथा का कवि ने यहाँ सकेत किया है।

श्लोक ३६—कण्ठच्छवि—कण्ठस्य छविरिव छविर्यस्य। कण्ठ की छवि के समान छविवाला। एक पौराणिक कथा के अनुसार देवताओ ने समुद्र का मन्थन किया था। उस समय समुद्र से १४ रत्न निकने थे। उनमे हलाहल विष भी था। तेरह रत्नो को तो देवताओ ने बाँट लिया। इस हलाहल विष को किसी ने भी स्वीकार नहीं किया। शिवजी ने इसे लेना स्वीकार किया। उन्होने अमृत के निधि चन्द्रमा को अपने ललाट पर धारण करके हलाहल विष को पी लिया। उस तीव्र विष के प्रभाव से शिवजी का कण्ठ नीला पड़ गया। तब से शिवजी को नीलकण्ठ या "कण्ठेकाल" कहते हैं।

गुणैः—शिवजी के सेवको को गण अथवा प्रमथ कहते हैं।

सादरम्—शिवजी की अष्टमूर्तियो मे आकाश भी एक है। महाकवि कालिदास ने शाकुन्तल नाटक के प्रथम श्लोक मे शिवजी की आठ मूर्तियो का बडा सुन्दर वर्णन किया है। वहाँ आकाश को भी शिव की एक मूर्ति बताया है। वहाँ नीले मेघो के छा जाने पर गणो को आकाश मे शिवजी का भ्रम होना स्वाभाविक है। अत वे बादल को आदर की दृष्टि से देखते हैं।

गन्धवत्या —उज्जयिनी के समीप बहने वाली एक छोटी सी नदी का नाम

गन्धवती है ।

तोयक्रीड़ा—जल क्रीडा मे निमग्न वनिताओ के स्नान से अर्थात् स्नान की सामग्री से ।

श्लोक ३७—जलधर—पानी से भरा हुआ बादल । इस शब्द से यहाँ यह ध्वनि निकलती है कि जलपूर्ण मेघ का आकार महान् होगा तभी वह शिवजी की सायंकालीन पूजा के समय अपनी भारी गर्जन से नगाड़े का काम दे सकेगा ।

महाकाल—उज्जयिनी मे शिवाजी का एक विशाल मन्दिर है । उसमे स्थापित शिवजी की मूर्ति को महाकाल कहते है । यह बारह ज्योतिर्लिगो मे से एक है । शिव पुराण मे इन बारह ज्योतिर्लिगो का वर्णन इस प्रकार किया है —

> **सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् ।**
> **उज्जयिन्यां महाकाल मोकार परमेश्वरम् ।**
> **केदार हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशंकरम् ।**
> **वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे ।**
> **वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने ।**
> **सेतुबन्धे च रामेश घुमेशं च शिवालये ।**
> **एतेषां दर्शनादेव पातक नैव तिष्ठति ॥**

संध्या—पुराणों मे प्रात , मध्याह्न, सायंकाल—इस प्रकार त्रिकाल सन्ध्या का वर्णन आता है । अत सायकालीन नगाडे का काम देने को कहा गया है ।

श्लोक ३८—पादन्यासै —पादाना न्यासै अर्थात् पादप्रक्षेप । इस शब्द से देशिक नाच का सकेत मिलता है । कालिदास तो सकलकलाकोविद थे । वे शास्त्रीय सगीत, नृत्य वाद्य से भी भलीभाँति परिचित थे । देशिक नाच का लक्षण करते हुए शास्त्रकार कहते हैं —

> **खंग कंदुक वस्त्रादि दंडिका चामर स्रज. ।**
> **वीणां च धृत्वा यत्कुर्यु नृत्य तद् देशिक भवेत् ॥**

चामरैः—हरिण की पूँछ के बालो, अथवा मोरो के पँचो से बनाये जाते है । ये प्राय चाँदी के दस्ते से जड़े हुए होते है । देवताओ, राजा-महाराजाओ आदि से मक्खियाँ हटाने के लिए इनका प्रयोग होता है । हिन्दी मे इसे चौरी भी कहते है ।

वेश्याः—वेशेभवा वेश्याः अथवा वेशेन शोभते इति वेश्या । सुन्दर वस्त्र आदि पहनकर और बनावटी सजावट से लोगो को अपनी ओर आकृष्ट करने वाली स्त्रियाँ यहाँ देवदासियो से अभिप्राय है । देवदासियो की कुप्रथा जगन्नाथपुरी के मन्दिर मे अब भी वर्तमान है । आचार की दृष्टि से यह प्रथा जाति के लिए अत्यन्त हानिकारक है भारत मे यह भी प्रथा थी कि देवताओं की पूजा के समय वेश्याओ को नाचने के लिए बुलाया जाता था ।

मधुकर श्रणि दीर्घान्—मधुकर श्रेणिवत् दीर्घा तान्। संस्कृत के विद्वान स्त्रियो के कुटिल कटाक्षो को भ्रमरो की पक्तियो से उपमा देते है।

श्लोक ३९—पश्चात्—सन्ध्याकालीन पूजा के बाद। उच्चैर्भुजतरुवनम्—यहाँ भाव यह है कि नाच के समय शिवजी अपनी भुजाओ को ऊपर उठाते है अत उच्चै शब्द का प्रयोग कवि ने किया है। शिवजी की कभी दस कभी बीस भुजाये बताई जाती है अत वन शब्द का प्रयोग उचित ही किया है।

नृत्त—ताल और लय के साथ किये जाने वाले नाचको को नृत्त कहते हैं और शारीरिक चेष्टाओ द्वारा मानसिक भावो के साथ किये जाने वाले नाच को नृत्य कहते है। दण्डी ने दशरूपक मे ऐसा ही लक्षण किया है। जैसे —

भावाश्रय तु नृत्य स्यात नृत्त ताललयान्वितम्।

शिवजी का ताण्डव नाच बडा भयकर होता है तथा डमरू की ताल पर चलता है।

पशुपते—जीवो अथवा गणो (प्रमथो) का स्वामी होने के कारण शिवजी को पशुपति कहते है।

आर्द्रनागाजिनेच्छाम्—पौराणिक कथा के अनुसार गजासुर को दिव्यशक्ति प्राप्त हो गई। वह देवताओ को परास्त करने और मुनियो को नष्ट करने मे समर्थ हो गया। अत देवताओ और मुनियो ने वाराणसी मे शिवजी के मन्दिर मे शरण ली। शरण मे आये हुए देवताओ और मुनियो की रक्षा का भार अपने ऊपर लेकर भक्त-वत्सल शिवजी ने गजासुर का वध कर डाला और उसके रुधिर से लथपथ उसकी खाल को अपने शरीर पर पहन लिया। मेघ श्याम है। सायकाल के सूर्य से वह लाल भी हो जाता है। इस तरह वह गजासुर की खाल के समान दिखाई देता है। शिवजी ताण्डव नृत्य के आरम्भ करते समय गजचर्म धारण करते है। इसलिए यक्ष मेघ को शिवजी और पार्वतीजी की यह सेवा करने की प्रेरणा करता है शान्तोद्वेग०—यहाँ उद्वेग का अर्थ घबराहट है। पार्वती नारी है अत गजचर्म को देखकर गजासुर के वध की याद करके व्याकुल हो जाती है परन्तु मेघ को देखकर उनका उद्वेग शान्त हो जाता है।

श्लोक ४०—योषिताम्—योषित् शब्द का अर्थ स्त्री होता है किन्तु यहाँ अभि-सारिकाओ से तात्पर्य है। विश्वनाथ पञ्चानन ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ साहित्य दर्पण मे अभिसारिकाओं का लक्षण लिखा है।

अभिसारयते कान्तं या मन्मथ व शम्वदा।
स्वय वाऽभिसरत्येषाधीरै रुक्ताऽभिसारिका॥

अर्थात् वे स्त्रियाँ अभिसारिकायें कहलाती है जो अत्यन्त कामातुर होने के कारण नीले वस्त्र पहनकर रात्रि के समय निश्चित किये हुए स्थान पर अपने प्रेमियो से रमण करने जाती हैं। अमरसिंह ने अपने प्रसिद्ध कोष "अमर कोष" मे लिखा है—

कान्तार्थिनी तु या याति संकेतं साभिसारिका । अमरकोष के य शब्द भी इसी भाव को प्रकट करते है ।

सूचीभेद्यै —गाढ अन्धकार । अभिसारिकाये घने अन्धकार मे ही अपने प्रेमियों के पास जा सकती है ।

श्लोक ४१—बलभौ—छज्जा अथवा मकान का ऊपर का भाग । सुप्त पारावतायाम्—सस्कृत के कवियो ने अपने ग्रन्थो मे बलभियो मे कबूतरो के सोने का वर्णन बहुत किया है । जैसा कि मालविकाग्निमित्र नाटक मे लिखा है—सौधान्यत्यर्थतापाद् वलभि परिचयद्वेषि पारावतानि । विक्रमोर्वशी मे भी इसी प्रकार का वर्णन मिलता है । खिन्नविद्युत्कलत्र —कविजन बिजली को मेघ की पत्नी मानते है क्योंकि इनका गहरा साहचर्य है । सस्कृत के कवि ने इसी भाव को प्रकट करते हुए कहा है—

शशिना सहयाति कौमुदी सहमेघेन तडिद्विलीयते ।

श्लोक ४२—खण्डिता—विश्वनाथ पञ्चानन अपने ग्रन्थ साहित्य दर्पण में खण्डिता नायिका का लक्षण लिखते हुए कहते है —

पार्श्वमेति प्रियो यस्या अन्य सम्भोग चिन्हितः
सा खन्डितेति कथिता धीरैरीर्ष्याकषायिता ।।

अर्थात् जिस स्त्री का प्रिय पति 'किसी दूसरी स्त्री से सम्भोग करके नाखून और दाँतो के चिह्नो से युक्त, नीद मे भरा हुआ पास आता है वह खण्डिता नायिका कहलाती है कालिदास के प्रसिद्ध काव्य रघुवंश की टीका करते हुए वल्लभ ने जो पद्य उद्धृत किया है वह भी इसी भाव को प्रकट करता है । जैसे.—

निद्राकषाय मुकुलीकृतताम्रनेत्रो, नारी नखव्रण विशेष विचित्र तांगः ।
यस्याः कुतोऽपि गृयमेति पतिः प्रभाते सा खण्डितेति कथिता कविभिः पुराणैः ।।

श्लोक ४३—गम्भीरा.. इस शब्द के दो अर्थ हो सकते है—(१) मालवा देश मे बहने वाली एक छोटी-सी नदी (२) उच्चकुल मे उत्पन्न होने के कारण गम्भीर स्वभाव की नायिका । यह अर्थ व्यजनावृत्ति के द्वारा प्रकट होता है । चेतसीव प्रसन्ने—गम्भीरा नदी का नीर इतना निर्मल है जैसे गम्भीर स्वभाव की नायिका का मन प्रसन्न होता है । प्रसन्न शब्द का अर्थ भी स्वच्छ, निर्मल होता है । शफर—यह एक प्रकार की चमकीली, श्वेत और छोटे आकार की मछली होती है जो जल मे बडी तीव्र गति से दौडती है । अत नेत्रो की चचलता से इसकी उपमा बहुत ही सुन्दर और स्वाभाविक-सी प्रतीत होती है ।

श्लोक ४४—लम्बमानस्य—इसके दो अर्थ हो सकते हैं । (१) रति सुख प्राप्त करने के कारण विलम्ब करने वाला (२) रति सुख प्राप्त करने के लिए नदी पर झुका हुआ अथवा लटका हुआ । मेघ मे जब पानी होता है तब वह भारी होता है और वह लटका हुआ दिखाई देता है ।

श्लोक ४५—त्वन्निष्यन्द—वर्षा की बूँदे जब पृथ्वी पर पडती है तब पृथ्वी से भीगी -भीनी सुगन्ध निकलती है और उस गन्ध से मिलकर वायु भी सुगन्धित हो जाती है। उच्छ्वसित—फूली हुई, भाप छोडती हुई। देवपूर्वं गिरिम् —देवपूर्वक गिरि अर्थात् देवगिरि। सस्कृत के कवियों ने इस प्रकार शब्दो का प्रयोग कई स्थानो मे किया है। जैसे माघ कवि के प्रसिद्ध काव्य शिशुपाल वध मे आता है —"हिरण्यपूर्वं कशिपुं प्रचक्षते" इसी प्रकार रघुवंश मे भी दशरथ के लिए आता है=दशपूर्वरथ यमाख्यया ।। देवगिरि पर्वत के सम्बन्ध मे विल्सन महोदय लिखते हैं कि यह स्थान आजकल का देवगढ़ है जो चम्बल के दक्षिण मे, मालवा प्रान्त के बीच मे और झाँसी के दक्षिण पश्चिम मे स्थित है। अलकापुरी को जाते हुए मेघ के मार्ग मे यह स्थान आता है।

श्लोक—४६—स्कन्दम्—शिवजी के पुत्र कुमार कार्तिकेय। यह नाम क्यो पडा—इसका कारण महाभारत मे इस प्रकार है—

स्कन्नत्वात् स्कन्दता प्राप्तो गुहावासाद् गुह्योऽभवत्। हिन्दू लोग इसे अपना युद्ध देवता मानते है पर वाण नामक मोर इनकी सवारी है। इनके एक हाथ मे धनुष और दूसरे में बाण। इनकी धर्मपत्नी का नाम कौमारी, सेना अथवा देव सेना है। नियलवसतिम्—पौराणिक कथा के अनुसार कुमार कार्तिकेय तारकासुर का वध करके देवताओ की प्रार्थना पर अपने माता-पिता के साथ देवगिर पर रहने लगे। व्योमगगा —आकाश गगा। ऐसा माना जाता है कि भगवती भागीरथी तीनो लोको को अपने पुण्य जल से शान्त करती है और इसके तीन नाम भी इसीलिए है। जैसे :—

क्षितौ तारयते मर्त्यान् नागांस्तारयतेऽप्यधः।
दिवितारयते देवास्तेन त्रिपथगा स्मृता ।।

आकाश मे गगा को मन्दाकिनी कहते हैं, भूमण्डल पर भागीरथी और पाताल मे भोगावती या पाताल गगा कहते हैं। नवशशिभृता—शिवजी चन्द्रमा को अपने माथे पर धारण करते हैं। इसलिए इन्हें चन्द्रमौलि भी कहते है। चन्द्र अमृत से पूर्ण है अत शिवजी पर विष का प्रभाव नही होता। वासवीनाम्—पौराणिक कथा के अनुसार तारकासुर ने तपस्या करके ऐसी दिव्य शक्ति प्राप्त कर ली थी कि उसे सात दिन के बालक के अतिरिक्त कोई नही मार सकता था। अत उसे मारने के लिए ही कुमार कार्तिकेय का जन्म हुआ। हुतवहमुखे-अग्नि मे जो आहुति डाली जाती है वह उसको ही परमाणु रूप मे परिणत कर अत्यन्त सूक्ष्म बनाकर समस्त ब्रह्माण्ड मे फैलने योग्य बना देती है। अत. उसे देवताओ का मख बताया गया है। भगवान् मनु ने भी मनुस्मृति मे लिखा है —

"अग्नौ प्रास्ता हुतिः सम्यग् आदित्यमुपतिष्ठते"

अग्नि से कुमार की उत्पत्ति का वर्णण कालिदास ने कुमार सम्भव मे किया है। तारकासुर को नष्ट करने के लिये देवताओ ने शिवजी और पार्वती का विवाह एव

सगम करा दिया परन्तु बच्चा होने मे विलम्ब हो गया । अत. देवताओ ने कपोत के रूप मे अग्नि देव को शिवजी के पास भेजा । अग्नि ने शिवजी के वीर्य को अपने मुख मे धारण कर लिया परन्तु उसे सह न सका । उसने गगा मे और गगा ने सरकण्डो मे फेक दिया । वहाँ स्कन्द का जन्म हुआ । जब कुमार का जन्म हुआ तब छ कृतिकाओ ने उसे पाला । अत इसे कार्तिकेय अथवा षाण्मातुर कहा जाता है । सरकण्डो मे पैदा होने के कारण स्कन्द को शरबण भव भी कहते है । कार्तिकेय ने सात दिन की अवस्था मे ही तारकासुर का वध कर दिया था ।

श्लोक—४७—ज्योति०-मयूर के पेचो के बाहर के भाग गोल गोल होते है और उन पर अनेक रगो की रेखाये पडी होती है धौतापांगम्—मयूर का एक नाम शुल्कापाग भी है । मयूर के नेत्रो के किनारे श्वेत होते है । पुत्र का वाहन होने के कारण शिवजी मयूर को स्नेह की दृष्टि से देखते है ।

श्लोक-४८—शरवणभवम्—सरकण्डो मे जन्म होने के कारण कुमार कार्तिकेय को शरवणभव कहते है ।

सुरभितनया—पुराणो मे कथा आती है कि रन्तिदेव ने गवालम्भ यज्ञ मे इतनी गौओ की हत्या की कि उनके रुधिर से नदी प्रवाहित हो गई और उसका नाम "चर्मण्वती" हो गया । रन्तिदेव—यह भरत वश मे उत्पन्न हुए थे और सस्कृति के छोटे पुत्र थे । महाभारत तथा पुराणो मे इनकी धार्मिकता, श्रीसम्पन्नता, साधुता आदि शुभ गुणो का विस्तार से वर्णन पाया जाता है ।

श्लोक—४९—शार्गिण—शृगस्य विकार शार्गम् । तदस्य अस्तीति शार्गी तस्य । सीग के धनुष को धारण करने वाला अर्थात् विष्णु । विष्णु का नील वर्ण है । दूरभावात्—नदी तो भूमण्डल पर प्रवाहित होती है और आकाश मे विचरण करने वाले जीव ऊपर व्योम मे है । दोनो मे बड़ा फासला है । दूर से सब वस्तुये अपने आकार से छोटी दिखाई देती है । अत वर्षा के पानी के कारण यद्यपि नदी का विस्तार बडा है फिर भी वह क्षीणकाय दिखाई देती है । मुक्तागुणनिव—कवि यहाँ पर नदी की धारा की मौक्तिकमाला से बराबरी दिखाना चाहता है । माला के प्रत्येक सूत्र मे श्वेत मोती पिरोये हुए होते है । मध्य मे एक मोटी सी इन्द्र नील मणि पिरो दी जाती है । उस पर झुका हुआ नीले रग का मेघ इन्द्र नील मणि के समान दिखाई देता है ।

श्लोक—५०—कुन्द क्षेपा०—कुन्दाना क्षेपा, तान् अनुगच्छन्ति इति कुन्द क्षेपानुगा, तथा भूता मधुकरा, तेषा श्रिय मुष्णान्ति इति, तथा भूतानाम् । कुन्द का पुष्प श्वेत होता है । उसके मध्य मे काला भ्रमर जब बैठ जाता है तब वह मध्य मे काले और चारो तरफ से श्वेत नेत्र के डेले के समान प्रतीत होती है । दशपुर—विल्सन महोदय कहते हैं कि यह नगर आजकल का रन्तिपुर ही था । यह स्थान चम्बल के कुछ दक्षिण मे, उज्जैन और थानेसर की सीध मे स्थित है । श्री आप्टे के विचार से यह

देने वाली। रेवती०--भागवत पुराण मे लिखा है कि यह राजा रेवत की पुत्री थी और ब्रह्मा जी के कहने से इसका विवाह बलराम के साथ हुआ था। वह गिलासो मे शराब भरकर और उसे अपनी मदभरी आखो से प्रेम से देखकर अपने पति बलराम को पिलाया करती थी। अत मदिरा मे रेवती के नेत्रो का प्रतिबिम्ब पडता था। इतने प्रेम से प्रिया द्वारा दी गई मदिरा को छोडना बलराम के लिए अति कठिन था फिर भी उसने व्रत का पालन करने के लिए उसे छोड दिया। बन्धु प्रीत्या--महाभारत के युद्ध मे कुरुक्षेत्र मे दोनो तरफ सगे सम्बन्धी और इष्टजन थे अत बलराम तटस्थ ही रहे। लागली--लागल अस्य अस्तीति। यह बलराम का नाम है। लागल शब्द का अर्थ है "हल"। बलराम इसे सदा अपने पास रखते थे अत उन्हे हलधर भी कहते है। वे अपने हल के फाले से शत्रुओ को मारते थे। एक दिन मदिरा की मस्ती मे उन्होने यमुना को अपने पास आने की आज्ञा दी जिससे वे स्नान कर सके परन्तु यमुना ने उनके आदेश की अवहेलना की और नही आयी। कुपित होकर बलराम ने अपने हल के फाले से यमुना को खीचना आरम्भ किया। दु खित होकर यमुना ने मनुष्य रूप धारण कर और बलराम के पास आकर अपने अपराध की क्षमा माँगी। इस प्रकार कालिन्दी के मान मर्दन करने के कारण बलराम को "कालिन्दी भेदन" भी कहते है। कही बलराम को शेषनाग का अवतार माना गया है और कही इन्हे विष्णु का अवतार माना गया है। ये देवकी के सातवे पुत्र थे किन्तु रोहिणी के गर्भ मे बदल दिये गए थे। बचपन मे ही इन्होने धेनुक और प्रलम्ब राक्षसो को मारा था। भीम और दुर्योधन ने इन्ही से गदा युद्ध सीखा था। या सिषेवे--जिन जलों का सेवन किया था। एक कथा के अनुसार एक वार बलराम नैमिषारण्य मे किसी सत्र मे सम्मिलित हुए। वहाँ सब लोगो ने उनका आदर किया किन्तु एक सूत ने उनकी उपेक्षा की और उनका मान न किया। क्रोध मे आकर बलराम ने उसका वध कर डाला। अब उन्हे ब्रह्महत्या का पाप लग गया। इसके प्रायश्चित के लिए उन्हे पुण्य तीर्थों का भ्रमण करना पडा। तीर्थाटन करते हुए वे सरस्वती नदी के तट पर विराजमान हुए, और उसके पवित्र जल से स्नान करके अपने को शुद्ध किया। सारस्वतीनाम्—सरस्वती—इस नदी का वर्णन वेदो मे और धर्मशास्त्र मे आया है। ऐसा माना जाता है कि अब यह नदी मरुभूमि मे, कही लुप्त हो गई है। कुछ विद्वानो का यह भी विश्वास है कि प्रयाग मे गगा यमुना सरस्वती—इन तीन नदियो के सगम मे प्रयाग मे वही सरस्वती नदी गगा यमुना से मिलती है। इसे कुरुक्षेत्र मे विशेष रूप से पवित्र माना गया है। जैसा कि कहा है :—

गगा कनखले पुण्या कुरुक्षेत्रे सरस्वती।
ग्रामेवा यदि वाऽरण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा।।

श्लोक ५३—कनखल—हरिद्वार के पास यह एक छोटा सा शहर है और प्राचीन समय से हिन्दुओं का एक पवित्र तीर्थ माना जाता है। मृतको के पिण्डदान मे

विश्वास करने वाले लोग पिण्डदान करने वहाँ जाते है। स्कन्द पुराण मे इसकी प्र्शसा मे लिखा है —

खल को नात्रमुक्तिं वै भजते तत्र मज्जनात् ।
अतःकनखलं तीर्थं नाम्ना चक्रुर्मुनीश्वराः ।।

हरिवश पुराण मे लिखा है—गगाद्वार कनखल सोमो वै तत्र सस्थित । एक दूसरी पुस्तक मे लिखा है—स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते । मल्लिनाथ कनखल को पहाड मानते है क्योकि महाभारत मे लिखा है—एते कनखला राजन् ऋषीणा दयिता नगा (वन पर्व १३५-५) कनखल के आसपास पहाड तो है ही । हो सकता है जब महाभारत लिखा गया हो उस समय यह स्थान पहाड पर ही स्थित हो । अत मल्लिनाथ का विचार युक्ति युक्त ही प्रतीत होता है । महाभारत मे इसका वर्णन आने से यह तो स्पष्ट है कि यह स्थान बहुत प्राचीन है और गगा के किनारे स्थित होने के कारण इसकी पवित्रता भी है ।

जन्हो कन्याम्—जिस समय भगीरथ बड़े भारी प्रयत्नो से गगा को इस भूमण्डल पर लाये उस समय गगा के मार्ग मे जन्हुऋषि का आश्रम आया । वह गंगा के प्रवाह मे बह गया । ऋषि ने कुपित होकर उसे पी लिया । भगीरथ ने जब बहुत अनुनय विनय की तब ऋषि ने उसे अपने कान से निकाल दिया तब से गगा जन्हु पुत्री कहलाती हैं । सगरतनय०—सगर सूर्यवशी राजा थे । इनकी विमाता ने इनकी गर्भवती माता को जहर दिया था । अत ये सगर कहलाते है । इन्होने जब १००वाँ अश्व मेघ यज्ञ किया था तब इन्द्र ने अपनी पदवी छिन जाने के डर से यज्ञ के घोड़े को चुरा लिया और पाताल मे कपिल मुनि के पास बाँध दिया । सगर के ६०००० पुत्र घोड़े की खोज मे वहाँ पहुँचे । उन्होने कपिल को ही चोर समझा । अत उन्होने कपिल मुनि का अपमान किया । ऋषि ने कुपित होकर सबको भस्म कर दिया । सगर का पोता अशुमान घोडे को तो ले आया परन्तु ये सब भाई सौ वर्ष तक इसी अवस्था मे पड़े रहे क्योकि इनका उद्धार गगा के पवित्र जल के छूने से ही हो सकता था । अन्त मे भगीरथ ने बड़ा घोर तप किया और गंगा को इस पृथ्वी पर लाने और पाताल ले जाने मे उन्हे सफलता मिली । अब इन भस्म हुए सभी सगर के पुत्रो का उद्धार हुआ । भगीरथ के परिश्रम के कारण ही गगा का नाम भागीरथी पड़ा । **गौरी वक्त्र०**—गौरी अर्थात् पार्वती की गगा सौत मानी जाती है । कहते है कि जब भगीरथ गगा को पृथ्वी पर लाने का विचार करने लगे तब ब्रह्माजी की सलाह से भगीरथ ने शिवजी से प्रार्थना की कि भगवन् ! आपका नाम शंकर है अर्थात् आप विश्व का कल्याण करने वाले है । आप गगा को अपने सिर पर धारण कर लें नहीं तो गगा के तीव्र प्रवाह मे सारा विश्व बह जायेगा । शिवजी ने कृपा करके भगीरथ की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और गंगा को अपनी जटाओ मे धारण कर लिया । तब से शिव जी गगाधर कहलाते हैं । कवि ने यहाँ गंगा को पार्वती के सौत बनाकर उसके मान पर पार्वती के कोप की

कमनीय कल्पना की है जो बहुत सुन्दर प्रतीत होती है। **इन्दुलग्न**—यहाँ पर चन्द्रमा को शिव जी के मस्तक की चूडामणि बनाया है। गगा की तरगे ही उसके हाथ है। अत अपने हाथो से शिव जी की चूडामणि को पकडकर शिवजी के केशों को पकडती है। प्रौढा नायिकाये इसी प्रकार किया करती है। उधर पार्वती ईर्ष्या से दाँत पीसती रहती है पर विवश होने के कारण कुछ कर नही सकती।

श्लोक—५४—सुरगज —कुछ विद्वानो ने इस शब्द का अर्थ इन्द्र का हाथी ऐरावत किया हैं किन्तु ऐरावत का रग श्वेत बताया गया है अत यह अर्थ यहाँ ठीक नही बैठता। अत सुरगज का अर्थ दिग्गज ही करना उचित होगा। पश्चार्धलम्बी—पिछले हिस्से को ऊपर आकाश मे रखकर नीचे को झुका हुआ। अस्थानोपगत०—गगा और यमुना का सगम प्रयाग मे ही होता है किन्तु यहाँ कनखल मे हो रहा है। इसलिए अस्थान शब्द का प्रयोग किया। अस्थान मे 'अ' भिन्नार्थ वाचक है निषेधात्मक नही।

श्लोक—५५—नाभिगन्धं—कस्तूरी की उत्पत्ति मृग की नाभि से बताई जाती है इसलिए उसे "मृगनाभि" कहते है। त्रिनयन—शिवजी का एक नाम त्र्यम्बक भी है। इससे शिवजी की तीन आँखे सिद्ध होती हैं। उनका बैल नन्दी भी श्वेतरग का है। खेल मे मस्त होकर वह मिट्टी के टीलो को टक्कर लगाता है और उसके शरीर पर काली काली कीचड पड जाती है। इधर हिमालय शुभ्र है और श्याम मेघ उसके शिखरो पर बैठा हुआ है। अतः दोनो मे समानता है।

श्लोक—५६—वायौसरति—हवा के चलने पर सरल वृक्षो की आपस की रगड से अग्नि उत्पन्न हो जाती है यह जगल की अग्नि भारत के बनो मे प्राय लगती देखी जाती है। सरल—देवदारू के समान यह भी एक वृक्ष है जो हिमालय पर पाया जाता है। चमरी—यह एक प्रकार का हरिण होता है। इसके बाल बड़े कोमल होते हैं जिनसे चँवर बनाये जाते है। इनके द्वारा जगल मे आग बहुत जल्दी फैलती है। चमरीमृग हिमालय पर अधिकता से पाये जाते है।

श्लोक—५७—सरम्भोत्पतन रभसा.—यहाँ सरम्भ का अर्थ कोप के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। कालिदास ने रघुवश मे भी इसी प्रकार का प्रयोग किया है। जैसे— 'प्रणिपात प्रतीकार सरम्भो हि महात्मनाम्' **शरभाः**—इस शब्द के अर्थ करने मे टीकाकारो ने भिन्न-भिन्न युक्तिया प्रस्तुत की है। "अष्टापद शरभ सिंहघात" महाभारत के इस प्रमाण के अनुसार कुछ विद्वान कहते है कि शरभ आठ पैरो का भयानक हिंसक पशु है श्री शङ्कर राम शास्त्री कहते हैं कि हिरण्यकशिपु के वध के पश्चात् नृसिहावतार रूपधारी विष्णु के उत्पात को शान्त करने के लिए शिवजी ने शरभ का रूप धारण किया। मल्लिनाथ इसे मृगविशेष कहते है।

करकाः—ओलें। अवकीर्ण—तितर बितर करना, बिखेरना, नष्ट करना। यहाँ ओलों की घोर बृष्टि करके बिखेरने से तात्पर्य है।

श्लोक ५८—चरणन्यासम्—कुछ विद्वानो का विचार है कि यह हरिद्वार के पास एक छोटी सी पहाडी है जिसे हर की पौडी कहते है। (शिवजी की सीढी) शम्भु रहस्य में इसे श्री चरणन्यास कहा है। यथा—

अव्यक्तं व्यंजया मास शिव श्रीचरणद्वयम्
हिमाद्रौ शांभवादीनां सिद्धये सर्व कर्मणाम्।
दृष्ट्वा श्रीचरणन्यास साधक. स्थितये तनुम
इच्छाधीन शरीरोहि विचरेच्च जगत्त्रयम्॥

विल्सन महोदय कहते है कि देवताओ के चरणन्यास की भावना पूर्व के प्राय. सभी देशो मे पाई जाती है। नेपाल, लका आदि देशो मे इस भावना का प्रचार है। सिद्धै —यहाँ सिद्ध शब्द से देवयोनि विशेष अभिप्रेत नही प्रत्युत यह शब्द उन योगियो के लिए प्रयुक्त हुआ है जो पातञ्जल योग द्वारा सिद्धि प्राप्त करते है। भक्तिनम्र.—देवपूजा मे श्रद्धा और भक्ति की ही प्रधानता होती है कर्म की नही। श्रद्धा का अर्थ है सत्यभाव को धारण करना और भक्ति का अर्थ है सेवाभाव को अपनाना। साधक के लिए ये दोनो आवश्यक है। इनके बिना सकलता नही मिलती। अत यक्ष मेघ को भक्तिभाव से विनम्र होने की प्रेरणा करता है। परीया —चारो तरफ चक्कर लगाना अर्थात प्रदक्षिणा करना। भारत मे पूज्यो की प्रदक्षिणा करना प्राचीन काल से ही प्रचलित है। जैसे मृदग दैव विप्र घृत मधु चतुष्पथम्। प्रदक्षिणानि कुर्वन्ति विज्ञाताश्च बनस्पतिन्॥ प्रदक्षिणा करते समय भक्त बाईं तरफ से दाईं ओर की तरफ इस प्रकार चक्कर लगाता है कि पूज्य वस्तु भक्त की दाईं तरफ ही रहे। स्थिरगण०—स्थिर गणाना पद तस्य प्राप्तये। शिवजी के गण (प्रमथ) अमर माने जाते है। चरणन्यास के दर्शन करने से शिवजी के गणो मे स्थायी रूप से स्थान प्राप्त होता है।

श्लोक ५९—कीचका —बाँस। बाँसो मे जब हवा भर जाती है तब उनमे से मधुर ध्वनि निकलती है मानो वे मिलकर ईश्वर का गुणगान कर रहे हो। कालिदास ने कुमारसम्भव और रघुवश मे भी इस कीचक ध्वनि का वर्णन किया है। वे इसे देवताओ की बाँसुरी बताते है। त्रिपुर विजय—मयदानव ने राक्षसो और उनके राजाओ के प्रयोग के लिए आकाश, अन्तरिक्ष और भूलोक मे सोने चाँदी और लोहे के तीन नगर बनाये थे। इनके नाम विद्युन्माली, रक्ताक्ष और हिरण्याक्ष थे। शिवजी ने इन्हे जीतकर भस्म कर दिया था। किन्नरीभि —किन्नर देवयोनि विशेष। उनकी स्त्रियाँ कुमारसम्भव की टीका करते हुए एक स्थान पर नारायण ने किन्नरो की आकृति का वर्णन इस प्रकार किया है।

अश्वमुखा अनश्वमुखाश्चेति द्विविधा किंनरा। अश्वमुखाः मुखव्यतिरिक्तेषु गात्रेषु नराकृतय। अनश्वमुखास्तु मुखे नराकृतय, इतरत्र पश्वाकृतय। किन्नर देवताओ के गायक माने जाते है। सगीतार्थ :—सगीत मे तीन बातें आवश्यक हैं—गीत

वाद्य और नृत्य । प्रस्तुत श्लोक मे कीचको का शब्द नृत्य है, किन्नरियो का गाना गीत है और मेघ का गर्जन वाद्य है । इस प्रकार सगीत की पूर्णता हो जाती है ।

श्लोक ६०—हसद्वारम्—मान सरोवर जाने के लिए हसो का द्वार। यशोवर्त्म०—इस सम्बन्ध मे दो कथाये प्रचलित है। एक के अनुसार परशुराम जी शिवजी से धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करके जब लौट रहे थे तब अपने लिए रास्ता बनाने के लिए उन्होने एक बाण मारकर क्रौञ्च पर्वत को तोड डाला। उसमे से निकलकर आपने ससार मे अपने अपार बल का परिचय दिया। दूसरी के अनुसार जब परशुराम जी शिबजी के पास धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त कर रहे थे उस समय एक दिन स्कन्द की क्रौञ्च पर्वत के तोडने से फैले हुए यश को सुनकर उनके हृदय मे ईर्ष्या उत्पन्न हुई और एक बाण मारकर क्रौञ्च पर्वत मे छेद कर दिया। इसलिए उनकी कीर्ति सर्वत्र फैल गई। क्रौञ्चरन्ध्र—हरिवश पुराण मे इसे एक पर्वत बताया गया है। बलिनियमन बलि विरोचन के पुत्र और प्रह्लाद के पौत्र थे। ये बड़े बलवान थे और सदा देवताओ को सताया करते थे। देवताओ ने विष्णु से प्रार्थना की और विष्णु ने कश्यप और अदिति के रूप मे वामन का अवतार धारण किया और बलि के पास गए और तीन चरण भूमि का दान माँगा। बलि बडे उदार और दानी थे। अत उन्होने तीन चरण भूमि देना स्वीकार कर लिया। वामन का शरीर बढने लगा। पहले चरण मे समस्त पृथ्वी नाप ली और दूसरे चरण मे समग्रभूलोक और तीसरे चरण के लिए कोई स्थान शेष न रहा। वह बलि के सिर पर रखा गया और उसे पाताल भेज दिया।

श्लोक ६१—दशमुखभुज०—रामायण के उत्तर काण्ड मे आई हुई कथा के अनुसार एक बार रावण ने कैलाश को लका ले जाने का विचार किया और उसे उखेड लिया। उस विशाल कैलाश पर्वत के उखडने पर उसके शिखरो और उसके निवासियो को बडा भारी झटका लगा। पार्वती जी भी भय से कम्पित हो गयी और शिवजी से चिपट गई। शिवजी ने पार्वती जी के भय को दूर करने के लिए कैलाश को पैर से दबाया। रावण दबने लगा किन्तु वह शिव जी का अनन्य भक्त था। उसने सामवेद की १००० शाखाओ का विधि पूर्वक गान करके शिवजी को प्रसन्न किया और अपनी रक्षा की। प्रस्थ-पर्वत की चोटियाँ।

त्रिदशवनिता—कैलाश पर्वत स्फटिक मणि अथवा रजत का बना हुआ है अत वह देवताओ की स्त्रियो के लिए दर्पण का काम देता है। कुमुदविशदै—रात्रि को विकसित होने वाले कमल को कुमुद कहते है। कुमुद श्वेत होते है और चन्द्रमा का प्रकाश भी सफेद होता है। त्र्यम्बकस्य—शिवजी का। इस शब्द की व्युत्पत्ति कई प्रकार से की जाती है। 'त्र्यम्बक यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम्' इस वेदमन्त्र मे भी यह शब्द ईश्वर के लिये आता है। त्रीणि अम्बकानि अस्य इति—अर्थात् तीन आँखो वाला। त्रयाणा लोकाना अम्बक पिता अर्थात् तीनो लोको का पिता। त्रीन् देवान् अम्बते शब्दायते वा अर्थात् जो तीन देवो का वाचक हो। त्रय अकरोकार मकारा:

अम्बाः शब्दा वाचका अस्य अर्थात् अउम् ये तीन अक्षर जिसके वाचक हैं। तिस्रो अम्बा. द्यौ भूमिरापो यस्य अर्थात् आकाश, पृथिवी और जल—तीन जिसकी मातायें है। अट्टहास —जोर से हँसने को अट्टहास कहते हैं। शिवजी का अट्टहास संस्कृत साहित्य मे प्रसिद्ध है। "धवलता वर्ण्यते हास्यकीर्त्यो" इस श्लोक के अनुसार कविजन यश, हास्य, कीर्ति—इन सबका रग शुभ्र बताते हैं। अत शुभ्र हिम से आच्छादित अथवा रजतमय होने से शुभ्र कैलाश की धवलता और शिवजी के अट्टहास का मेल बहुत उपयुक्त है।

श्लोक ६२—स्निग्ध—चिकना, चमकीला। भिन्न–मसला हुआ, मला हुआ, थोडा हुआ, चूरा किया हुआ। अजन—आँखो मे लगाये जाने वाला सुरभा। हलभृत — बलराम का रग गोरा था। वे नीले वस्त्र पहनते थे।

श्लोक ६३—भुजगवलयम्—शिवजी हाथ मे सर्प का कडा पहनते है। क्रीडा शैले—कैलाश पर्वत को शिवजी और पार्वती जी के खेलने के लिए बनाया था। जैसा कि लिखा है—

कैलाश कनकाद्रिश्च मन्दरो गन्ध मादन ।
क्रीडार्थं निर्मिता शम्भोर्देवै क्रीडा द्रयोऽभवन् ।।

भगीभक्त्य—जोड युक्त स्तर वाला। सीढियो के रूप मे जोडों की रचना से अभिप्राय है। मणितट—कैलास को स्फटिक मणि का बना हुआ बताते है।

श्लोक ६४—बलयकुलिश०—यहाँ कुलिश शब्द का अर्थ वज्र ही अधिक उपयुक्त होगा। यन्त्रधारा गृहत्वम् इसका अर्थ फव्वारो से युक्त स्नानगृह ही उचित प्रतीत होता है। धर्मलब्धस्य—ग्रीष्म ऋतु मे फव्वारों का स्नान बडा आनन्ददायक होता है।

श्लोक ६५—हेमाम्भोज०—मानसरोवर मे सुनहरी कमलो का वर्णन किया जाता है। कल्पद्रुम—सब इच्छाओ को पूरा करने वाला वृक्ष। ये पाँच प्रकार के हैं। जैसे—

पञ्चैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः ।
सन्तानः कल्पवृक्षश्च पुंसिवा हरिचन्दनम् ।।

किसलय—कल्पवृक्ष के पत्तो को वस्त्र के समान बताया है।

श्लोक ६६—उत्सग—गोद में सीना पर इस श्लोक का अर्थ करते हुए केवल एक पक्ष को ही घ्यान मे रखा है। इसका दूसरा अर्थ निम्न प्रकार से जानना चाहियेः—

हेकामचारिन्! अर्थात् इच्छा के अनुसार विचरण करने वाले मेघ! फिर प्रेमी की गोद मे खिसकी हुई गंगा के समान श्वेत साडी वाली प्रेमिका के समान उस कैलास की ढलान रूपी गोद में गिरे हुए गंगा रूपी रेश्मी वस्त वाली अलका नगरी को देख कर तुम न पहचान सकोगे ऐसी बात नही। ऊँचे ऊँचे प्रासादों वाली जो

नगरी आपकी ऋतुयें मोतियो के गुच्छो से गूँथे हुए केशों को प्रणय कोप से सर्वथा भुक्त कामिनी के समान जल की वर्षा करने वाले मेघो के समूह को धारण करती है। अत इस श्लोक मे कैलाश की उपमा प्रेमी से अलका की प्रेमिका और कामिनी से, गगा की रेशमी साडी से और पानी की बूंदो की मोतियो के जाल से दी गई है। साहित्य के आचार्यों के विचार के अनुसार यहाँ अलका को स्वाधीन—पतिका नायिका के रूप मे दिखाया गया है।

उत्तर मेघ

श्लोक १—प्रासादा०—ऊँचे-ऊंचे महल तुम्हारी तुलना कर सकते है। समानता की कुछ बातें श्लोक के पहले तीन चरणो मे दी हुई हैं। **सङ्गीताय**—सगीत रत्ना कर के अनुसार सगीत मे नृत्य, वाद्य, और गीत—ये तीनो बातो का होना आवश्यक है। जैसे '—नृत्य वाद्य तथा गीत त्रयं सगीत मुच्यते।

श्लोक २—लीलाकमलम्—क्रीडा के समय हाथ मे लिए हुए कमल को लीला-कमल कहते है। कालिदास के प्रसिद्ध काव्य 'कुमार सम्भव और रघुवश' मे भी इसी प्रकार का वर्णन मिलता है। जैसे—लीलाकमल पत्राणि गणयामस पार्वती (कुमार-सम्भवम्) कश्चित्कराभ्यामुप गूढनालं लीलारविन्दं भ्रमयाञ्चकार (रघुवशम्)

लोध्र—पुष्परज अथवा एक प्रकार का पुष्प। सम्भवत स्त्रियाँ अपने कपोलो पर लोध्र पुष्प की रज मला करती थी। कर्णेशिरीवं-शिरीष पुष्प अपनी कोमलता के लिए प्रसिद्ध है। ललनायें इसे कानो मे धारण कर अपनी शोभा बढाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि कालिदास को पुष्प बहुत प्रिय था। उसने शाकुन्तल नाटक और रघुवश मे भी इसका वर्णन किया है। जैसे—अवतसयन्ति दयमाना. प्रमदा शिरीष कुसुमानि (शाकुन्तलम्) कृतं न कर्णार्पित बन्धन सखे शिरीष, च्युतें न कर्णादपि कामिनीना शिरीष पुष्प सहसा पपात (रघुवशम्)।

नीपं कदम्ब का पुष्प। बिक्रमोर्वशी मे कदम्ब का वर्णन आता है। जैसे—रक्त कदम्ब' सोऽय प्रियया धर्मान्तिशसि यस्यैकम। कुसुममसमग्र केसर विषममपि कृत शिखाभरणम्॥

श्लोक ३—उन्मत—पुष्पो का मधुर रसपान करके उन्मत्त मुखर—शब्द करने वाले, शोर मचाने वाले। नित्यज्योत्स्ना—शिवजी के मस्तक पर चन्द्रकला सदा शोभा देती है। अतः अलकापुरी के सायकाल केवल शुक्लपक्ष मे ही उज्ज्वल प्रकाश से धवलित नही रहते थे अपितु सदैव अर्थात् कृष्ण पक्ष मे भी अलका की सन्ध्यायें धवल रहती थी।

श्लोक ४—आनन्दोत्थं—आनन्दादु त्तिष्ठतीति अर्थात् अलका निवासियो के नेत्रों मे यदि कभी आँसू आते थे तो आनन्द के कारण ही अन्य किसी कारण से नही। यौवनादन्यत्—अर्धदेव होने के कारण उन्हे वृद्धावस्था नही आती थी।

श्लोक ५—सितमणि०—सितमणिना विकारा' सितमणिमयानि। स्थलानि ऊपर छज्जे अथवा पक्के फर्श। ज्योतिश्छाया—तारो के प्रतिबिम्ब। रतिफलं—भोग-

विलास के समय पी जाने वाली एक प्रकार की विशेष मदिरा प्रसूतं—कल्पवृक्षो द्वारा दी जाने वाली मदिरा। यक्षो को तैयार नही करनी पडती थी। पुष्कर—एक प्रकार का नगाडा या ढोल।

श्लोक ६— मन्दाकिन्या मन्दमवितु शीलमस्या इति मन्दाकिनी। जो स्वभाव से ही धीरे-धीरे प्रवाहित होती है—गगा।

मन्दाराणां—स्वर्ग के पाँच पुष्पों मे से मन्दार एक है। अमर प्रार्थिता —अलका की स्त्रियाँ इतनी सुन्दर थी कि देवता लोग भी उनसे सम्बन्ध करने के लिए तरसते थे। इस श्लोक मे जिस क्रीडा का वर्णन किया है उसका नाम "गूढमणि" है। विक्रमोर्वशी मे अर्धदेवो की कन्याओं द्वारा खेली जाने वाली ऐसी ही क्रीडा का वर्णन है। यथा—तत्रखलु मन्दाकिन्याः पुलिनेषु सिकता पर्वत केलीभि क्रीडन्ती विद्याधर दारिका तेन राजर्षिणा चिर निध्यातेति कुपिता उर्वशी।

श्लोक ७—नीवीबन्धो—नीवी—नाला—बन्ध—गाँठ। नीवी—इतना कह देने से ही भाव प्रकट हो जाता है फिर बन्ध शब्द का प्रयोग तो पुनरुक्ति मात्र है किन्तु "चूतवृक्ष" की तरह नीवीबन्ध का प्रयोग भी किया जा सकता है। 'चूत" इस शब्द से ही आम के वृक्ष का बोध हो जाता है फिर इसके साथ वृक्ष लगाना ठीक नही किन्तु प्रयोग मे ऐसा लिखा जाता है अतः कोई दोष नही।

विम्बाधारणा—बिम्ब एक प्रकार का पका हुआ फल होता है। सुन्दरियो के लाल अधरो की उपमा बिम्ब फल से ही दी जाती है। कालिदास ने बिम्ब का प्रयोग शाकुन्तल और रघुवंश में भी किया है। यथा "बिम्बाधरं दशसि चेद्भ्रमर।

प्रियायाः (शाकुन्तलम्) उमामुखे बिम्बफलाधरोष्ठे (कुमारसम्भव) वेत्तीव बिम्बाधरबद्ध तृष्णम् (रघुवंशम्)। क्षौम—रेशमी वस्त्र। तुग—ऊँचे या प्रसिद्ध। रत्न प्र०—अत्यन्त उज्ज्वल प्रकाश छोडने वाले रत्न जो रात को दीपको का काम थे। ह्रीमूढा :—लज्जावश उन्हें पता नही लगता था कि क्या किया जाये अर्थात् लज्जा के कारणकिंकर्त्तव्य विमूढ। विफल०—विफल प्रेरणायस्याः सा। रात को प्रेमी जब दिव्य यक्ष सुन्दरियो के वस्त्र खीच कर उन्हे नगा करने की चेष्टा करते थे तब वे लज्जाविह्वल होकर हाथ मे सुगन्धित चूर्ण लेकर मणियो के जलते हुए उन दीपो को बुझाने का प्रयत्न करती थी। किन्तु उनके प्रयत्न निष्फल रहते थे क्योकि मणियाँ तो सदा प्रकाशित रहने वाली थी। इस क्रिया से कवि ने उन ललनाओ का मुग्धापन का बहुत ही रोचक ढंग से चित्रित किया है।

श्लोक ८—सततगतिना—निरन्तर चलने वाली वायु। अमरकोश मे वायु को सदागति कहा है। यथा—मातरिश्वा सदागतिः। विमान—सात मजिलो वाले ऊँचे भवन—विमानो व्योमयाने च सप्तभूमि गृहेऽपि च। विमान शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से की जा सकती है—विशेषेण मान्त्यस्मिन् विशिष्टं मानमस्य। जर्जरा :—विशीर्ण, टूटे हुए।

श्लोक ९—उच्छ्वासित—ढीले छूटे हुए। आलिंगित—यहाँ संज्ञा के रूप मे प्रयुक्त हुआ है अर्थात् आलिंगन। ग्लानि—थकावट। सुरत क्रीडा से उत्पन्न हुई थकावट। तन्तुजालाव०—तन्तूना जाल तेनावलम्बन्त इति। विशद—उज्ज्वल, चमकीला। स्फुट०—चन्द्रकान्त मणिया चन्द्रमा की किरणो के पडने से पिघलकर शीतल द्रव की वर्षा करती है। सस्कृत के कवियो ने चन्द्रकान्त मणियो के द्रवित होकर शीतल जलकण की वर्षा का वर्णन कुमारसम्भव आदि ग्रन्थो में किया है। यथा—चन्द्रपाद जनित प्रवृत्ति भिश्चन्द्रकान्त जल विन्दुभिर्गिरि। मेखला तरुषु निद्रितानमून्बोधयत्यसमये शिखण्डिन। (कुमार सम्भवम्)

श्लोक १०—अक्षय्य—जिसका कभी क्षय न हो। रक्तकण्ठ—मधुर आवाज वाला। वैभ्रवाजाख्य—विभ्राज द्वारा रक्षित। शिवजी के मुख्य गणो (प्रमथ) मे विभ्राज एक गण है। इस उपवन का प्रसिद्ध नाम चैत्ररथ है। वारमुख्या—वैश्यायें।

श्लोक ११—गत्युत्कम्प—तीव्रगति के कारण समस्त शरीर के हिल जाने से। **पत्रच्छेदै**:—कर्णभूषण के रूप मे प्रयुक्त किए हुए पत्तो के टुकडे। स्तनपरिसर—उठे हुए स्तनो का विस्तार। कामिनीना—समय निश्चित करके अपने प्रेमियों के पास रात को जाने वाली स्त्रियाँ।

श्लोक १२—वासश्चित्रम्—नानावर्ण के वस्त्र। "कचधार्यं देहधार्यं परिधेय विलेपनम्। चतुर्धा भूषण प्राहुः, स्त्रीणामन्यच्च दैशिकम्॥ रसाकर के इस श्लोक के अनुसार अलकापुरी का एक कल्पवृक्ष ही स्त्रियों को चारो प्रकार के भूषणो को देता था। इसी का वर्णन कवि ने बडी सुन्दरता से इस श्लोक मे किया है।

श्लोक १३—कहते हैं कि पुष्पक विमान के लिए रावण ने अलकापुरी पर हमला किया था और कुबेर के साथ युद्ध भी किया था। इसीलिए प्रतिदश मुख—मे रावण का नाम लिया गया है। चन्द्रहास—यह रावण की तलवार का नाम था। साधारण व्यवहार मे भी यह तलवार के लिये प्रयुक्त होता है।

श्लोक १४—साक्षात्—सशरीर, दिखाई देने वाले रूप मे सहअक्षेण=(इन्द्रियेण) साक्षः तमतीति साक्षात्। भयात्—भय से एक बार शिवजी ने कामदेव को तीसरे नेत्र की अग्नि से भस्म कर दिया था। यथा—

> **तपः परामर्श विवृद्धमन्यो भ्रू भंग दुष्प्रेक्ष्य मुखस्य तस्य।**
> **स्फुरन्नुदर्चिः सहसातृतीयादक्ष्णः कृशानुः किल निष्पात॥**
> **क्रोधं प्रभो सहर सहरेति यावद्गिरः खेमरुतां चरन्ति।**
> **तावत्स वन्हिर्भवनेत्र जन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार॥**

(कुमार सम्भवम्)

मन्मथ—मत्-प्रेम आतमा, मतो मथ (मन्थाति इति) अर्थात् प्रेम के देवता को नष्ट करने वाला कामदेव।

षट्पदज्यं=षट् पदानि अस्य असौ षट्पद भ्रमरः

कवियो के वर्णन के अनुसार कामदेव के धनुष की प्रत्यञ्चा (डोरी) भ्रमरों

से बनी होती है। यथा—

अलिपंक्ति रनेक शस्त्वया गुण कृत्ये धनुषो नियोजिता (कुमार सम्भवम्)

अमोघ—अचूक, जिसका प्रहार कभी खाली न जाता हो।

वनिता—इस शब्द का प्रयोग बडा ही भावपूर्ण है। वह सुन्दर स्त्री जिसके दर्शन मात्र से हृदय मे खलबली मच जाए। यथा—

सा कविता सा वनिता यस्या· श्रवणेन दर्शनेनापि।
कविहृदय विटहृदय सरलं तरलं च सत्वरं भवति॥

विभ्रमैः—प्रेम के आवेश अथवा प्रभाव में शरीर मे जो हरकते होती है, मद, हर्ष, राग। यथा—

चित्त वृत्यनवस्थानं शृङ्गाराद् विभ्रमो मतः।

श्लोक १५—तत्रागार—आगार—घर। अगार और आगार दोनो शब्दो का प्रयोग घर के लिए होता है। यथा—

विद्यादगारमगारम् (द्विरूपकोश) गृहानुत्तरेण—

गृह शब्द का प्रयोग पुल्लिङ्ग और बहुवचन मे जब होता है यदि उसके आस-पास के वातावरण का भी साथ मे वर्णन अभीष्ट हो। यथा—

ममापि सत्त्वै रभिभूयन्ते गृहाः (शाकुन्तलम्) तोरणेन—महराबदार द्वार।

सुरपतिधनुश्चारुणा—इससे यह प्रकट होता है वह महराबदार द्वार बडा ऊँचा और अनेक रग के हीरो से जुडा हुआ था। कृतकतनय—पुत्रवत् पाला हुआ। **सस्कृत** के कवियो मे वृक्षो को पुत्रवत् मानने की परिपाटी प्रसिद्ध है। यथा—

अमुं पुर· पश्यसि देवदारुं पुत्री कृतोऽसौ वृषभध्वजेन। (रघुवंशम्)
"सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते" (शाकुन्तलम)

विल्सन महोदय कहते है कि हिन्दुओ की कविताओ मे प्राकृतिक पदार्थों के साथ कोमल प्रेम भावना बड़े ही सुन्दर रूप मे पाई जाती है। आपने उस मनोरम दृश्य की सराहना की है जब शकुन्तला महर्षि कण्व के आश्रम से विदा होने के पूर्व अपने हाथो से सीचे हुए पौधो को प्यार करती है और पुत्रवत् पालित हरिण शावक को दुलार देती हुई प्रेम के आँसू बहाती है और प्यारी माधवी लता के पोषण का भार अपनी प्रिय सखी प्रियम्वदा और अनुसूया पर डालती है।

श्लोक १६—वाणी—उप्यते पद्मादि अस्या। कमलो वाली बावडी। वैदूर्य—एक प्रकार की मणि जिसका रंग श्याम तथा नीला होता है। विदूरेभवम्—कुछ विद्वान् ऐसा मानते है कि लङ्का मे एक पहाड का नाम विदूर है। उस पहाड पर यह मणि पाई जाती है। कुमार सम्भव मे इस प्रकार का वर्णन पाया जाता है—

विदूर भूमिर्नव मेघ शब्दादुद्भिन्न रत्नशलाकयेव। आध्यास्यन्ति—आध्यानं उत्कण्ठापूर्वकं स्मरणम्।

व्यपगतशुचः—इससे स्पष्ट होता है कि वहाँ रहकर हस इतने प्रसन्न है कि वे मानसरोवर जाने का ध्यान ही नही करते।

श्लोक १७ – पेशालै —सुन्दर, चमकीले। इन्द्र नील—एक कीमती मणि जिसका रग नीला होता है। कनक कदली—अलकापुरी सुनहरी कमलो की नगरी थी अत: उस नगरी के केले के वृक्ष भी सुनहरी थे। प्रेक्षणीय—दर्शनीय। पर्वत इन्द्र नील-मणि से बना हुआ था और चारो ओर सुनहरी केलो की बाड लगी हुई थी। अत. उसकी शोभा अपूर्व थी।

श्लोक १८—रक्ताशोक—अशोक दो प्रकार का होता है—रक्त और श्वेत। कवि इसका वर्णन प्रेम के प्रसग मे करते है क्योकि यह प्रेम की भावना को उद्दीप्त करता है। रक्ताशोक के विषय मे सर विलियम जोन्स लिखते है कि वनस्पतियो के संसार मे जो शोभा अशोक की देखने को मिलती है वैसी किसी अन्य की नही। यह सत्य ही प्रतीत होता है। जब अशोक पूर्णरूप से पल्लवित पुष्पित होता है उस समय उसकी बराबरी कोई नही कर सकता। केसर —इसको वकुल भी कहते है। इसके छोटे-छोटे, भीनी-भीनी किन्तु मादक सुगन्ध वाले फूल होते हैं। माधवी—अति मुक्त-लता। इसको माधवी इसलिए कहते है कि यह मधु अर्थात् वसन्त मे विकसित होती है। कालिदास को माधवीलता अति प्रिय होती है। शाकुन्तल नाटक मे भी माधवी लता का वर्णन है। वामपादाभिलाषी—कहतेहै कि जब सुन्दर स्त्री अपने बाँये पैर की ठोकर लगाती है तब अशोक खिल जाता है। सस्कृत के कवियो ने ऐसा वर्णन अपने ग्रन्थो मे बडे सुन्दर शब्दो मे किया है। कुमार सम्भव मे महाकवि कालिदास ने लिखा है—

असूत सद्यः कुसुमान्य शोकः स्कन्धात्प्रभृत्येव सपल्लवानि।
पादेन नापेक्षत सुन्दरीणां संपर्क मा शिञ्जित नूपुरेण॥

मालविकाग्नि मित्र मे कालिदास ने इसी भाव को प्रकट किया है—

अकुसुमितम शोक दोहदापेक्षया वा प्रणिहित शिरसं वा कान्तमार्द्रापराधम्।
काङ्क्षत्यन्यो वदन मदिरां॥

अशोक की तरह **केसर** के विषय मे कहा जाता है कि जब सुन्दरी अपने मुँह मे मदिरा भरकर उसके ऊपर कुल्ला (गण्डूष) करती है तब वह पूर्णरूप से पुष्प धारण कर लेता है। जैसा कि कादम्बरी मे बाणभट्ट ने लिखा है—

"मद कलित कामिनी गण्डूष सीधु सेक पुलकित वकुलेषु"

एक अन्य पुस्तक मे भी कुल्ला करने का भाव इसी प्रकार दिखाया है। यथा—

मूले गण्डूष सेकासव इव बकुलैर्वास्यते पुष्प वृष्ट्या।

दोहदच्छद्मना—कुछ विद्वान् दोहद शब्द के विषय मे कहते हैं कि इसका शुद्ध रूप दौहृद है जो द्वि+हृदय से बनता है। इसका अर्थ है गर्भ का रहना और गर्भ धारण करने के पश्चात् दूसरी वस्तु की इच्छा करना। यह बात स्त्रियो मे स्वभावत पाई जाती है। दोहद की व्याख्या दोह आकर्ष ददातीति" इस प्रकार भी की जा सकती है। इसका अर्थ भी प्रबल उत्कण्ठा का उत्पन्न होना है अथवा गर्भ धारणकरने की तीव्र इच्छा। परम्परा से सस्कृत के कवियो ने इसका वर्णन ऐसा ही किया है :—

"पादाहतः प्रमदया विकसत्यशोकः शोकं जहाति बकुलो मुखसीधु सक्तः।
आलोकनात्कुर बकः कुरुते विकासमालोडितस्तिलक उत्कलिको विभाति ।।

श्लोक १६—फलक—फट्टा। वासयष्टि—चिडियो अथवा पक्षियो के बैठने के लिए एक लकडी। शिञ्जा—भूषणो के बजने की आवाज।

सभ्रूभगकरतलयै—सलयै साभिनयै। अत्रलय शब्देन तदनुगतोऽभिनयो लक्ष्यते। कान्तया नर्तितोमे—अमिषु कृतपुटान्त मंण्डलावृति चक्षु प्रचलित चतुर भ्रूताण्डवैर्मण्डयन्त्या। कर किसलय तालै मुंग्धया नर्त्यमान सुतमिव मनसा त्वा वत्सलेन स्मरामि ।। (उत्तर रामचरितम्)।

श्लोक २०—एभि. लक्षणै—तोरणआदि चिन्हो से। लिखित—शख और पद्म की आकृति को छाप दिया गया था क्योकि ये चिन्ह शुभ माने जाते है।

शंख पद्मौ—कुबेर की निधि के दो रत्न। इनकी गणना इस प्रकार की जाती है।

महापद्मश्च पद्मश्च शंखो मकर कच्छपौ।
मुकुन्द कुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयोनव ।।

क्षामच्छाय—क्षीणकान्ति। कमल—पद्म। दिन मे खिलने वाला कमल। अभिख्या पुष्यति। यहाँ अभिख्या का अर्थ सुन्दरता है। इसी प्रकार के शब्दो का प्रयोग कालिदास ने शाकुन्तल और कुमार सम्भव मे किया है। यथा—

वपुरभिनव मस्याः पुष्यति स्वां न शोभाम् (शाकुन्तलम्)।
"कामप्यभिख्यां स्फुरितैर पुष्यदासन्नलावण्य फलोऽधरोष्ठ ।(कुमारसम्भवम्)

श्लोक २१—कलभतनुता—कलभस्य तनुता लघुता हाथी के बच्चे के शरीर के समान लघु अथवा कृश। शीघ्रसपात०—यहाँ सपात शब्द का अर्थ प्रवेश है। यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ! तुम अपने शरीर को छोटा अथवा हल्का करके शीघ्र उतरने की कोशिश करना।

तत्परित्राणहेतो—यहाँ तत् शब्द से यक्ष की प्रिया अभिप्रेत है। रम्यसानौ—रम्याणि सानूनि अथवा रम्या सानव यस्य तस्मिन् अर्थात् बैठने योग्य स्थान- यही भाव प्रकट होता है। कर्तुमर्हसि—यहाँ अर्ह शब्द का प्रयोग प्रार्थना मे नम्रता का भाव दिखाने के लिए किया है। नार्हसि मे प्रणय विहन्तु (रघुवशम्)

अन्तर्भवन—घर का अन्दर का भाग। अल्पाल्पभास—मन्द प्रकाश न कि आँखो को चकाचौध करने वाला प्रकाश। खद्योताली—खे द्योतते असौ खद्योत अथवा ख द्योतयति। विल्सन महोदय कहते है कि भारत मे वह अनोखा दृश्य वर्षा ऋतु मे देखने को मिलता है जब जुगुनू का कोमल टिमटिमाता हुआ प्रकाश झाडियो मे दिखाई देता है।

श्लोक २२—श्यामा—अप्रसूता, जिसके कोई बच्चा नही हुआ है। युवति। "भवेत् श्यामा तन्वी च नवयौवना। एक स्थान पर श्यामा की परिभाषा इस प्रकार की है :—

अप्रसूता भवेच्छयामा श्यामा षोडश वार्षिकी ।
श्यामा च श्यामवर्णाश्च श्यामा मधुर भाषिणी ॥

श्रोणीभारात्—नितम्बो के भार से । अलसगमना—मन्द-मन्द गति से चलने वाली । सँस्कृति के कवियो सुन्दरियो की चाल का ऐसा वर्णन अन्यत्र भी किया है । यथा —

"यातं यच्च नितम्बयोर्गु रुतया मन्दं विलासादिव । (शाकुन्तलं)
सा कान्ता जघन स्थलेन गुरुणा गन्तु ं न शक्ता वयम् (अमरु)"

सृष्टि राद्येव—सृष्टि बनाते समय विधाता ने जिसके बनाने मे सारी सामग्री खर्च करदी अर्थात् अनुपम सौन्दर्य वाली । इसी प्रकार का भाव कालिदास ने अपने प्रसिद्ध नाटक शाकुन्तल मे प्रकट किया है । दुष्यन्त शकुन्तला के ललाम लावण्य को देखकर कहता है —स्त्री, रत्न सृष्टि र परा प्रतिभाति सा मे ।

श्लोक २३—परिमित कथाम्—परिमिता कथा यस्या मित भाषिणी । पतिव्रता स्त्री जब अपने पति से अलग होती है तब वह बहुत थोडा बोलती है और श्रृङ्गार के सब साधनो को छोड देती है और सादा जीवन व्यतीत करती है । महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपने धर्म शास्त्र मे लिखा है —

क्रीडां शरीर संस्कारं समोत्सव दर्शनम् ।
हास्य पर गृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्तृ का ॥

जीवित मे द्वितीयं–यक्ष की प्यारी पत्नी । जीवित शब्द का प्रयोग अन्यत्र भी किया गया है । यथा —त्व जीवित त्वमसि मे हृदयं द्वितीयम् (उत्तर राम चरित) "अत्यायत नयनयोर्मम जीवित मेतदायाति (मालविकाग्नि मित्रम्) चक्रवाकी–कहते है कि चक्रवाक और चक्रवाकी सदा दिन मे साथ-साथ घूमते है किन्तु शाम होते ही उन्हे जुदा होना पड जाता है । वे एक दूसरे के सामने खड़े रहते है अर्थात् एक नदी के किनारे इस पार और दूसरा दूसरी तरफ । इन्होने कभी किसी मुनि के हृदय को दुखाया था अत. उसने इन्हे रात को जुदा रहने का शाप दिया था । कई ऐसा कहते है कि इन्होने मर्यादा पुरुषोत्तम राम की हँसी उडाई थी जब वे सीता जी के वियोग मे रो रहे थे । अत उन्होने इस धृष्टता के कारण इन्हे रात को अलग रहने का शाप दिया था । "राम शाप ग्रस्तानीव चक्रनाम्नां मिथुनानि (कादम्बरी) सस्कृत के ग्रन्थो मे कवियो के चक्रवाक और चक्रवाकी को दृढ प्रेम का आदर्श माना है । यथा –

रथाग नाम्नो रिव भावबन्धन (रघुवशम्) सरसि नलिनी पत्रेणापि त्वमावृत विग्रहा ननु सहचरी दूरेमत्वा विरौषि समुत्सुक: (विक्रमोर्वशीयम्) एषापि प्रियेण विना गमयति रजनी विषाददीर्घतराम् (शाकुन्तलम्) दयिता द्वद्वचरं पतत्रिणाम् (रघुवशम्) गाढोत्कण्ठा—गाढा उत्कण्ठा यस्या. ।

उत्कण्ठा मस्तिष्क की वह मर्मभरी वेदना है जो जुदाई अथवा असफल प्रेम के कारण उत्पन्न होती है । इसी भाव को मालती माधव मे बड़े सुन्दर-शब्दो मे दर्शाया है । यथा—

गाढोत्कण्ठा ललित लुलितैरग कैस्ताम्यतीति । गुरुषु—असह्य ।

यच्छत्सु—एक-एक दिन उसके कोमल शरीर को विपुल वियोग की व्यथा से जर्जरित कर देगा और उसका परिणाम यह होगा कि वह कोमलागी अस्थि शेष रह जायेगी ।

अन्यरूपाय—अन्यस्या इव रूप यस्या सा । जो दूसरी के समान दिखाई देती हो । यह कहकर यक्ष पुन. मेघ से यह कहता है कि हे मेघ ! मेरे वियोग मे मेरी प्रिया दूसरी ही प्रतीत होगी किन्तु वास्तव मे तुम उसे और न समझना । कृशता के कारण उसके कोमल कलेवर मे पर्याप्त परिवर्तन आ गया होगा ।

श्लोक २४—नून—इसका अर्थ सम्भवत भी होता है किन्तु यहाँ **निश्चय** ही ऐसा अर्थ ही अभिप्रेत है । क्योकि यक्ष को पूरा निश्चय था कि मेरे वियोग के कारण उसका शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया होगा । प्रबलरुदित—अधिक रोना । उच्छून—सूजे हुए ।

अशिशिर—गर्म । भिन्नवर्णा—गर्म निःश्वासो के कारण उसके अधर की लालिमा कालिमा मे परिणत हो गई थी। हस्तन्यास—यह दु ख और चिन्ता का चिन्ह है । स्त्रियाँ जब वियोग जन्य दु ख मे या चिन्ता मे होती है तब वे हाथ पर मुँह रख कर बैठती है और हाथ भी बाँया होता है । इसी गहरे मानसिक भाव का विश्लेषण करते हुए कालिदास शाकुन्तल मे कहते है—अनसूये पश्य तावत् वामहस्तोपहितवदना-ऽऽलिखितेव प्रिय सखी ! भर्तृगतया चिन्तया ।

लम्बालकत्वात्—यक्ष की पत्नी प्रोषित भर्तृका थी अत उसने अपने काले केशो मे कघी नही फेरी और न उनमे तेल लगाया अत वे ढीले लटके हुए थे और एक तरफ से उसके मुख को ढक रहे थे । कालिदास मानवीय भावो के विशद विश्लेषण मे सिद्ध हस्त थे । उन्होने वियोग विधुरा यक्षिणी की विरह दशा का बहुत ही मार्मिक चित्रण किया है । त्वदनुसरण क्लिष्ट कान्ते —क्लिष्ट—पीडित अथवा ढका हुआ हिमक्लिष्ट प्रकाशानि ज्योतीषीव मुखानिव (कुमार सम्भवम्) यहाँ यक्षिणी के मुख को चन्द्रमा माना गया है और उसके इधर-उधरलटकते हुए काले बालो को मेघ से उपमा दी गई है ।

श्लोक २५—देवताओ को प्रसन्न करने के लिए अर्पित की जाने वाली पूजा की सामग्री (फल फूल आदि) यह बलि दो प्रकार की होती है—**नित्य** तथा **नैमित्तिक** व्याकुला—अत्यन्त व्यस्त । भावगम्य—जो केवल कल्पना द्वारा ही जाना जाए । आलेख्य—तस्वीर । सस्कृत के कवियो ने प्रेमी और प्रेमिकाओ की इस दशा का वर्णन प्राय सब जगह ऐसा ही किया है । जब कोई पत्नी अपने पति के वियोग मे दु खित होती है और समय काटे नही कटता तब वह अपनी चितवृत्ति को इधर उधर करने के लिए लकीरें खीचना ही शुरू कर देती है अथवा अपने प्रियतम के नाम के अक्षरो किसी फट्टे पर या ज़मीन पर लिखना शुरू कर देती है । सारिका—मैना । सस्कृत के ग्रन्थो मे तोता और मैना का बहुत वर्णन मिलता है । स्त्रियाँ प्राय. मैना को ही पालती है और दु ख के समय उससे बाते करके अपने दु खी हृदय को बहलाती हैं । इसी अभिप्राय से इस

श्लोक में यक्षिणी मैना को "रसिके" इस सम्बोधन से बुलाती है क्योकि मैना गुण-अवगुण की परीक्षा मे निपुण होती है ।

श्लोक २६—मलिनवसने—मलिन वसन यस्मिन् । मद्गोत्राक—मेरे नाम से अंकित । तन्त्री—डोरी । सारयित्वा—गीली डोरी को पोछकर नही तो ठीक ध्वनि नही निकलेगी । कुछ विद्वान् "सारयित्वा" शब्द का अर्थ उचित स्वर मे ठीक करके मूर्छना—स्वरो का उतार-चढाव—आरोह अवरोह इनकी सख्या २१ है ।

सप्तस्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्छनाश्चैक विंशतिः ।
ताना एकोन पञ्चाशदित्ये तच्छ्रुतिमण्डलम् ।। (नारदीय शिक्षा)
श्रुत्यनन्तर भावीयः स्निग्धोऽनुरणात्मकः ।
स्वतोरञ्जयति श्रोतुश्चित्तं स स्वर उच्यते ।।
श्रुतिभ्यः स्यु स्वरा षड्जर्षभ गान्धारमध्यमाः ।
पञ्चमो धैवतश्चाथ निषाद इति सप्तते ।।
तेषां सज्ञा सरिगम पधनीत्यपरा मताः ।

मूर्छनालक्षण—क्रमात्स्वराणां सप्ताना मारोहश्चाव रोहणम् । सा मूर्छेत्युच्यते ग्रामस्था एताः सप्त सप्तच ।

श्लोक २७—विरह दिवस०—यक्ष का निर्वासन जिस दिन से हुआ था । अवधि—शाप का समय । देहलीदत्त—दलीज पर पुष्पो को इकट्ठा करके उनको गिनना शुरू कर देती थी । विरहावस्था मे प्राय स्त्रिया समय बिताने के लिए ऐसा करती है । हृदयनिहितारम्भ०—शरीर से वियुक्त होने पर भी यक्षिणी अपने मन मे अपने प्रियतम का चित्र खीचकर उसका आनन्द ले रही थी ।

श्लोक २८—सव्यापारा—यद्यपि यक्षिणी अपने पति के वियोग से सन्तप्त थी फिर भी वह घर के दिन प्रतिदिन के कार्यो मे लगी रहती थी जिससे वह वियोग के दु.ख को भूल जाये । गुरुतर—असह्य । वियोगिनी स्त्रिया दिन मे तो कुछ-न-कुछ काम करके अपने सतप्त मन को बहला लेती है । किन्तु रात को उनके लिए एक-एक क्षण बिताना कठिन हो जाता है । सस्कृत के अन्य ग्रन्थो मे भी इस प्रकार के भाव प्रदर्शित किए गए है ।"कार्यान्तरितोत्कण्ठ दिन मया नीत मनतिकृच्छ्रेण । अविनोददीर्घयामा कथ नुरात्रि गमयितव्या । (विक्रमो०)

"एषाऽपि प्रियेण विना गमयति रजनी विषाददीर्घाम् । (शाकुन्तलम्)

सखीं ते—मित्र की पत्नी को आदर से अथवा प्रेम-भाव से सखी भी कहा जाता है । ऐसे प्रयोग अन्यत्र भी पाये जाते है ।

"मेनका किल सख्यास्ते जन्म प्रतिष्ठा ।" (शाकुन्तलम्)
"तेन हि सख्यास्ते मार्गं मोदशय ।" (विक्रमोर्वशीयम्)

साध्वीं—यक्षिणी पतिव्रता थी । अत. यक्ष मेघ को कहता है कि तुम आधी रात को भी जाकर उसे मेरा सन्देश दे सकते हो । कोई सकोच अथवा भय की बात नही ।

उन्निद्रां—वियोग के दु ख के कारण जिसने सोना ही छोड दिया है। पतिव्रता के नियम को निभाने के लिए यक्षिणी रात को बारह बजे पलग से उठकर भूमि पर शयन करती थी। अवनिशयना—व्रत को निभाने के लिए भूमि पर सोना उचित है।

श्लोक २९—आधिक्षामा—मनोव्यथा से कृश। आधि शब्द का अर्थ मानसिक व्यथा और व्याधि का अर्थ है शारीरिक कष्ट। यहा तो यक्षिणी वियोग के कारण मन-ही-मन घुल रही थी।

विरह शयने—विरहानुकूल शयन विरह शयन तस्मिन् अर्थात विरहावस्था के अनुकूल शय्या होनी चाहिये। प्राय ऐसी अवस्था मे पतिव्रता स्त्रिया भूमि पर सोती है।

प्राचीमूले—पूर्वीय क्षितिज। कलामात्र—कला एव कलामात्रम्। कृष्ण पक्ष के चौदहवे दिन यह सम्भव है। विरह महती—जुदाई की रात बडी लम्बी प्रतीत होती है।

श्लोक ३०—अमृत शिशिरान्—अमृतेन शिशरा तान्—चन्द्रमा मे अमृत होता। वह अपने अमृत को देवताओं को देता है। पूर्व प्रीत्या—जब वह अपने प्रियतम के साथ रहती थी उस समय वे दोनो हिमाशु की शीतलता का आनन्द लेते थे किन्तु विरहिणी यक्षिणी को अब चन्द्रमा की शीतलता भी नही सुहाती। वियोग व्यथा से व्यथित सुन्दरियो को चन्द्रमा का शीतल प्रकाश अग्नि के समान तापकारी प्रतीत होता है।

"पादास्त एव शशिनः सुखयन्ति गात्रम्।" (विक्रमोर्वशी)
"विसृजति हिम गर्भैरग्नि मिन्दुर्मयूखैः।" (शाकुन्तलम्)

खेदात् सलिल गुरुभिः—वियोग के दु ख के कारण आँसुओ से भरे हुए। स्थल कमलिनी—यक्ष की पत्नी भूमि पर सोती थी अत स्थल कमलिनो के साथ उसकी यहाँ तुलना की गई है।

श्लोक ३१—अधर किसलय०—अधर किसलय इव। विरह के दु ख के कारण यक्षिणी के श्वास गर्म गर्म निकल रहे थे और उनकी ऊष्णता से उसके नीचे के कोमल होठ मुरझा रहे थे अथवा उनको कष्ट हो रहा था।

शुद्धस्नानात्—वियोगिनी स्त्रियाँ स्नान करते समय तेल अथवा अन्य किसी सुगन्धित पदार्थ का प्रयोग नही करती। मत्संभोग—पार्श्व और अन्य कई टीकाकार कहते है कि सभोग की अपेक्षा सयोग शब्द अधिक उपयुक्त है क्योकि पति-पत्नी के मेल से नीद का आना सम्भव है। मधुर मिलन के पश्चात् सभोग की बारी आ जाती है। कही कही समागम शब्द का भी प्रयोग कवियो ने किया है जो बहुत भावपूर्ण है। "प्रजागरात्खिलीभूतस्तस्या स्वप्ने समागमः (शाकुन्तलम्) "कथमुपलभे निद्रा स्वप्ने समागमकारिणीम्" (विक्रमोर्वशीयम्) नयन सलिलोत्पीड-नेत्रो से अविरल अश्रु धारा निकल रही थी। अवकाशस्थान। नेत्र निद्रा के स्थान माने जाते है क्योकि आँखो मे नीद दिखाई दे रही है। ऐसा कहा जाता है। "निद्रा चिरेण नयनाभिमुखी बभूव" रघुवश के ये वाक्य इसी भाव को प्रकट करते हैं।

श्लोक ३२—बद्धा—इसका अर्थ यहाँ बँधा हुआ नही अपितु गूँथे हुए केशो

से है। शिखा—केश। दाम—माला। हित्वा—छोडकर। विरहिणी स्त्रियाँ वियोगावस्था मे केशो मे फूल नही लगाती। "न प्रोषिते तु सस्कुर्यान्न च वेणी प्रमोचयेत्।" (हारीत) उद्वेष्टनीया-जिसे मैं ही ढीली करूँगा अथवा खोलूँगा। "उद्वेष्टनवान्तमाल्य." (रघुवशम्)

अयमितनखेन—विरहावस्थाये स्त्रियाँ अपने नाखूनो को भी नही काटती। गण्डाभोग—विस्तृत कपोल।

कठिन विषमाम्—तेल आदि न लगाने से यक्षिणी के केश ऊँचे-नीचे और खुश्क हो गये थे।

श्लोक ३३—सन्यस्ताभरण—असह्य वियोग के दु ख से यक्षिणी इतनी कृश हो गई थी कि वह आभूषणो के भार को भी नही सह सकती थी अत उसने अपने कृश शरीर से भूषण भी उतारकर फँक दिए थे। पेशल-कोमल। दु ख दु खेन—यहाँ दु ख की पुनरा वृति से दु ख की अतिशयता अभिप्रेत है।

करुणावृति—दयालु स्वभाव का व्यक्ति।

आर्द्रान्तात्मा—जिसका कोमल हृदय शीघ्र ही द्रवित हो जाता हो।

श्लोक ३४—सभृतस्नेह—सभृत स्नेहो यस्मिन् अति गम्भीर प्रेम से भरा हुआ। सुभगमन्यभावः—अपने आपको सुन्दर अथवा सौभाग्यशाली समझने वाला। यक्ष अपने आपको सौभाग्यशाली इसलिए कह सकता है कि उसे बडी सुन्दर और पतिव्रता स्त्री मिली हुई थी। सस्कृत के व्याकरण मे ऐसे प्रयोग आते है। यथा—

पण्डितमात्मानं मन्यते पण्डितंमन्यः अथवा पण्डितमानी।

श्लोक ३५—रुद्धापाङ्ग—वियोग से वह इतनी दुर्बल हो गई थी कि वह इधर उधर देख भी नही सकती थी। स्नेहशून्य—सुरमा आदि से रहित। क्योकि विरहावस्था मे स्त्रियाँ आँखो मे सुरमा भी नही लगाती। प्रत्यादेशात्—वियोग की व्यथा से व्यथित यक्षिणी ने मदिरा का पान भी छोड दिया था। जब मदिरापान ही छोड़ दिया तो मस्ती कहाँ और मस्ती के बिना वह अपनी तिरछी भौहो को भी मटकाना भी भूल गई थी। कालिदास ने वियोगिनी का जितना सुन्दर वर्णन इस श्लोक मे किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

मृगाक्ष्याः—मृगस्य इव अक्षिणी यस्या सा मृगाक्षी।

तस्याः—यक्षिणी की आँखे मृगी के चचल नेत्रो के समान सुन्दर थी।

श्लोक ३६—कररुह-करे रोहन्तीति कररुहाःनाखून। दैवगत्या—दुर्भाग्य से, विधाता की वामता से सवाहन-चरणो के दबाने के लिए इस शब्द का भावपूर्ण प्रयोग किया गया है। कालिदास ने शाकुन्तल नाटक मे भी इस शब्द का प्रयोग किया है। दुष्यन्त शकुन्तला को प्रसन्न करने के लिए अथवा उसकी थकावट को दूर करने के लिए कहता है —

अके निधायचरणावुत पद्मताम्रौ।
संवाहयामि करभोरु यथा सुखंते॥

सरस—रस वाले, गीले। न सूखे न पके।

श्लोक ३७—कथञ्चित्—बडी कठिनाई से। गाढोपगूढं—गाढ आलिंगन।

श्लोक ३८—शीतलेनानिलेन—शीतल जल की बूंदो से। राजकुमारी अथवा रानी को नीद से जब जगाया जाता है तब उसके मुख पर शीतल जल छिकडा जाता है अथवा धीरे धीरे पैर दबाये जाते है। जैसा कि भोजराज ने कहा है:—

मृदुभिर्मर्दनैः पादे शीतलै र्व्यजनैस्तनौ।
श्रुतौ च मधुरैर्गीतैर्निद्रातो बोधयेत्प्रभुम्॥

मालतीनां जालकैः—मालती की कलियो पर शीतल जल छिडका जाता है और जब उनके साथ शीतल वायु का स्पर्श होता है तब वे खिल उठती है। उनमे जान आ जाती है। विद्युद्गर्भ—अपने अन्दर बिजली को धारण करके। यहाँ भाव यह है कि यक्ष मेघ को कहता है कि हे मेघ! तुम बिजली का इतना तीव्र प्रकाश मत करना। क्योकि तीव्र प्रकाश से मेरी प्रिया की आँखे चकाचौध हो जायेगी और वह तुमसे अच्छी तरह बात भी न कर सकेगी। कुछ विद्वान् विद्युद्गर्भ—का अर्थ करते है कि परस्त्री के पास किसी को अकेला नही जाना चाहिए। बिजली को मेघ की पत्नी माना है। अत. मेघ जब अपनी पत्नी बिजली के साथ यक्षिणी के पास जायेगा तब यक्षिणी भी नि संकोच होकर मेघ से बाते कर सकेगी क्योकि पतिव्रता स्त्रियाँ प्राय परपुरुष से बाते करने मे लज्जा का अनुभव करती हैं। यह कल्पना सुन्दर है और यहाँ उचित प्रतीत होती है।

श्लोक ३९—अविधवे! इस शब्द का प्रयोग करके कवि ने यह भाव प्रकट किया है कि ज्योही मेघ यक्ष की प्रियतमा को "अविधवा" कहेगा इसे एकदम विश्वास हो जायेगा कि मेरा पति जीवित है, सुरक्षित है और वह अच्छे ढग से मेघ से बात करेगी। मित्र प्रिय—इन दोनो शब्दो का प्रयोग भी भावपूर्ण हैं। प्रिय मित्र कहने से यक्षिणी को विश्वास हो जायेगा कि वास्तव मे यह मेघ प्रियतम का सन्देश मुझ तक पहुँचाने आया है। वेणिमोक्षो०—ऐसी प्रथा थी कि जब पति प्रवास से लौटकर आते थे तब वे अपनी प्रियाओ के केशो को ढीला करके उनकी वेणी को खोला करते थे।

श्लोक ४०—पवनतनय—मेघ को हनुमान्‌जी से उपमा देने का अभिप्राय यह है कि मेघ मे एक सच्चे, विश्वसनीय दूत के सब गुण मौजूद है और वह हनुमान्‌जी की तरह अपने कर्त्तव्य को प्राणपण से निभायेगा। यक्ष पत्नी को सीता जी के समान दिखाने का तात्पर्य यह है कि यक्ष पत्नी बड़ी पतिव्रता थी। कष्ट मे भी सीता जी के समान धैर्य धारण करके अपने जीवन को धारण करेगी।

मैथिली—मैथिलस्य राज्ञः अपत्य स्त्री, मिथिला के अधिपति राजा जनक की पुत्री। मिथिला विदेह देश की राजधानी थी। यह मगध के उत्तर पूर्व मे स्थित थी। उन्मुखी—इस शब्द का अभिप्राय यह है कि जैसे वृक्ष की शाखा पर बैठे हुए हनुमान् जी को सीता जी ने ऊपर को मुँह उठाकर देखा था उसी प्रकार यक्ष की पत्नी गवाक्ष

(खिड़की) मे बैठे हुए मेघ को मुँह उठाकर देखेगी । यह बात रामायण के निम्न श्लोक से पुष्ट हो जाती है । यथा—

ततः सा वक्र केशान्तो सुकेशी केश सवृतम् ।
उन्नम्य वदनं भीरुः शिशया मन्ववैक्षत ।।

सम्भाव्य—सत्कृत्य अर्थात् आदर करके । जब हनुमान्जी अशोक वाटिका मे सीता जी के पास पहुँचे और जब वे सीता जी से बात करने लगे तब सीता जी ने उनको कपट वेषधारी रावण समझकर मुँह फेर लिया किन्तु जब हनुमानूजी ने उन्हे विश्वास दिलाया कि मै तो रामचन्द्र जी का अनन्य भक्त हूँ और उनका दूत बनकर आया हूँ । तब सीताजी ने हनुमान्जी का आदर किया । इसी बात को रामायण के निम्न श्लोक मे देखिये ।

न हित्वां प्राकृतं मन्ये वानर वानरर्षभ ।
यस्य ते नास्ति संत्रासो रावणादपि सभ्रमः ।
अर्हसे च कपिश्रेष्ठ मया समभि भाषितुम् ।

अवहिता—ध्यानपूर्वक सुनने वाली । क्योकि यक्ष की पत्नी को विश्वास हो जायेगा कि मेघ सच्चा दूत बनकर आया है । सीमन्तिनी—सीमन्त अस्या अस्तीति अर्थात् वह स्त्री जिसका पति जीवित है ।

श्लोक ४१—आयुष्मन् !-दीर्घ आयु वाला ! इसमे आशीर्वाद का भाव पाया जाता है । यक्ष मेघ का बडा भाई बना हुआ था अत. वह मेघ को आशीर्वाद देता है कि हे मेघ ! तुम मेरा सन्देश लेकर जा रहे हो, तुम्हारी दीर्घ आयु हो ।

आत्मन —इस उपकार का कार्य करके तुम अपने ऊपर भी उपकार करोगे—यक्ष का भाव यही है ।

अव्यापन्न—मरा नही, जीवित है । पितृव्यापत्ति-कयो (रघुवशम्) अव्यापन्न शब्द के प्रयोग मे यह भी भाव है शरीर और आत्मा को मिलाये हुए जैसे तैसे यक्ष जी रहा है । इसीलिए यहाँ सुखी शब्द का प्रयोग नही किया है । पूर्वाभाष्य—सबसे पहले पूछी जाने वाली बात । सुलभविपदां—सुलभा विपद् येषा अर्थात् अनायास ही जिन पर आपत्ति आ जाती है । अङ्ग—उसकी पत्नी का शरीर । प्रतनु—अत्यन्त कृशकाय ।

श्लोक ४३—जिसका शब्दों मे वर्णन हो सकता हो । उत्कण्ठा—प्रबल इच्छा और मानसिक अशान्ति पूर्ण अवस्था ।

अब अगले चार श्लोको मे चार बातो का वर्णन करता है जब व्यक्ति अथवा जिन्हे पुन मिलन का सौभाग्य प्राप्त नही हुआ, इन चार बातो के द्वारा अपनी उत्कण्ठा को शांत करने का यत्न करते हैं :—(१) सदृश पदार्थो को देखना (२) उसी समान रेखा खीचना (३) स्वप्न मे उसके रूप को देखना (४) उन चीजो को छूना जिन्हें उसकी प्रिया ने छुआ है ।

श्लोक ४४—श्यामासु अङ्ग—यहाँ प्रियगुलता से विरहिणी यक्ष पत्नी के कोमल कलेवर की तुलना करके कवि ने उसके शरीर की कृशता, कोमलता बताई है ।

अंग—इस शब्द से उसके बाहुओं का वर्णन मिलता है।

"कृत्वा श्यामाविटप सदृशं स्रस्तमुक्त द्वितीय (हस्तं)" (मालविकाग्निमित्रम्)
"श्यामलता कुसुमभारनत प्रबाला: स्त्रीणां हरन्ति धृतभूषणबाहुकान्तिम् (ऋतु-संहार)

शिखिनां बर्हभारेषु—अन्दर गूँथे हुए फूलो वाले स्त्री के केशो की उपमा मोर पख से दी जाती है। सस्कृत के कवियो ने अपने ग्रन्थो मे ऐसा ही वर्णन किया है। यथा—रति विगलित बन्धे केशहस्ते सुकेश्या सति कुसुमसनाथे किं करोत्येष बर्हीं। (विक्रमोर्वशीयम्) "चित्रमाल्यानुकीर्णे केशपाशे प्रियाया (रघुवशम्)। नदीवीचिषु—नदियों की तरङ्गो मे। "तरङ्गभ्रूभङ्गा" (विक्रमोर्वशीयम्) रघुवश मे इन सब बातो का वर्णन बडी सजीव एव सरस भाषा मे किया है। यथा—

कल मन्यभृतासुभाषितं कलहसीषु मदालसंगतम्।
पृषतीषु विलोलमीक्षितं पवनाधूतलतासु विभ्रमाः॥

त्रिदिवोत्सुक कथाऽप्यवेक्ष्य माँ निहिता सत्यममी गुणास्त्वया। विरहे तव मे गुरुव्यथ हृदय न त्ववलम्बितु क्षमा:॥

इसी प्रकार मालती माधव मे वर्णन मिलता है। यथा—

नवेषु लोध्रप्रसवेषु कान्तिर्दृशः कुरंगीषु गतं गजेषु।
लतासुनम्रत्वमिति प्रमथ्य व्यक्तं विभक्ता विपिने प्रियामे॥

चण्डी कोप करने वाली। यक्ष कहता है कि प्रिये! तुम यह जानकर मुझ पर कुपित होगी कि मै तुम्हारे अङ्गों की समता अन्य पदार्थों मे देखने की कोशिश कर रहा हूँ परन्तु वास्तव मे बात यह है कि तुम्हारे अगो की उपमा के योग्य कोई पदार्थ नही। तुम्हारी सुन्दरता अनुपम है।

श्लोक ४५—धातुरागैः—गेरू आदि धातुओ के रग से शिलापट्ट पर अतिशय प्रेम के कारण कुपित हुई प्रिया की प्रतिकृति अर्थात् तस्वीर खीचकर।

आत्मान—ज्योही मै चित्र मे अपने आपको तुम्हारे चरणो मे पडा हुआ दिखाना चाहता हूँ उसी समय मेरी दृष्टि अविरल अश्रुधारा से अवरुद्ध हो जाती है और मेरी इच्छा अपूर्ण ही रह जाती है। इसी भाव को दर्शाने के लिए कवि ने "दृष्टि रालुप्यतेमे" लिखा। इसी भाव को विक्रमोर्वशी मे दिखाया है।

न च सुवदनामालेख्येऽपि प्रिया मसमाप्य तां मम नयनयो रुद्बाष्पत्वं सखे न भविष्यति॥क्रूरस्तस्मिन्नपि।

विधाता की क्रूरता का वर्णन करते हुए एक विद्वान लिखते है—

अकरुणत्वम कारण विग्रहः परधने परयोषिति च स्पृहा।
सुजनबन्धुजने ष्व सहिष्णुता प्रकृतिसिद्ध मिदं हि दुरात्मानाम्॥

श्लोक ४६—आकाश०—आकाशे प्रणिहितौ भुजौयेन—अर्थात् जिसने आकाश में अपनी भुजाये फैलाई हैं। निर्दय—क्रूर। निर्दयाश्लेषहेतोः=निर्दयश्चासौ आश्लेष अर्थात् गाढ़ालिङ्गन के लिये, तरु किसलयेषु—आँसुओ की बूंदे वृक्षों के पत्तों पर

गिरती हैं। वास्तव मे तो ये ओस की बूंदे थी किन्तु "तरु किसलयेषु" इसका भाव यह है कि यदि महापुरुषो के, देवताओ के आँसू पृथ्वी पर गिरे तो बडा अनर्थ हो जाता है यथा—

महात्म गुरुदेवानामश्रुपातः क्षितौयदि ।
देशभ्रंशो महद् दुःखं मरण च भवेद् ध्रुवम् ॥

सस्कृत के कवियो ने करुणा के कारण वृक्षो के रोने का वर्णन भी अपने ग्रन्थो किया है। यथा

निशातुषारैर्नयनाम्बुकल्पै पत्रान्तपर्यागलदच्छ बिन्दु ।
उपारुरोदेव नदत्पतगः कुमुद्वतीं तीरतरुर्दिनादौ ॥ (भट्टि)
"विलपन्निव कोसलाधिपः करूणार्थं प्रथित प्रियां प्रति ।
अकरोत्पृथ्वी रूहानपि स्रुत शाखारस बाष्प दुर्दिनान् ॥ (रघुवशम)

श्लोक ४७—तत्क्षीर—देवदारु वृक्षो के बहकर निकलने वाले निष्यन्द से हिमालय की शीतल हवाये भी सुगन्धित हो जाती है इसीलिए कवि ने "सुरभय" शब्द का प्रयोग किया है। कालिदास ने कुमार सम्भव मे इसी भाव को निम्न शब्दो में दर्शाया है।

"भागीरथी निर्झरशीकराणां वोढामुहुः कम्पित देवदारुः"

अङ्गमेभिस्तवेति—इन शीतल हवाओ से यदि तेरा अङ्ग छुआ जाए। इस प्रकार की शीतल वायु मे सन्तप्त प्रेमी अथवा प्रेमिका के दग्ध हृदय को शान्त करने की अपूर्व शक्ति होती है। सस्कृत के साहित्य मे कवियो ने इस भाव को बडी सुन्दरता से चित्रित किया है।

"तामीषत्प्रचल विलोचनां नतांगीमालिगन् पवन मम स्पृशांगमंगम्" (मालती-माधव) "शक्यमरविन्द सुरभिः कणवाही मालिनी तरगांणाम् अंगै.रनगतप्तै रविरल मालिंगितुं पवन (शाकुन्तलम्)

श्लोक ४८—दीर्घयामा— लम्बी। त्रियामा—तीन प्रहर वाली रात। वियोग मे रातें लम्बी प्रतीत होती है।

सर्वावस्थासु—सर्वकालेषु अर्थात् सब हालतो मे।

अशरणम्—नास्ति शरण यस्य—विवश, बिना रक्षक के।

श्लोक ४९—यक्ष कहता है कि यद्यपि मैं तुम्हारे वियोग मे अत्यन्त दुर्बल हो गया हूँ फिर भी अपने भविष्य के विचारो का अवलम्ब लेकर जैसे-तैसे जी रहा हूँ। प्रिये ! तुम मेरी इस बात से हताश मत होना। सुख और दु ख का चक्र तो ऊपर नीचे होता ही रहता है। अब हमारे अच्छे दिन आने वाले है। उस सुखद समय की प्रतीक्षा करो। इसी भाव को प्रकट करने के लिए कवि ने "विगण्यन्" अर्थात् उज्ज्वल भविष्य के विषय मे सोचकर जी रहा हूँ।

श्लोक ५०—भगवान् विष्णु आषाढ़ की एकादशी से कार्तिक की एकादशी (प्रबोधिनी तक) अर्थात् चार महीने शेष शय्या पर सोते हैं। इसे योगनिद्रा कहते हैं।

शेषान्—बाकी बचे हुए। लोचने मीलयित्वा—चुपचाप क्षपासु—रात्रियो मे। क्योंकि विलास अथवा आनन्दोत्सव रात्रियो मे बहुत अच्छी तरह मनाया जाता है।

श्लोक ५१—भूयश्चाह—उसने फिर कहा।

सान्तर्हासम्—अन्तर्हासेन सहित यथा तथा। आन्तरिक मुस्कराहट के साथ। इसका भाव यह है कि जब यक्षिणी की नीद उचट गई अथवा स्वप्न भग हो गया तब वह लज्जित हो गई क्योकि वह तो कह रही थी कि हे कितव अर्थात् हे धूर्त ! मैने तुम्हे किसी अन्य स्त्री के साथ स्वप्न मे रमण करते हुए देखा है किन्तु वास्तव मे यह स्वप्न ही था।

श्लोक ५२—कुशलिन—कुशलमस्यास्तीति कुशली तम्। अभिज्ञान—चिह्न, पहचान का निशान। ध्वसिन —ध्वसितु शील येषा—विनाश शील।

श्लोक ५३—विरहोदग्र०—उद्गतमग्रमस्य उदग्र अर्थात् अतितीव्र। प्रात कुन्दप्रसव०—प्रसूयते इति प्रसव। कु द पुष्प शाम को विकसित होता है और प्रातः अपने डण्ठल से शिथिल होकर मुर्झा जाता है।

श्लोक ५४—प्रत्युक्त—उत्तर देना। ईप्सितार्थं—अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति। "नीचोवदति न कुरुते न वदति साधु करोत्येव। सज्जनो से ईप्सित अर्थ की प्राप्ति होती है।

श्लोक ५५—सौहार्दात्—सुहृदो भाव सौहार्द मित्र भाव से। विधुर—विगताधूर्यस्य।

प्रेम के कारण व्याकुल, वियुक्त। इसी भाव को सस्कृत के कवियो ने अपने ग्रन्थो में बड़े स्पष्ट शब्दो मे बताया है। यथा—

"मयि च विधुरे भावः कान्ताप्रवृत्तिपराड्मुखः।"

(विक्रमोर्वशीयम्) विधुरां ज्वलनातिसर्जनान्ननु मां प्रापय पत्युरन्तिकम् (कुमार सम्भवम्)।

अनुक्रोशः—दया, सहानुभूति के कारण किसी के साथ करुणा के भाव दिखाने।

विद्युता—अर्थात् हे मेघ ! तुम अपनी पत्नी बिजली से कभी अलग न हो। मेघ और बिजली का साहचर्य है। अतः कविजन विद्युत् को मेघ की पत्नी मानते हैं।

अन्ते काव्यस्य नित्यत्वात्कुर्यादाशिषमुत्तमाम्।
सर्वत्र व्याप्यते विद्वान्नायकेच्छानुरूपिणीम्॥

इस श्लोक के अनुसार कवि ने काव्य मर्यादा का पालन करते हुए भरत वाक्य के साथ अपने काव्य की समाप्ति की है।

मेघदूत के भौगोलिक स्थानों का संक्षिप्त परिचय

अवन्ति—मालवा के पश्चिम भाग मे स्थित एक नगरी जिसकी राजधानी उज्जयिनी है।

आम्रकूट—अमरकण्टक पर्वत जो रेवा (मध्य प्रदेश) मे है।

उज्जयिनी—अवन्तिका, विशाला।

कनखल—हरिद्वार के पास एक छोटा-सा शहर है और इसे पवित्र तीर्थ मानकर मृतको की अस्थियो को गङ्गा मे प्रवाहित करने के लिये बहुत से यात्री आते हैं।

कुरुक्षेत्र—यह वही प्रसिद्ध स्थान है जहाँ कौरव और पाण्डवो का युद्ध हुआ था। यह थानेसर के पास है।

कैलास—तिब्बत मे २०२६ फुट की ऊंचाई वाला यह एक महान् और पवित्र पर्वत है, यह मानस के उत्तर पश्चिम मे स्थित है। शिवजी का प्रिय स्थान माना जाता है।

क्रौंचरन्ध्र—शिवजी से विद्या ग्रहण करने के पश्चात् कैलास पर्वत से दक्षिण की ओर लौटते हुए परशुरामजी ने क्रौंच पर्वत मे जो मार्ग बनाया था तभी से यह पर्वत क्रौंचरन्ध्र कहलाता है। इस मार्ग से हस मानसरोवर की यात्रा करते हैं। अतः इसे हस द्वार भी कहते है।

गम्भीरा—यह एक नदी का नाम है। यह उज्जियिनी के समीप ही है।

गन्धवती—यह एक छोटी-सी नदी है जो शिप्रा मे मिल जाती है।

चर्मण्वती—मालवा की नदी है। इसे आजकल चम्बल कहते है। यह यमुना मे आकर मिलती है।

जान्हवी—गङ्गा के कई नामो मे से यह भी एक नाम है।

दशपुर—यह स्थान मध्यप्रदेश मे है। आजकल इसे मदसौर कहते है।

दशार्ण—मालवा का पूर्वी भाग। इसकी राजधानी विदिशा।

देवगिरि—देवगढ (मदसौर और उज्जयिनी के मध्य स्थित)।

निर्विन्ध्या—यह एक नदी का नाम है। यह विन्ध्य पर्वत से निकलती है।

नीचैर्गिरि—यह एक छोटा-सा पर्वत है। इसे उदयगिरि भी कहते हैं। यह भेलसा के समीप है।

ब्रह्मावर्त—दिल्ली के पूर्व उत्तर का प्रदेश। इसमे कुरुक्षेत्र आदि भी सम्मिलित है।

माल—रत्नपुर। यह स्थान मध्यप्रदेश मे। आजकल इसे माल्दा भी कहते है।

मानस—यह एक विशाल सरोवर है। इसकी गहराई २५० फुट है। हस यही रहते है।

यमुना—भारत की एक प्रसिद्ध नदी। दिल्ली इसी के तट पर स्थित है।

रेवा—नर्मदा नदी का दूसरा नाम है।

रामगिरि—रामटेक पर्वत। यह स्थान मध्यप्रदेश मे है।

वन नदी—मालवा की एक छोटी नदी जो भेलसा के समीप बेतवा म मिलती है।

विदिशा—भेलसा।

विन्ध्य—भारत का प्राचीन प्रसिद्ध पर्वत **विन्ध्याचल**।

वेत्रवती—वेतवा नदी। यह मालवा मे है।

शिप्रा—उज्जयिनी के पास बहने वाली नदी।

सिन्धु—यह भी एक नदी है जो चम्बल मे मिलती है।

श्री चरणन्यास—कुछ विद्वानो के मतानुसार हर की पैडी (हरिद्वार)।

हिमालय—भारत का मुकुट प्रसिद्ध पर्वत। इसकी चोटी ससार मे सबसे ऊँची है।

सूक्तयः

१. मेघा लोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे । पूर्वमेघ श्लोक (३)

२ का मार्ताहि प्रकृति कृपणाश्चेतना चेतनेषु । पू मे श्लोक (५)

३. याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमेलब्धकामा । पू मे श्लोक (६)

४ सन्तप्तनां त्वमसि शरण् । पू मे. श्लोक (७)

५. आशाबन्ध कुसुमसदृशं प्रायशोह्यङ्गनानाम् ।
सद्य पाति प्रणयिहृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ।। पू. मे श्लोक (९)

६. न क्षुद्रोऽपि प्रथम सुकृतापेक्षया संश्रयाय,
प्राप्ते मित्रे भवति विमुख किं पुनर्यस्तथोच्चैः ।। पू मे श्लोक (१७)

७ रिक्तः सर्वोभवति हिलघु पूर्णता गौरवाय । पू मे श्लोक (२०)

८. विद्युद्दाम स्फुरित चकितैस्तत्र पौरागनानां,
लोलापांगैर्यं दिन रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ।। पू मे श्लोक (२८)

९ स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमोहिप्रियेषु । पू मे. श्लोक (२९)

१०. यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमगानुकूलः
शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटु कारः ।। पू मे. श्लोक (३२)

११. मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थं कृत्याः । पू मे. श्लोक (४१)

१२. ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थ. । पू. मे. श्लोक (४४)

१३. अन्तःशुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः । पू मे. श्लोक (५२)

१४. आपन्नार्ति प्रशमन फला सम्पदोह्युत्तमानाम् । पू. मे श्लोक (५६)

१५. के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्ना । पू मे श्लोक (५७)

उत्तरमेघः

१६. वित्तेशानां न च खलु वयो यौवनादन्यदस्ति ।

उ मे श्लोक (४)

१७ ह्रीमूढानां भवति विफल प्रेरणा चूर्णमुष्टिः ।

उ मे. श्लोक (७)

१८ सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम् ।

उ मे श्लोक (२०)

१९. प्रायः सर्वोभवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा ।

उ. मे श्लोक (३३)

२०. श्रोष्यत्यस्मात्परमवहिता सौम्य सीमन्तिनीनां,
कान्तोदन्तः सुहृदुपनत सगमात्किचिदूनः ।।

उ. मे. श्लोक (४०)

२१. मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ।

उ मे. श्लोक (४१)

२२ अव्यापन्नः कुशलमबले पृच्छति त्वां वियुक्तः,
पूर्वाभाष्य सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव ।।

उ. मे श्लोक (४२)

२३. क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौकृतान्तः ।

उ. मे श्लोक (४५)

२४ कस्यात्यन्त सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा,
नोचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ।।

उ. मे श्लोक (४६)

२५. इष्टे वस्तुन्युपचित रसाः प्रेमराशीभवन्ति ।

उ. मे. श्लोक (५२)

२६. प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थ क्रियैव ।

उ. मे. श्लोक (५४)

२७. माभूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः ।

उ. मे. श्लोक (५५)

व्याकरण भाग

पूर्व मेघ

श्लोक १—कान्ता–√कम्+क्त+स्त्री०आ । विरह–वि+√रह्+क । स्वाधिकारात् प्रमत्त –स्वस्य अधिकार स्वाधिकार. तस्मात् प्रमत्त: । प्रमाद के योग मे पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग होता है । जैसे—जुगुप्सा विराम प्रमादार्थानामुपसख्यानम् । प्रमत्त =प्र+√मद्+क्त ।

अस्तंगमितमहिमा—अस्त गमित. महिमायस्य स । अस्तम्—यद्यपि यह प्रयोग√अस्+क्त की द्वितीया विभक्ति के एक वचन का है किन्तु अव्यय के रूप मे इसका समास हुआ है । गमित–√गम्+णिच्+क्त । महिमा–महतोभाव । महत्+इमनिच् । वर्षभोग्येण–वर्ष योग्य तेन ।

यक्ष—इस शब्द की व्युत्पत्ति कई प्रकार से की जाती है—

(१) यक्ष्यते पूज्यते इति यक्षः।

(२) इ (काम) अक्ष्णोः यस्य इति यक्ष ।

(३) इ काम, तस्य इव अक्षिणी यस्य इति यक्ष. ।

(४) भागीरथ के अनुसार—जक्षति खादन्ति शिशूनिति जक्षा । जक्षा. का ही यक्षा बन गया ।

स्निग्धच्छायातरुषु–छाया प्रधाना तरव छाया तरव· । मध्यम पद लोपी तत्पुरुष समास । स्निग्धा· छाया तरव येषु तेषु । स्निग्ध–√स्निह्+क्त

रामगिर्याश्रमेषु–रामगिरे आश्रमा तेषु ।

वसतिम्–√वस्+क्तिन् । "वहिवस्यर्तिभ्यश्च" इसके अनुसार औणादिक अति प्रत्यय लगकर यह शब्द सिद्ध हुआ है ।

श्लोक २—विप्रयुक्त–वि+प्र+√युज्+क्त । कनकवलय –कनकस्ययवल., तस्यभ्रंश कनकवलय भ्रंश· । तेन रिक्त प्रकोष्ठः यस्य स. । आषाढस्य–आषाढ़ नक्षत्रेण युक्ता पौर्णमास्याषाढी । "नक्षत्रेण युक्त काल." इसके अनुसार अण् हुआ । "टिड्ढाणञ् इत्यादि पाणिनि के सूत्र के अनुसार ङीप् प्रत्यय लगा । साऽऽषाढी अस्मिन् पौर्णमासी त्याषाढो मास "साऽस्मिन् पौर्णमासीति सञ्ज्ञायाम्" इसके अनुसार अण् प्रत्यय । तस्य । आश्लिष्ट०–आश्लिष्ट· सानु (अथवा आश्लिष्टं सानु) येन स आ+√

श्लिष्+क्त। वप्रक्रीडा–वप्रक्रीडाया परिणत गज. तद्वत् प्रेक्षणीय तम्। प्रेक्षणीय–प्र+√ईक्ष्+अनीय।

श्लोक ३—कौतुकाधान०–कौतुकस्य आधान, तस्य हेतु तस्य। दध्यौ–√ध्यै+लिट् प्रथम पुरुष एक वचन मे यह रूप सिद्ध होता है।

सुखिन–सुख अस्य अस्तीति सुखी तस्य।

अन्यथावृत्ति–अन्यथा (जाता) वृत्तिर्यस्य तत्।

कण्ठाश्लेष०–कण्ठस्य आश्लेष। तस्मिन् प्रणय यस्य तस्मिन्। दूरसस्थे–दूरे संस्था यस्य तस्मिन्।

श्लोक ४—नभसि–पुंल्लिग मे नभस् शब्द से श्रावण मास का ही बोध होता है। दयिता जीवित०–दयिताया जीवित, तस्य आलम्बन दयिता जीवितालम्बनम्। तद्एव अर्थ दयिता जीवितालम्बनार्थ सोऽस्यास्तीति दयिता जीवितालम्बनार्थी। अथवा दयिता जीवितालम्बनम् अर्थयते इति दयिता जीवितालम्बनार्थी। जीमूतेन= जीवनस्य उदकस्य मूत पटबन्ध जीमूत तेन। विश्वकोष मे पानी के लिए जीवन शब्द का प्रयोग भी हुआ है। यथा—

"पय कीलालममृत जीवन भुवनं वनम्।"

स्वकुशलमयीम्–स्वस्य कुशल तेन ०।प्ता। ताम्। हारयिष्यन्–√हृ+णिच्+स्य (भविष्यत्)+शतृ+पुंल्लिग प्रथमा विभक्ति का एक वचन। "लिट् शेषे च" इसके अनुसार लृट् हुआ।

कल्पितार्घाय—कल्पित अर्घ यस्मै, तस्मै। अर्घ–अर्ह्यते अनेन इति। अर्ह् या अर्घ्+घञ्। प्रीतिप्रमुख०–प्रीति प्रमुखानि वचनानि यस्मिन् कर्मणि तत् प्रीति प्रमुख वचनम्। तद् यथा भवति तथा। व्याजहार–वि+आ+√हृ लिट् प्रथम पुरुष एक वचन का प्रयोग है।

श्लोक ५—धूम ज्योति०–धूमश्च ज्योतिश्च सलिल च मरुच्च तेषाँ सनिपात। सन्देशार्था–सन्दिश्यन्ते इति सन्देशा। सम्+√दिश्+घञ् त एव अर्था। पटु-करणै–पटूनि करणानि येषा तै। औत्सुक्यात्=उत्सुकस्य भाव औत्सुक्यम्। तस्मात्।

गुह्यका—(१) गुह्यं कुत्सित कायाति। गुह्य+√कै+क।
(२) गुह्यं गोपनीय क सुख यस्य। गुह्य+क।
(३) गूहति निधि रक्षति। √गुह्+ण्वुल (अक)

कामार्त्ता—कामेन आर्त्ता आर्त्त–आ+√ऋ+क्त।

प्रकृति कृपणाः—प्रकृत्या कृपणा. विकला।

श्लोक ६—भुवन विदिते–भुवनेषु विदिते इति। यहाँ 'विदित' इस शब्द मे क्त प्रत्यय भूतकाल मे प्रयुक्त हुआ है। पुष्करावर्त्तकानाम्=पुष्कर (जल) आवर्त्तयन्तीति

पुष्करावर्तका, तेषाम्। प्रकृति०–प्रकृतिश्चासौ पुरुषश्च प्रकृतिप्ररुष तम्। कामरूपम्–कामेन रूपाणि यस्य, तम्। अर्थित्वम्–अर्थयते असौअर्थी। अर्थ+णिनि तस्य-भाव. अर्थित्वम्। दूर बन्धु–दूरे बन्धु यस्य स। लब्धकामा–लब्ध कामो यस्या सा।

श्लोक ७—धनपति०—धनपतेः क्रोध, तेन विश्लेषित· तस्य।

विश्लेषित—वि+√श्लिष्+णिच्+क्त। बाह्योद्यान०–बहि भवं बाह्यम्। बहिस्+यज्। बाह्य च तत् उद्यान बाह्योद्यानम्। तस्मिन् स्थित हर। तस्य शिर, तस्मिन् या चन्द्रिका, तया धौतानि हर्म्याणि यस्या सा। धौत–धाव्+क्त।

श्लोक ८—आरूढम्–आ+√रूह्+क्त। आश्वसत्य–आ+श्वस्+शतृ+ई (स्त्री०) प्रथमाविभक्ति, बहुवचन। सन्नद्धे–सम्+√नह्+क्त। विधुरा–विगता धू कार्यभारो यस्या सा। पराधीन०–परस्य अधि इति पराधीना। पराधीना वृत्तिः यस्य स। परि+अधि+ख (इन)।

श्लोक ९—अव्यापन्नाम्–न व्यापन्नाम् इति अव्यापन्नाम्। न+वि+आ+√पद्+क्त+स्त्री० आ+द्वितीया विभक्ति, एक वचन। अविहतगति–अविहता गति यस्य स। आशा०–आशा एव बन्ध. आशाबन्धः। कुसुम सदृशम्–कुसुमेन सदृशम्। सद्य पाति–सद्य पतित शीलमस्य इति सद्यः पाति। एकपत्नीम्–एक पतिर्यस्या सा एक पत्नी ताम्। "नित्य सपत्न्यादिषु" इस सूत्र से ङीप् और नकार।

श्लोक १०—मन्द मन्द=व्याकरण के अनुसार "मन्दमन्दम्" ऐसा पाठ होना चाहिये किन्तु "निरकुशा कवय" अर्थात् कवि लोग कुछ शब्दो के प्रयोग मे स्वतन्त्र होते है। यही समाधान किया जाता है।

गर्भाधान०—गर्भस्य आधान, तदेवक्षण, तस्य परिचय, तस्मात् अथवा "गर्भाधानस्य क्षणे परिचयात्" यहाँ "क्षण" शब्द के दोनो अर्थ लगाने उचित है।

श्लोक ११—उच्छिलीन्ध्राम् उद्गतानि शिलीन्ध्राणि यस्याम्। मानसोत्काः–मानसे उत्का। पाथेय–पथिन्+एय "पथ्यतिथि वसति स्वपतेर्ढञ्" इस सूत्र से ढञ्।

श्लोक १२—आपृच्छस्व–आ+प्रच्छ् आत्मने पद होता है। लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एक वचन। प्रियसखम्–प्रियश्चासौ सखा च तम्। "राजाहः सखिभ्यष्टच्" इस सूत्र से ट च् प्रत्यय, समासान्त। वन्द्यै–वन्दितु योग्यानि, तैः। चिर विरहजम् चिरं विरहः, तस्मात् जातः, तम्।

श्लोक १३—अनुरूपम्–रूपस्य सदृशो योग्यो वा अनुरूप, तम्। श्रोत्रपेयम्=श्रोत्राभ्या पेयः तम्। खिन्न खिन्नः–"नित्यवीप्सयोः" इस सूत्र से नित्यार्थं मे द्विर्भाव हो गया। क्षीणः क्षीण यहाँ पर भी कृदन्त होने के कारण खिन्न खिन्न की तरह द्विरुक्ति हो गई है।

श्लोक १४—उन्मुखीभिः–उद्गतानि मुखानि यासां ताभिः। दृष्टोत्साहः–

हृष्टः उत्साहो यस्य स । सिद्ध—सिध+क्त। उदङ्—मुखःउदक् मुख यस्य सः। दिङ्नागानाम्—दिशानागाः, तेषाम् ।

श्लोक १५—रत्नाच्छाया०—रत्नाना छाया, तासा व्यतिकरः इव । प्रेक्ष्यम्—प्रेक्षितु योग्यम् । स्फुरित रुचिना—स्फुरिता रुचिः यस्य तेन । गोपवेषस्थ—गाः पाति इति गोप । गो+√पा+क । गोपस्य इव बेषो यस्य, तस्य ।

श्लोक १६—आ+यत्+क्त । कृषिफलम्—कृषेः फलम् । भ्रूविकार०—भ्रुवोः विकाराः तासाम् अनभिज्ञैः । प्रीतिस्निग्धैः—प्रीत्या स्निग्धैः । जनपद०—जनपदस्य वधूना लोचनै । पीयमान—√पा+कर्मवाच्य का य+शान च्+पुल्लिग, प्रथमा विभक्ति, एक वचन ।

श्लोक १७—आसार०—आसारेण प्रशमितः वनोपप्लवः येनतम् । वक्ष्यति—√वह्+लृट्, प्रथम पुरुष, एक वचन । अध्वश्रम०—अध्वन श्रमः, तेन परिणतःतम् । सानुमान्—सानवः सन्ति अस्मिन् इति ।

श्लोक १८—छन्नो—छन्नाः उपान्ताः यस्य स । छद्+क्त—छन्न । परिणत०—परिणतानि फलानि, तैः द्योतन्ते इति तथा भूतैः । काननाम्रैः—कानने भवाः, काननस्य वा आम्राः, तैः अरूढ—आ+√रुह्+क्त । स्निग्धवेणी०—स्निग्धा चासौ वेणी । तया सवर्णः । तस्मिन् । शेष विस्तार०—शेषे यो विस्तार तस्मिन् पाण्डुः ।

श्लोक १९—वनेचरन्ति इति वनचरा । "तत्पुरुषे कृति बहुलम्" इस सूत्र से बहुल ग्रहण होने के कारण लुक् प्रत्यय होता है । "वनेचर" यह रूप भी होता है। वनचराणा वधूभिः भुक्ताः कुञ्जाः यस्मिन्, तस्मिन् । तोयोत्सर्ग—तोयस्य उत्सर्गः । तेन द्रुततरा गतिर्यस्य स । उत्सर्ग—उत्+√सृज्+घञ् । तत्परम्—तस्मात्पर तत्परम् । तीर्ण—तृ+क्त । विशीर्णाम्—वि+शॄ+क्त+स्त्री० आ+द्वितीया विभक्ति, एक वचन । भक्तिच्छेदैः—भक्तीना छेदाः, तैः ।

श्लोक २०—वान्तवृष्टिः—वान्ताः वृष्टय येन स । जम्बू कुञ्ज०—जम्बूना कुञ्जा. । तै. प्रतिहत रयः यस्व तत् (तोयम्) का विशेषण है । अन्त सारम्—अन्तः सार. बल यस्य त त्वाम् । तुलयितुम्—तुला के नामधातु तुल से तुमुन् प्रत्यय ।

श्लोक २१—अनुकच्छम्—कच्छेषु इति अनुकच्छम् । अथवा कच्छस्य समीपे इति अनुकच्छम् । जग्ध्वा—अद् धातु से क्त्वा प्रत्यय । "अदोजग्धि—इस सूत्र के अनुसार जग्ध्यादेश होता है ।

श्लोक २२—वीक्षमाण—वि+√ईक्ष(देखना)+शानच् । निर्दिशन्त—निर्+√दिश् (दिखाना)+शतृ+पुँल्लिङ्ग, प्रथमाविभक्ति, वहुवचन । आसाद्य—आ+सद्+णिच्+ल्यप् ।

श्लोक २३—मत्प्रियार्थम्—(१)मत्प्रियम् तदर्थम्। (२) मम प्रिया मत्प्रिया, तदर्थम्। यियासो —√या (जाना)+सन्+उ+पुल्लिङ्ग, षष्ठी विभक्ति का एक वचन। ककुभ सुरभौ–ककुभैं सुरभि, तमिस्न्। शुक्लापाङ्ग –शुक्लौ अपाङ्गौ येषां तैः।

स्वागतीकृत्य—न स्वागत अस्वागत। अस्वागत स्वागत सम्पद्यमान कृत्वा इति स्वागतीकृत्य। प्रत्युद्यात —प्रति+उत्+√या (जाना)+क्त। पुल्लिङ्ग, प्रथम पुरुष, एक वचन। व्यवस्येत्—वि+अव्+√सो (समाप्त करना, अन्त करना)+विधिलिङ् प्रथम पुरुष, एक वचन। "प्रार्थने लिङ्" "शेषे प्रथम"इस सूत्र के अनुसार प्रथम पुरुष हुआ।

श्लोक २४—पाण्डुच्छायोप०—पाण्डु छाया यासा ता। पाण्डुछायाः (हरितवर्णा) उपवनानां वृतय। (कण्टक शाखा वरणा) येषु ते। आसन्न—आ+√सद्(बैठना)+क्त। परिणत— परि+√नम् (झुकना)+क्त।

श्लोक २५—तेषाम्—तेषा दशार्णानाम्। दिक्षु–दिक् शब्द की सप्तमी का वहुवचन। प्रथित—√प्रथ्+क्त। राजधानीम्—धीयन्तेऽस्यामितिधानी। "करणाधिकरणयोश्च"इस सूत्र से ल्युट्। राज्ञा धानी राजधानी "कृद्योगलक्षणा षष्ठी समस्यते" इस वक्तव्य के अनुसार समास हुआ। ता अविकलम्—विगता कला यस्य तद् विकल, न विकल अविकलम्। लब्धा— 'कर्मणि लुट्'' इस सूत्र के अनुसार लुट् लकार् प्रथम पुरुष, एक वचन। तीरोपान्त०—तीरोपान्ते (तटप्रान्ते) यत् स्तनित (गर्जित) तेन सुभग यथा स्यात् तथा। सभ्रूभङ्गमु—भ्रुवोर्भङ्गा भ्रुभङ्गाः। तै सहितम्। चलोर्मि—चला. ऊर्मय यस्य तत् चलोर्मि।

श्लोक २६—नीचैराख्यम्—नीचैः इति आख्या यस्य, तम्। गिरिम्—अधिपूर्वक √वस् धातु के योग मे द्वितीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है। विश्राम–वि+√श्रम्+घञ् (भावार्थे घञ् प्रत्ययः) "षष्ठी हेतु प्रयोगे" इस सूत्र के अनुसार षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होने के कारण "बिश्रामहेतोः" यह रूप कवि ने लिखा है। व्याकरण के नियम के अनुसार शुद्ध रूप "विश्रम" है विश्राम नही किन्तु कवियो ने इस शब्द का प्रयोग किया है। स्वार्थे मे अ (अण्) प्रत्यय लगाने से "विश्राम" शब्द सिद्ध हो जाता है। पुलकितम्–पुलका. अस्य जाता इति पुलकित, तम्। पुलक+इतच्। पण्य स्त्री–पण्याः (क्रेया) स्त्रियः इति पण्यस्त्रियः। उद्दामानि–उद्गत दाम येभ्यः, तानि। यौवन—यूनः भाव। युवन्+अण्।

श्लोक २७—निषिञ्चन–नि+√सिच्+शतृ+पुंल्लिग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन। जब √सिच्, √कृ, √वृष् आदि धातुओ का अर्थ "अतिशय रूप से भिगोना" अभिप्रेत होता है तब इन धातुओं के योग मे तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है और जब केवल "छिड़कने" का भाव हो तो द्वितीया विभक्ति प्रयुक्त होती है। गण्ड स्वेद०–गण्डयो. स्वेदस्य अपनयनेन या रुजा तया क्लान्तानि कर्णेषु उत्पलानि येषाम्।

पुष्पलावी०—पुष्पाणि लुनन्ति इति पुष्पलाव्य.। "कर्मण्यण्" इससे अण्। "टिड्ढाणञ्–" इस सूत्र से ङीप् प्रत्यय होने से "पुष्पलावी" शब्द सिद्ध होता है।

श्लोक २८——सौध–सुधालेप अस्य अस्तीति सौध (सौधवा) सौधोत्सङ्ग—सौधानाॅ उत्सगेषु य· प्रणय तस्माद् विमुख। मा स्ममू =मा स्म के योग मे लुङ् लकार और लङ् लकारो का प्रयोग होता है। यहाॅ आशीर्वाद के अर्थ मे लुङ् का प्रयोग हुआ है। ऐसी अवस्था मे धातु रूप के "अ" आगम का प्रतिषेध हो जाता है।

श्लोक २९—वीचिक्षोभ०=वीचीना क्षोभेण स्तनितानाँ विहगानाँ श्रेणि: एव काञ्चीगुण यस्या: तस्या ससर्पन्त्या =सम्+√सृप+शतृ+स्त्रीलिंग, ई+षष्ठी विभक्ति, एक वचन। स्खलित सुभगम्=स्खलितैं सुभग यथास्यात् तथा। स्खलित्=√स्खल्+क्त। दर्शिता०=आवर्त एव नाभि. इति आवर्तनाभि। दर्शिता आवर्त-नाभि य या तस्या। निर्विन्ध्याया.=निष्क्रान्ता विध्यात्। आद्यम्=आदौभव. इति आद्यम्। आदि+-यत्।

श्लोक ३०–वेणीभूत०=न वेणी अवेणी। अवेणी वेणी सम्पन्नमिति वेणीभूतम् वेणीभूतं प्रतनु सलिल यस्या: सा अतीतस्य––अति+-√इ (जाना)+क्त+पुल्लिग, प्रथमा एक वचन। सौभाग्यम्=सुभगस्य भाव सौभाग्यम्। सुभग+ष्यञ्। व्यञ्जयन्ती—√वि+√अज् 'व्यक्त करना'+णिच्+शतृ+स्त्रीलिंग ई+प्रथमा एक वचन। कार्श्यम्=कृशस्य भाव.। कृश्+ष्यञ्। उपपाद्य·—उप+√पद् 'जाना' +णिच्-यत्।

श्लोक ३१—प्राप्य=प्र+√आप्+ल्यप्। उदयनकथा०=उदयनस्य कथाना कोविदा ग्रामेषु ये वृद्धा ते सन्तियेषुतान्। विदन्तीति विदा। इगुपधलक्षण: क.। ओकसो वेद्य स्थानस्य विदा कोविदा। ओ कार के लोप हो जाने पर पृषोदरा-दित्व से यह शब्द सिद्ध होता है। पूर्वोद्दिष्टाम्=पूर्व उद्दिष्टाम्। उत+√दिश् (बताना)+क्त+स्त्री०+आ, द्वितीया एक वचन। विशालाम्—विशिष्टा विविधा: वा शाला यस्या तामम्।

श्लोक ३२—दीर्घीकुर्वन्=अदीर्घ दीर्घ सम्पद्यमान करोति इति दीर्घीकुर्वन्। स्फुटित कमला०—स्फुटिताना कमलाना आमोद इति स्फुटित कमला मोद। तेन या मैत्री, तया कषाय इति।

श्लोक ३३—तरल गुटिकान्—तरलाभूतां गुटिका येषा तान्। कोटिश·=कोटि+शस्। शष्पश्यामान्=शष्पवत् श्यामा तान्। उन्मयूख०=उद्गता मयूखा येषा ते उन्मयूखा। उन्मयूखा: प्ररोहा येषा ते उन्मयूख प्ररोहा, तान्। विपणि रचितान्=विपणिषु रचितान्।

श्लोक ३४—जह्रे=√हृ+लिट्लकार, प्रथम पुरुष, एक वचन। उद्भ्रान्त =उत्+√भ्रम्+क्त+पुल्लिग, प्रथमा, एक वचन। उत्पाट्य=उत्+√पट् (जाना, हिलना)+णिच्+ल्यप्।

श्लोक ३५—जालोद्गीर्णैं =जालेभ्य उद्गीर्णैं । उत्+√गृ (निकलना) +क्त । उपचितवपु =उपचित वपु यस्य । उप+√चि (चिनना इकट्ठा करना) +क्त ।

केशसस्कारधूपै —केशाना सस्कारः । तस्य धूपै. । अंकित=अंक+इतच् । अथवा अक् (निशान लगाना)+क्त ।

श्लोक ३६—कण्ठच्छवि =कण्ठस्य छविः इव छविः यस्य सः । वीक्ष्यमाण =वि+√ ईक्ष्+कर्मवाच्य शानच्+पुल्लिग, प्रथमा विभक्ति, एक वचन । याया =√ या (जाना)+विधि लिङ्, मध्य पुरुष, एक वचन । त्रिभुवनगिरोः=त्रयाणा भुवनाना समाहारः त्रिभुवनम् तस्य गुरो । चण्डीश्वरस्य=चण्ड्याः ईश्वरः तस्य । धूत=√धू (कापना) +क्त । इसका दूसरा रूप धून भी होता है । कुवलयरजो०=कुवलयस्य रज, तस्य गन्ध येषां अस्ति इति । तोय क्रीडा०=तोय क्रीडासु निरताना युवतीना स्नानेन तिक्तै. । तिक्त=√तिज् (तेज करना) +क्त ।

श्लोक ३७—स्थातव्य ते=त्वया स्थातव्य=ऐसा होता है किन्तु "कृत्याना कर्तरिवा" इस सूत्र के अनुसार "ते" यह षण्ठी का प्रयोग हुआ है । लप्स्यसे=लभ् धातु से कर्ता मे लृट् लकार ।

श्लोक ३८—पादन्यासै =पादाना न्यासै, क्वणित=√क्वण् (बजना)+क्त । रत्नच्छाया०=रत्नाना छायया खचिता वलय येषा तै । खचित=खच् (उत्पन्न होना)+क्त । क्लान्त=√क्लम् (थकना)+क्त । वेश्या =वेशेभवा वेश्या । वेश+यत् । अथवा वेशेन शोभते । वेश+यत् । आमोक्ष्यन्ते=आ+√मुच् (छोडना)+लृट्, प्रथम पुरुष, बहुवचन, आत्मनेपद । मधुकर०—मधुकर श्रेणिवत् दीर्घातान् ।

श्लोक ३९—उच्चैर्भुजतरुवनम्=उच्चै भुजा एव तरव तेषां वनम् । इति उच्चैर्भुजउरुवनम् अभिलीन=अभि+√ली (लीन होना)+क्त । सन्ध्याया भव इति सान्ध्यम् । प्रतिनव=प्रतिनवानि जपापुष्पाणि तद्वत् रक्तम् । दधान =√धा (धारण करना)+शानच्+पुल्लिग, प्रथमाविभक्ति, एक वचन । आर्द्रनागाजिनेच्छाम्=आर्द्र यत् नागाजिन, तस्मिन् इच्छाम् । शान्तोद्वेग०=शान्त उद्वेग ययोस्ते । शान्तोद्वेगे स्तिमते च नयने यस्मिन् कर्मणि तत् तथा । दृष्टभक्ति =दृष्टा भक्ति यस्य स. । भवान्या=भवस्य पत्नी भवानी । भवानी=भव+आनुक+ई ।

श्लोक ४०—गच्छन्तीनाम्=√गम्+शातृ+स्त्री० ई+षष्ठी बहुवचन । सूचिभेद्यै =सूचिभि भेद्यै । सौदामनी="सुदाम्नि" (मेघे) भवा अथवा सुदाम्ना सहवर्तते इति । सुदामन्+अण्+स्त्री० ई ।

कनक निकष०—कनकस्य निकष तद्वत् स्निग्धया ।

तोयोत्सर्ग०—तोयस्य उत्सर्ग । तोयोत्सर्ग च स्तनित च, ताभ्यां मुखरः । विक्लव—वि+क्लि (जाना)+अच् ।

श्लोक ४१—सुप्त पारा०—सुप्ता पारावता यस्या तस्याम्। खिन्न-विद्युत्कलत्र =खिन्नविद्युदेव कलत्र यस्य स.। √खिद्+क्त=खिन्न। वाहयेत्+√वह् (ले जाना)+णिच्+विधि लिङ्, प्रथम पुरुष एक वचन।

मन्दायन्ते—√मन्द् धातु से "लोहितादिडाज्भ्य" इस सूत्र से क्यष् प्रत्यय और "वाक्यष" इससे आत्मने पद हुआ। सुहृदाम्—शोभन हृदय येषाँ तेषाम्। सु+हृदय—यहाँ हृदय को हृद् हो जाता है।

अभ्युपेत०—अभ्युपेता अर्थस्य कृत्या यैं ते।

अभ्युपेत—अभि+उप+√इ+क्त। कृत्या+√कृ+क्यप्+क स्त्री० आ।

श्लोक ४२—नेयम्+√नी+यत्+नपु सक० प्रथमा० एक वचन। प्रालेया स्रम्—प्रालेयम् एव अस्रम्। द्वितीया, एक वचन। प्रत्यावृत्त—प्रति+आ+√वृत्+क्त+पुल्लिङ्ग, प्रथमा, एक वचन। कर रुधि—करान् रुणद्धि इति कररुत् तस्मिन्। अनलपाव्य०—अनल्पा अभ्यसूया यस्य स।

श्लोक ४३—छायात्मा—छाया च असौ आत्मा च। कुमुद विशदानि–कुमुद वद् विशदानि।

श्लोक ४४—प्राप्त वानीर०—प्राप्ता वानीर शाखा येन तत्। मुक्त रोधो०—मुक्त रोध एव नितम्ब यस्मिन् कर्मणितत् तथा। विवृत+वि+√वृ(ढकना)+क्त।

श्लोक ४५—त्वन्निष्यद०—तव निष्यन्द, तेन उच्छ्वसिता वसुधा तस्य-गन्ध, तस्य सपर्क, तेन रम्य। ध्वनित+√ध्वन् (शब्द करना)+क्त।

दन्तिभि अतिशयितौ दन्तौ अस्य, तै। परिणमयिता—परि+√नम्+णिच्+तृच्+पु ल्लिग, प्रथमा, एकवचन।

श्लोक ४६—नियतवसतिम्—नियता वसति. यस्य तम्। पुष्पमेघी—पुष्पाणा मेघ. पुष्प मेघ अपुष्प मेघ पुष्प मेघ· सपद्यमान कृत आत्मा यस्य स.। स्नपयतु—स्ना+णिच्+लोट् प्रथम पुरुष, एक वचन। इसका दूसरा प्रयोग "स्नापयतु" भी होता है। व्योमगङ्गा–व्योम्नि गङ्गा, तस्या: जलं, तेन आर्द्रा· तैः। अत्यादित्यम्–आदित्य-मतिक्रान्त.। सभृतम्—सम्√+भृ+क्त+नपुंसक, प्रथमा, एक वचन। हुत वह मुखे—वह तीति वह। हुतस्य वहः इति हुत वहः।

श्लोक ४७—ज्योति०—ज्योतिषः लेखा., तासा बलय अस्मिन् अस्तीति। गलितम्+√गल् (गिरना)+क्त+नपुंसक लिङ्ग, द्वितीया विभक्ति, एक वचन। कुवलय दल प्रापि—कुवलपदल प्राप्नोति इति। धौतापाङ्गम्—धौतौ अपाङ्गौ यस्य, तम्।

पावके.—पावकस्य अपत्य पुमान्। पावक+इञ्।

अद्रि ग्रहण–अद्रे. ग्रहण तेन गुरुभि। नर्तयेथा.+√नृत्+णिच्+विधिलिङ्, मध्यम पुरुष, एक वचन।

श्लोक ४८ — उल्लघिताध्वा—उल्लघित. अध्वा येन स. । वीणिभि:—वीणा: एषा सन्ति इति वीणा नि, तैं । सुरभितनया०—सुरभे (कामधेनो.) तनया., तासाम् आलम्भ, तस्मात् जाता, ताम् । मानयिष्यन्+√मन्+णिच्+(भविष्य का) स्य+शतृ+पुल्लिग, प्रथमा विभक्ति, एक वचन । स्रोतोमूर्त्या—स्रोतस मूर्त्ति: तया ।

श्लोक ४६—आदातुम्—आ+√दा (देना)+तुमुन् । अवनते—अव+√नम् (झुकना)+क्त+पुल्लिग, सप्तमी विभक्ति, एक वचन । शार्ङ्गिण:—शृङ्गस्य विकार शार्ङ्गम् तद् अस्य अस्तीति शार्ङ्गी तस्य । गगनगतय:—गगने गति: येषा ते गगनगतय आवर्ज्य—आ+√वृज् (वचना)+ल्यप् । स्थूल मध्य०—स्थूल: मध्येन्द्र नील. यस्य तम् ।

श्लोक ५०—उत्तीर्य=उद्+√तृ (पार करना, तैरना)+ल्यप् । परि-चित०=परिचिता भ्रूलताना विभ्रमा येषा तेषाम् । पक्ष्म०=पक्ष्मणा उत्क्षेप, तस्मात् । उपरिविलसत्=उपरि विलसन्त्य कृष्णसारा: प्रभा· येषा तेषाम् । कुन्द-क्षेपा०=कुन्दानाक्षेपा, तान् अनुगच्छन्ति इति कुन्दक्षेपानुगा, तथा भूता· मधुकरा, तेषा श्रिय मुष्णान्ति इति तथा भूतानाम् ।

श्लोक ५१—क्षत्रप्रधन पिशुनम्=क्षत्रप्रधनस्य पिशुनम् । गाण्धीवधन्वा=गाण्डी (ग्रन्थि:) अस्य अस्य अस्तीति गाण्डीवम् । गाण्डीव धनु यस्य स अर्जुन । "गाण्ड्य जगात्संज्ञायाम्" इस सूत्र से मत्वर्थीय 'व' प्रत्यय हो गया । "वा सज्ञायाम्" इस सूत्र से अनड् का आदेश होकर "गाण्डीवधन्वा" शब्द सिद्ध हुआ ।

श्लोक ५२—हित्वा=√हा (छोडना)+क्त्वा । अभिमतरसाम्=अभिमत: रस· यस्या, ताम् । रेवती०=रेवत्या लोचने अक यस्या. ताम् । समर विमुख·=समराद् विमुख । लाङ्गली=लाङ्गलं अस्य अस्तीति लाङ्गली । सारस्वतीनाम्=सरस्वत्या इमा इति सारस्वत्य, तासाम् ।

श्लोक ५३—अनुकनखलम्=कनखलस्य समीपे इति अनुकनखलम् । "अनु-र्यत्समया" इस सूत्र से अव्ययीभाव समास हो गया । अवतीर्ण=अव+तृ (तैरना)+क्त । सगरतनय०=सगरस्य तनया: इति सगरतनया· तेषा स्वर्गस्य·सोपान पङ्क्तिम । गौरी वक्त्र०=गौर्या वक्त्रे या भ्रकुटिरचना, ताम् इन्दुलग्न०=इन्दौलग्ना ऊर्मय एव हस्ता यस्या: सा ।

श्लोक ५४—पश्चार्धलम्बी=पश्चाद् अर्ध, अथवा अपरस्य अर्ध:, तेन लम्बते इति । अच्छ स्फटिक विशदम्=अच्छ चासौ स्फटिक, तद्वद् विशदम् इति ।

श्लोक ५५—आसीन=√आस् (बैठना) √शानच् । सुरभितशिलम्=सुर-भिता: शिला: यस्य, तम् । अध्वश्रम०=अध्वन: श्रम:, तस्य विनयनं, तस्मिन् ।

निषण्ण==नि+√सद् (बैठना)+क्त, पुलिङ्ग, प्रथमा विभक्ति, एक वचन। शुभ्र-त्रिनयन०+शुभ्रः य त्रिनयनस्य वृषः, तेन उत्खातः यः पङ्कः तेन सह उपमेयाम्।

श्लोक ५६—सरल०—सरलानां स्कन्धाः, तेषा सघट्टनेन जन्मयस्य सः। उल्काक्षपित०—उल्काभिः क्षयिताः चमरीणा वालभाराः येन सः। क्षपित—क्षै (नाश करना)+णिच्+क्त। शमयितुम्—√शम् (शान्त करना)+णिच्+तुमुन्। आपन्नार्ति०—आपन्नाना आर्तेः प्रशमनमेव फल यासा ताः। आपन्न—आ+√पद् (जाना)+क्त। आर्ति—आ+ऋ (जाना)+क्तिन्। प्रशमन्—प्र+√शम्+ल्युट् (अन) सपदः—सम+√पद्+क्विप्+प्रथमा विभक्ति, बहुबचन।

श्लोक ५७—सरम्भोत्पतनरभसाः==सरम्भेण उत्पतने रभसः येषाँ ते तथोक्ता। तुमुलकरका०—तुमुलाना कर काना वृष्टिपातेन अवकीर्णान्—अवकीर्ण—अव+कृ+क्त।

श्लोक ५८—वि+√अञ्ज् (स्पष्ट करना)+क्त, नपुसक लिङ्ग, द्वितीया, एक वचन। दृषदि—दृषद् शब्द की सप्तमी विभक्ति का एक वचन। चरणन्यासम्+चरणयोः न्यासः तम्। अर्धेन्दुमौलेः—अर्धः च असौ इन्दुः च इति अर्धेन्दुः। अर्धेन्दु मौलौ यस्य सः, तस्य। उपचित०—उपचितः बलिः यस्य तम्। उपचित—उप+√चि (चिनना)+क्त। भक्तिनम्रः—भक्तया नम्रः। परियाः—परि+√इ (जाना)+विधि लिङ्ग, मध्यम पुरुष, एक वचन। करणविगमात्—करणस्य विगमः तस्मात्। उद्धूतपापाः—उद्धूतानि पापानि येषा ते। उद्धूत—उद्+√धू (हिलाना)+क्त। कल्पिष्यन्ते—√क्लृप् (समर्थन होना)+लृट्, प्रथम पुरुष, एक वचन। स्थिरगण०—स्थिर गणाना पद तस्य प्राप्तये। श्रद्दधानाः—श्रत्+धा धारण (करना)+शानच्+पुलिङ्ग, प्रथमा विभक्ति, बहु वचन।

श्लोक ५९—शब्दायन्ते—शब्दं कुर्वन्ति इति। शब्द से नाम धातु का लट्, प्रथम पुरुष, बहु वचन। पूर्यमाणाः==√पृ [भरना]+कर्म वाच्य,+शानच्+पुल्लिग, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन। ससक्ताभिः—सम्+सञ्ज् (लगाना)+क्त+स्त्री० आ+तृतीया, बहु वचन। त्रिपुरविजयः—त्रयाणा पुराणा समाहार त्रिपुरम् तस्य विजय। "तद्धितार्थोत्तरपद—" इससे समास हो गया। गीयते—√गै (गाना)+कर्म वाच्य+लट् प्रथम पूरुष, एक वचन। भावी—√भू+णिनिन्+पुल्लिग, प्रथमा, एक वचन।

श्लोक ६०—भृगुपति यशोवर्त्म—भृगुपते. यशस वर्त्म। तिर्यगायाम शोभी—तिर्यग् आयामेन शोभते इति। विष्णोः—वेवेष्टि व्याप्नोति चराचर जगदिति विष्णु. तस्य।

श्लोक ६१—दशमुखभुज०—दशमुखस्य भुजाः तै. उच्छ्वासिता. प्रस्थाना सन्धय. यस्य तस्य। उच्छ्वासित—उत्+√श्वत् (साँस लेना+) क्त। शृगोच्छ्रायैः—

शृगाणा उच्छ्राया: तै: । कुमुदविशदै.–कुमुद वद् विशदै: । वितत्य–वि+तन् (फैलाना)+ल्यप् । त्र्यम्बकस्य—त्रीणि अम्बकानि यस्य स. त्र्यम्बक तस्य ।

श्लोक ६२—स्निग्ध भिन्न०–स्निग्ध भिन्न च यद् अञ्जन, तस्य आभा इव आभा, यस्य, तस्मिन् । सद्य कृत्त०–सद्य: कृत्तस्य द्विरददशनस्य छेदवत् गौरस्य। कृत =√कृत् (काटना)+क्त । स्तिमित नयन०–स्तिमिते नयने, ताभ्या प्रेक्षणीयाम् । स्तिमित–√स्तिम् (जमना)+क्त । प्रेक्षणीय–प्र+√ईक्ष्+अनीय । भवित्रीम्–भू+तृच्+स्त्री०ई+द्वितीया विभक्ति, एक वचन ।

श्लोक ६३—भुजगवलयम्–भुजगस्य वलय तम् । दत्तहस्ता–दत्त: हस्त. यस्यै सा । भगीभक्त्या–भगीना भक्त्या । स्तम्भित०–स्तम्भित. अन्त. जलस्य ओघ: यस्य स: । स्तम्भित–√स्तम्म् (रोकना)+णिच्+क्त । अग्रयायी–अग्रे यातीति अग्रयायी । अग्र+√या+णिनिन् ।

श्लोक ६४—वलय कुलिश०–वलय कुलिशाना उद्घट्टनेन उद्गीर्णं तोय यस्य तम् । उद्गीर्ण–उत्+गॄ (गिरना)+क्त । यन्त्र धारा गृहत्वम्–यन्त्रेषु धारा. यन्त्रधारा, तासाँ गृहत्वम् । भाथये–√भी (डराना)+णिजन्त+विधि लिङ्, मध्यम पुरुष, एक वचन ।

श्लोक ६५—हेमाम्भोज०—हेमाम्भोजानां प्रसवि । प्रसूते इति प्रसवि प्र+√सू (उत्पन्न करना)+णिनि । आददान —आ+√दा (देना)+शानच्+पुंल्लिग, प्रथमा एक वचन । क्षणमुखपट०—क्षण मुखपटेन या प्रीति ताम् । धुन्वन्–√धु (हिलाना) +शतृ+पुलिंग, प्रथमा, एक वचन । कल्पद्रुम .—कल्पाना द्रुम । नाना चेष्टै–नाना चेष्टा येषुतानि तै ।

श्लोक ६६—स्रस्तगंगा०—स्रस्त गगा दुकूल यस्या ताम् । कामचारिन्—कामेन चरति इति, अथवा कामचारोऽस्य अस्तीति । सलिल०—सलिल उद्गिरतीति सलिलोद्गारम् । उच्चैविर्माना—उच्चैः विमानानि यस्यां सा । मुक्ताजाल०—मुक्ताजालै: ग्रथितम् ।

उत्तर मेघ

श्लोक १—विद्युत्वन्तम्–विद्युतोऽस्य सन्तीति विद्युत्वान् तम् । ललित वनिता:—ललिता वनिता येषु ते ।

सचित्रा.—सहचित्रै. वर्तन्ते इति । "ते सहेति तुल्य योगे" इस सूत्र से बहुव्रीहि समास हो गया । "वोपसर्जस्य" इससे सह शब्द का समास हुआ है । अभ्र लिहाग्रा.—अभ्र लिहन्तीति अभ्र लिहानि अग्राणि येषाँ ते तथोक्ता । "वहाभ्रे लिह" इससे खश् प्रत्यय । "अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्" इससे मुम् का आगम हो गया ।

स्निग्ध गम्भीर घोषम्—स्निग्ध: गम्भीर: घोष यस्य तम् । अन्तस्तोयम्—अन्तः अन्तर्गत तोय यस्य यम् ।

श्लोक २—बालकुन्दानुविद्धम्—बाल कुन्दै अनुविद्धम् । अनुवेधो ग्रथनम् । नपुंसके भावे क्त प्रत्यय । लोध्र प्रसव०—लोध्र प्रसवाना रजसा ।

श्लोक ३—नित्य पुष्पा.–नित्यानि पुष्पाणि येषा ते तथा । उन्मत्त भ्रमर-मुखरा'—उन्मत्तै भ्रमरै: मुखरा: । नित्यपद्मा'—नित्यानि पद्मानि यासा तास्तथा । हंस श्रेणी रचित रशना. हस श्रेणीभी रचित रशना: । नित्य भास्वत्कलापा:—नित्यं भास्वन्त' कलापा: तेषा ते तथोक्ता: । केकोत्कण्ठा:—केकामि उत्कण्ठा: । नित्यज्यो-त्स्ना.=नित्यज्यात्सना: येषां ते ।

श्लोक ४—आनन्दोत्थम्—आनन्देन उत्तिष्ठतीति । वित्तेशानाम्√वित्ताना ईशाः इति वित्तेशा: तेषाम् ।

श्लोक ५—ज्योतिश्छाया कुसुम रचितानि—ज्योतिषा छाया' एव कुसुमानि तै. रचितानि । त्वद्गम्भीर०—त्वद्गम्भीर ध्वनिरिव ध्वनि येषा तेषु । रतिफलम्—रति' फलं यस्य तत् ।

श्लोक ६—अमर प्रार्थिता —अमरै. प्रार्थिता । सलिल शिशिरै:—सलिलेन शिशिरै । अनुतटरुहाम् अनुतटं तटेषु रोहन्ति इति तटरूह । क्विप् प्रत्यय । तेषाम् । कनकसिकता० कनकस्य सिकतासु मुष्टिभि: निक्षेपेण गूढै । सक्रीडन्ते–सम्+√क्रीड् "क्रीडोऽनुसपरिभ्यश्च" इससे आत्मने पद हो गया ।

श्लोक ७—नीवी बन्ध०—नीवी सैव बन्धो नीवी बन्धः तस्य उच्छ्वासितेन शिथिलम्। बिम्बाधराणाम्=बिम्बमिव अधरो यासा तासाम्। चूर्णमुष्टिः- चूर्णस्य मुष्टिः। अर्चिस्तुङ्गान्-अर्चिभि. तुङ्गान्। रत्नानि एव प्रदीपा इति रत्न प्रदीपा· तान्।

श्लोक ८—त्वादृशाः—"त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च" इससे यहाँ कञ् प्रत्यय हुआ है। धूमोद्गार०-धूमोद्गारस्य अनुकृतौ निपुणा.।

श्लोक ९—प्रियतम०=प्रियतमाना भुजै उच्छ्वासितानि आलिंगितानि यासाम्। अग ग्लानिम्=अगाना ग्लानि इति अग ग्लानि ताम्। त्वत्सरोध०-त्वत्सरोधस्य अपगमेन विशदै।

श्लोक १०—अक्षय्य०-क्षेतु शक्या-क्षय्या: "क्षय्य जय्यौ शक्यार्थे" इससे निपात हो गया और फिर नञ् समास होने से अक्षय्य शब्द सिद्ध हुआ। अन्तर्भवन०=भवनाना मन्त अंतर्भवनम् 'अव्यय विभक्ति" इससे अव्ययीभाव समास हो गया। अक्षय्या अन्तर्भवने निधयो येषा ते तथोक्ता। विबुधवनिता०=विबुधाना वनिता विबुधवनिता ता एव वारमुख्या. ता एव सहाया येषा ते तथोक्ता। प्रत्यहम्=अहनि अहनि=इति प्रत्यहम्। "अव्यय विभक्ति" इससे अव्ययी भाव समास। रक्त कण्ठै.=रक्त. कण्ठ: येषा ते रक्त कण्ठा· तै।

वैभ्राजाव्यम्—विभ्राजस्य इद वैभ्राजम्। वैभ्राज—इत्याख्या यस्य तत्।

श्लोक ११—गत्युत्कम्पात्=गत्या उत्कम्पः तस्मात्। अलक पतितै.=अलकेभ्य. पतितै। पत्रच्छेदै:=पत्राणा छेदै। कर्ण विभ्र शिभि.=कर्णेभ्य. विभ्रश्यन्तीति कर्ण=विभ्रंशीनि तै. च। कनक कमलै.=कनकस्य कमलै.।

स्तनपरिसर०—स्तनयो. परिसरः तत्र छिन्नानि सूत्राणि येषा तै.।

श्लोग १२—विभ्रमादेशदक्षम्—विभ्रमाणा आदेशे दक्षम्।

चरण कमल०—चरण कमलयो· न्यासस्य योग्यम्।

लाक्षारागम्—लाक्षा एव राग तम्।

श्लोक १३—दिनकरहय०=दिनकरस्य हया। तैः स्वर्धान्ते इति। वाहा.=वाह्यते अनेन इति वाह.। ते। अग्रण्य.—अग्र+√नी (ले जाना)+क्विप्=अग्रणी शब्द से प्रथमा विभक्ति का वहुवचन। चद्रहास०-चन्द्रहासस्य व्रणानि एव अङ्का तैः।

श्लोक १४—धनपति सखम्—धनपते· सखा इति धनपति सख तम्। "राजाह सखिभ्यष्टच्।"

कामिलक्ष्येषु=कामिन एव लक्ष्याणितेषु। चतुरै वनिता०=चतुराश्च ता वनिताश्च तासां विभ्रमै·।

श्लोक १५—धनपति गृहान् उत्तरेण—"एनबन्यतरस्या मदूरेऽपञ्चम्या·" इस सूत्र से एनप् प्रत्यय और "एनपा द्वितीया" इस सूत्र से "गृहान्" मे द्वितीया विभक्ति।

अस्मदीयम—अस्माक इद इति अस्दीयम् । "वृद्धाच्छ" इति पक्षे छ प्रत्ययः। हस्तप्राप्य०-हस्तेन प्राप्यै स्तबकै नमित ।

श्लोक १६—मरकत शिला०—मरकत शिलाभि बद्ध सोपान-मार्ग-यस्याः सा तथोक्ता । स्निग्ध वैदूर्य०=विदूरे भवा वैदूर्या "विदूराञ्ज्य" इससे ञ्य प्रत्यय। वैदूर्याणा विकारा वैदूर्याणि । विकारार्थ मे अण् प्रत्यय । स्निग्धानि वैदूर्याणि नालानि येषा तै ।

श्लोक १७—कनक कदली०-कनककदलीना वेष्टने प्रेक्षणीय । उपान्त०= उपान्तेषु स्फुरिता तड़ित यस्य तत् तथोक्तम् ।

श्लोक १८—कुरबकवृते =कुरबका एव वृति यस्य तस्य । माधवी मण्ड-पस्य=मधौ भवा माधव्य तासां म डप तस्य ।

श्लोक १९—तन्मध्ये=तस्य मध्ये इति । अनति प्रौढ०=अनति प्रौढाना वशाना प्रकाश इव प्रकाशो येषा त । स्फटिकफलका=स्फटिक फलक यस्या सा । शिञ्जावलयसुभगै =शिञ्जा=शिञ्जि धातु से भिदादित्वादङ् । यह शिञ्जिधातु तालव्यादि है दन्त्यादि नही शिञ्जा प्रधानानि वलयानि तै सुभगा तै । यष्टिका= अध्यास्ते । "अधिशीङ्स्थासाकर्म" इस सूत्र से कर्म मे द्वितीया विभक्ति ।

श्लोक २०—लिखित वपुषौ=लिखिने वपुषी ययो तौ तथोक्तौ । दृष्ट्वा= √ दृश्+क्त्वा । क्षामच्छायम्=क्षामा छाया यस्य तत् ।

श्लोक २१—कलभतनुताम्=कलभस्यतनुरिव तनु यस्य तस्य भाव ताम् । शीघ्रसपात हेतो =शीघ्र सपात एव हेतु· तस्य । "षष्ठी हेतुप्रयोगे' इस सूत्र से हेतु मे विभक्ति का प्रयोग हुआ है । अल्पाल्पभासम्=अल्पा भा यस्या ताम् । "प्रकारे गुणवचनस्य" इससे द्विरुक्ति । खद्योताली०-खद्योताना आली तस्या विलसितेन निभाम् । विद्युदुन्मेष०=विद्युदुन्मेष स एव दृष्टि ताम् । अन्तर्भवन पतिताम्= भवनस्यान्तरन्तर्भवन तत्र पतिताम् ।

श्लोक २२—तन्वी—√तनु+"वोतोगुणवचनात्" इस सूत्र से ङीष् । शिख-रिदशना—शिखराण्ययेषा सन्तीति शिखरिण । शिखरिण दन्ता यस्या सा । पक्व-बिम्बाधरोष्ठी—पक्व बिम्ब इव अधरोष्ठो यस्या सा । "नासिकोदरौष्ठ" इससे ङीष् । चकितहरिणी०—चकितहरिण्या प्रेक्षणानीव प्रेक्षणानि यस्या सा तथोक्ता ।

श्लोक २३—चक्रवाकी—यहाँ चक्रवाक शब्द से "जातेर स्त्री विषयादयोप-धात्" इससे ङीष् प्रत्यय । शिशिरमथिताम् शिशिरेण मथिता इति ।

श्लोक २४—प्रबलरुदित०—प्रवलरुदितेन उच्छूने नेत्रे यस्य तत् । उच्छूनेति श्वयतेः कर्तारिक्त । "ओदितश्च" इससे निष्ठानत्व, "वचिस्वपि" इससे सम्प्रसारण । "सप्रसारणाच्च" इससे पूर्वरूप । "हल" इससे दीर्घ "च्छ्वो शूडनुनासिके च" इस सूत्र से ऊठ् के आदेश होने पर उच्छून शब्द सिद्ध होता है । भिन्नवर्णाधरोष्ठम्— भिन्नवर्ण· अधरोष्ठः यस्य तत् ।

श्लोक २५—नलिव्याकुला=बलिषु व्याकुला । विरहतनु=विरहेण तनु । कच्चिद्भर्तु स्मरसि="भर्तार स्मरसि" ऐसा पाठ होना चाहिये था किन्तु "अधीगर्थद-येशा कर्मणि" इस सूत्र से कर्म मे षष्ठी विभक्ति हो गई । प्रिया=प्रीणातीति प्रिया । "इगुपधज्ञाप्रीकिर क" इस सूत्र से क प्रत्यय । पुरानिपतति="यावत्पुरानिपात-योर्लट्" इससे लट् लकार हुआ है ।

श्लोक २६—विरचितपदम्=विरचितानि पदानि यस्य तत् तथोक्तम् । द्गातुकामा=द्गातु कामो यस्या सा ।। "तु काममनसोरपि" इससे मकार का लोप हो गया ।

श्लोक २७--विरह दिवस स्थापितस्य=विरहस्य दिवस तस्मात् स्थापितस्य । देहलीदत पुष्पै=देहली द्वारस्य आधार दारु । तत्र दत्तानि यानि पुष्पाणि तै । हृदयनिहितारम्भम्=हृदये निहित आरम्भ यस्य तम् ।

श्लोक २८—सव्यापाराम्=व्यापारेण सहिता इति सव्यापाराम् । तथा=तेन प्रकारेण । "प्रकारवचने थाल्" इस सूत्र से थाल् प्रत्यय । अवनिशयनाम्=अवनि रेव शयन यस्या ताम् ।

श्लोक २९—आधिक्षामाम्=आधिना क्षामा इति आधिक्षामाम् । क्षायते कर्तरि क्त । "क्षायोम" इससे निष्ठातकार को म-हो गया । सनिषण्णैकपार्श्वाम्=सनिषण्ण एक पार्श्वं यस्या ताम् । प्राची मूले=प्राच्या. मूले । कलामात्रशेषाम्=कलामात्र कलैव शेषो यस्या ताम् । इच्छारते=इच्छया कृतानि रतानि तै । विरहमहतीम्=विरहेण महतीम् । उष्णै अश्रुभि यापयन्तीम्=यातेर्ण्यन्ताच्छतृ प्रत्यय "अर्तिह्री" इससे पुगागम ।

श्लोक ३०—अमृत शिशिरान्=अमृतवत् शिशिरान् न प्रबुद्धा न सुप्ताम्=उभयत्रापि नञर्थस्य न शब्दस्य सुप्सुपेति समास ।

श्लोक ३१—आगण्डलम्बम्=सुप्सुपेति समास । अधर किसलयक्लेशिना=अधर किसलय क्लेशयति क्लिश्नानीति वा तेन तथोक्तेन । क्लश्यतेर्ण्यन्तात्=क्लिश्नातेरण्यन्ताद्वा ताच्छील्ये णिनि । ननयसलिल०—नयन सलिलोत्पीडेन रुद्धावकाशाम् ।

श्लोक ३२—विरह दिवसे=विरहस्य दिवस विरह-दिवस तस्मिन् । शापस्यान्ते—शापस्य अन्त इति शापान्त तस्मिन् । हित्वा=√हा+क्त्वा ।

श्लोक ३३—सन्यस्ताभरणम्=सन्तस्तानि आभरणानि येन तत् । "गात्रम्" का यह विशेषण है । दु ख दु खेन='प्रकारे गुणवचनस्य" इससे द्विर्भाव हो गया । मो [illegible] = द्विकर्मसु पचादीनामुपसख्यानम्" इससे मुच् धातु को पचादि होने के कारण द्विकर्मत्व हो गया ।

श्लोक ३४—सभृत स्नेहम्=सभृत स्नेह यस्मिन् तत् (मन का विशेषण है) वाचालम्="आल जाटचौ बहुभाषिणि" इससे आलच् प्रत्यय हो गया। सुभगमन्य-भाव =सुभग आत्मान मन्यते इति सुभगमन्य "आत्ममानेखश्च" इस सूत्र से खश्प्रत्यय। 'अरुर्द्विषत्=" इससे सुमागम। तग्यभावः सुभगमन्यभावः।

श्लोक ३५—रुद्धपाङ्ग प्रसरम्=रुद्ध अपाङ्गयो प्रसरा यस्य तत् तथोक्तम्। अञ्जनस्नेहशून्यम्=अञ्जनेन स्नेह तेन शून्यम्। विस्मृतभ्रू विलासम्=विमृत भ्रू विलासः येन तत्। चलकुवलयश्रीतुलाम्=चलस्य कुवलयस्य श्रिया तुलाम्।

श्लोक ३६—दैवगत्या=गति दैवगति तया। सम्भोगान्ते=सम्भोगस्य अन्तः तस्मिन्। हस्यसवाहनावाम्=यस्तेन सवाहनानाम्।

श्लोक ३७—लब्धनिद्रासुखा=लब्ध निद्राया सुख यया तादृशी। स्तनित-विमुखः स्तनिते विमुख गाढोषगूढम्=नपुंसके भावे क्त सद्य कण्ठच्युत भुजलताग्रन्थि=सद्य. कण्ठात् च्युत ग्रन्थि. यस्य तत्।

श्लोक ३८—स्वजल कणिका शीतलेन=स्वजल कणिकाभि· शीतलेन। स्तिमितनयनाम्=स्तिमिते नयने यस्या ताम्। विद्युद्गर्भ विद्युद् गर्भः यस्य स। प्रक्रमेथा·=प्रपूर्वक क्रम् धातु से "विध्यर्थेलिङ्" लिङ्लकार मे यह रूप है। 'प्रोपाम्पभ्या समर्थाभ्याम्" इस सूत्र से आत्मने पद हो गया।

श्लोक ३९—अविधवा=विधवा न भवतीति अविधवा। हृदय निहितै = हृदये निहितै·। अवला वेणि मोक्षोत्सुकानि=अबलाना वेणय तासा मोक्षे उत्सुकानि।

श्लोक ४०—पवनतनयम् पवनस्य तनयः इति पवनतनयः तम्। मैथिली= मिथिलायां भवा इति मैथिली। उत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया=उत्कण्ठया उच्छ्वसिम् हृदय यस्याः सा। श्रोष्यति=श्रु धातु से लृट् लकार मे। कान्तोदन्त =कान्ताया. उदन्त इति कान्तोदन्त.।

श्लोक ४१—आयुष्मन्=आयु अस्य अस्तीति आयुष्मान्। उसके सम्बोधन मे आयुष्मान्। प्रशसाया मतुप् प्रत्यय·। अव्यापन्न =न व्यपन्नः इति कव्यापन्न। वियुक्त =युज्+वि+क्त। सुलभा विपद् येषा तेषाम्।

श्लोक ४२—रुद्धमार्ग=रुद्ध· मार्ग यस्य स। समधिकतरोच्छ्वसिना= समधिकतर उच्छ्वसिति इति समधिकतरोच्छ्वासि तेन। विशति=विश् धातु से लट् लकार मे।

श्लोक ४३ आनन स्पर्श लोभात्=आननस्य स्पर्शे यः लोभ तस्मात्। उत्कण्ठा विरचितपदम्=उत्कण्ठाया विरचितानि पदानि यस्य तत् तथोक्तम्।

श्लोक ४४—चकित हरिणी प्रेक्षणे=चकिताना हरिणीना प्रेक्षण तस्मिन्। वक्त्रच्छायाम्=वक्त्रस्य छाया ताम्।

श्लोक ४५—प्रणय कुपिताम्=प्रणयेन कुपिताम्। चरणपतितम्=चरणयो,

पतित इति चरणपतितम् । नौ=अस्मद् शब्द से नावादेश । "युष्मदस्मदोः षष्ठी चतुर्थी द्वितीयास्थयोर्वा नावौ" इस सूत्र से नावादेश होता है ।

श्लोक ४६—आकाश प्रणिहतभुजम्=आकाशे प्रणिहतभुजम् । स्वप्न सदर्शनानि=स्वप्ने सदर्शनानि तेषु । निर्दयाश्लेषहेतो निर्दयाश्लेष स एव हेतु तस्य । मुक्तास्थूला मुक्ता इव स्थूला । तरु किसलयेषु=तरूणा किसलयेषु ।

श्लोक ४७—भित्वा=भिद्+क्त्वा । तत्क्षीर स्रुति सुरभय =तेषा देवदारु द्रुमाणा क्षीर स्रुतिभि सुरभयः । तुषाराद्रिवाता =तुषाराद्रे वाता इति । स्पृष्टम्—√स्पृश्+क्त ।

श्लोक ४८—दीर्घयामा=दीर्घा यामा यस्यां सा । मन्दमन्दातपम् मन्द-मन्दो मन्द प्रकार "प्रकारे गुण वचनस्य" इससे द्विरुक्ति "कर्म धारय वदुत्तरेषु" इति कर्म धारय वद्भावात्सुपो लुक् ।

श्लोक ४९—आत्मान आत्मनैव="प्रकृत्यादिभ्य उपसख्यानम्" इससे तृतीया । मागमः=गमेर्माडि लुड् । "न माड्योगे" इत्यडागमाभाव । चक्रनेमि=क्रमेण चक्रस्य नेमिः तस्या क्रमेण ।

श्लोक ५०—शापान्त =शापस्य अन्त इति शामान्तः शार्ङ्गम् पाणौयस्य स तस्मिन् । "सप्तमी विशेषणे" इससे बहुव्रीहि समास । भुजगशयनात्=भुजग एव शयन तस्मात् । विरह=गणितम्=विरहे गुणितम् आत्माविलाषम्=आत्मनो आवयोः अभिलाष इति । परिणत शरच्चन्द्रिकासु परिणता शरच्चन्द्रिका यासा तासु । निर्वेक्ष्याव =विशातेर्लृट् ।

श्लोक ५१—कण्ठलग्ना=कण्ठे लग्न । गत्वा=√गम्+त्वा=दृष्ट दृश+क्त ।

श्लोक ५२—अभिज्ञानदानात्=अभिज्ञायते अनेन इति अभिज्ञान तस्य दानात् । विदित्वा√=विद्+त्वा । माभू भवते लुंड् "ना माड्योगे' इति अडागम प्रतिषेध

श्लोक ५३—प्रथम विरहोदग्रशोकाम्—प्रथम विरहेण उदग्र शोकः यस्या त म् । त्रिनयन वृषोत्खात कूटात्=त्रिनयनस्यवृषेण उत्खाता कूटा यस्य तस्मात् । साभिज्ञान प्रहित कुशलै =साभिज्ञान प्रहित कुशल येषुतै । तद्वचोभि.—तस्या वचोभि । कुन्द प्रसव शिथिलम्=कुन्दस्य प्रसवः इति कुन्दप्रसवः तद्वत् शिथिलम् । धारयेथा = √धृ धातु से प्रार्थना मे लिङ् लकार ।

श्लोक ५४—बन्धु कृत्यम्=बन्धोः कृत्यम् ।

श्लोक ५५—सौहार्दात्="हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वे पदस्य च" इससे उभय पद वृद्धि । अनुचित प्रार्थना वर्तिन.—अनुचिता या प्रार्थना तत्र वर्तिन. । सभृत श्रीः= सभृता श्रीः येन स । मा भूत्=माडीत्याशिषि लुड् । देशान् विचर=प्रायः देशेषु विचर – ऐसा लिखा जाता है किन्तु "देश काला ध्वगन्तव्या कर्म सज्ञाह्यकर्मणाम्" इ.के अनुसार "देशान्' यह कर्मत्व की प्राप्ति हो गई है ।

श्लोक सूची

संकेत—"१" से पूर्व मेघ और "२" से उत्तर मेघ समझना चाहिए।

परिशिष्ट

'मेघदूत' सस्कृत साहित्य का अमूल्य रत्न है। महाकवि कालिदास की कमनीय कीर्तिका स्तम्भ है। कवि की प्रखर प्रतिभा, स्वाभाविकता एव मौलिकता का ज्वलन्त उदाहरण है। इस पर विद्वानो ने कई टीकाये लिखी है बहुत से निबन्ध और आलोचनाये लिखी है। पुस्तक की उपयोगिता एव उपादेयता की दृष्टि से हम कुछ विद्वानो के 'मेघदूत' पर लिखे हुए निबन्ध यहाँ प्रस्तुत करते है। सस्कृत के उद्भट विद्वान्, परम मेधावी, महान् चिन्तक श्रद्धेय आचार्य सीताराम चतुर्वेदी जी ने 'मेघदूत की महत्ता' नामक पाण्डित्यपूर्ण लेख लिखा है। वह इस प्रकार आरम्भ होता है—'किसी प्राचीन जीवन-रसिक,' सहृदय पुरुष ने अपने जीवन की उत्कट अभिलाषाओ का वर्णन करते हुए बडी तन्मयता के साथ कहा है—

कालिदास-कविता नववयः माहिष दधि शर्करं पयः
एण मांस मबला सुकोमला सभवन्तु मम जन्म-जन्मनि ॥

(मुझे इस भवचक्र मे चाहे जितनी बार जन्म लेना पडे तब भी मुझे स्वीकार है यदि प्रत्येक जन्म मे मुझे कालिदास की कविता, नई चढती हुई जवानी, भैंस का जमा दही, शक्कर पडा हुआ दूध, हरिण का मास और कोमल नवेली प्राप्त होती रहे।) फारसी के प्रसिद्ध कवि उमर खैय्याम ने भी कुछ इसी प्रकार की इच्छा प्रकट की है कि मेरे पास साकी हो, वृक्ष की छाया हो, मदिरा से भरी हुई सुराही और प्याला हो और हाथ मे पुस्तक हो। किन्तु उमर खैय्याम ने उस पुस्तक का नाम स्पष्ट नही बताया है। किन्तु मुझे विश्वास है कि यदि उमर खैय्याम ने कालिदास की कविता का अनुवाद पढा या सुना होगा तो निश्चय ही उसने मेघदूत की पोथी ही चाही होगी। जिस भारतीय रसिक ने अपनी सम्पूर्ण जीवन की अभिलाषाओ मे सर्वप्रथम स्थान कालिदास की कविता को दिया है उसने निश्चय ही रघुवश और कुमार-सम्भव नही, अभिज्ञान शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय और मालविकाग्नि मित्र भी नही, ऋतुसहार भी नही, केवल मेघदूत ही मॉगा होगा क्योकि कविता तो केवल मेघदूत ही है और तो महाकाव्य है या स्फुट मुक्तक है।

विश्वनाथ कविराज ने अपने साहित्य दर्पण मे 'वाक्य रसात्मक काव्यम्' कहकर काव्य की जो परिभाषा बताई है और पण्डितराज जगन्नाथ ने अपने रस-गगाधर मे जिस काव्य को 'रमणीयार्थ प्रतिपादक· शब्दः' कहकर स्मरण किया है वह निश्चय ही कोई अलौकिक चमत्कार और रस से पूर्ण कृति ही हो सकती है जिसके सम्बन्ध मे कहा गया है—

तंत्रीनाद, कवित्तरस, सरस राग, रतिरंग।
अनबूड़े बडे, तरे, जे बूड़े, सब अग ॥

(तन्त्रीनाद, कविता का रस, मनोहर राग और कामक्रीडा मे जो नही डूबे वे ही डूब गये, उनका जन्म निरर्थक हुआ और जो उनमे भरपूर डूब गये, रम गए उन्ही का जीवन सार्थक है।) यद्यपि हास्य, अद्भुत, करुण, वीर, रौद्र, भयानक, बीभत्स और शान्त भी रस कहलाते और माने जाते है किन्तु शृगार तो रसराज है एकमात्र रस है। 'शृङ्गारैक रस ।' इस शृगार से ओत-प्रोत यदि कालिदास का कोई काव्य है तो वह एकमात्र मेघदूत है। काव्यशास्त्र-मर्मज्ञ भलीभाँति जानते है कि शृगार के दो पक्ष होते है—सयोग और वियोग, केवल सयोग शृगार को हमारे यहाँ अधूरा और कच्चा माना गया है—

न विना विप्रयोगेन संयोग पुष्टिमश्नुते ।
कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् रागोविवर्धते ।।

(विप्रलभ के बिना शृगार पुष्ट ही नही होता क्योकि वस्त्र आदि को जितने कसैले पदार्थ मे डुबो लिया जाता है उतना ही अच्छा उस पर रग चढता है) इसी का समर्थन करते हुए एक उर्दू के कवि ने कहा है—

जो मजा इन्तजार मे देखा,
वह नही वस्लेयार मे देखा ।

प्रिय की प्रतीक्षा मे जो आनन्द है वह उससे मिलने मे नही।) सस्कृत के एक कवि ने किसी विरही से कहलाया है—

संगम-विरह-विकल्पे वरमिह विरहो न संगमस्तस्या ।
अविरह काले सैका त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे ।।

(सगम और विरह मे से मुझे एक चुनना हो तो सगम की अपेक्षा मैं विरह को ही अच्छा समझता हूँ क्योकि सगम के सगम तो वह केवल एक ही होती है किन्तु विरह मे तो यह सपूर्ण त्रिभुवन ही प्रियमय प्रतीत होने लगता है) उसकी अवस्था यह हो जाती है—'जिधर देखता हूँ तू ही तू है'। प्रिया की इस महत्ता का वर्णन करते हुए उर्दू के एक कवि ने तो पराकाष्ठा दिखला दी है—

माशूक के जलवे को महशर मे कोई देखे ।
अल्लाह भी मजनू को लैला नजर आता है ।।

(प्रिय का प्रभाव देखना हो तो प्रलय के अन्त मे न्याय के दिन देखे। तब भी प्रेमी की निष्ठा इतनी प्रबल होती है कि मजनू को ईश्वर भी लैला ही प्रतीत होता है।) ऐसा ही अधीर अनन्य और अज्ञात प्रेमी वह यक्ष था जिसका नाम भी कालिदास ने नही लिया है, केवल कश्चित् (कोई) कहकर उसका सकेत भर दे दिया है क्योकि हमारे यहाँ नीतिशास्त्र मे कहा गया है—

गुरुद्वेषी कृतघ्नश्च कृपणो शप्तहिंसकौ ।
निन्दकोऽपत्य विक्रेता न ह्येतान् नामतः स्मरेत् ।।

(गुरु से द्वेष करने वाले, कृतघ्न, शापग्रस्त, हिंसक, कृपण, दूसरों की निन्दा करने वाले और सन्तान-विक्रेता इनका कभी नाम नही लेना चाहिए।) मेघदूत का यक्ष भी 'शापेनास्तगमित महिमा' (शाप के कारण समाप्त हो गई हुई महिमा वाला) था जो 'धनपति क्रोधविश्लेषित' (कुबेर के क्रोध के कारण एक वर्ष के लिये अपनी प्रिया से वियुक्त होकर रामगिरि पर पडा हुआ था, जिसका वर्णन कालिदास ने अत्यन्त करुणा के साथ किया है।

कश्चित्कान्ता विरह गुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः
शापेनास्तगमित महिमा वर्षभोग्येण भर्तुः।
यक्षश्चक्रे जनकतनया-स्नान पुण्योदकेषु,
स्निग्धच्छाया तरुषु वसति रामगिर्याश्रमेषु॥

(पूर्व० मेघ० १)

(अपनी कान्ता मे अतिशय अनुरक्त कोई यक्ष अपना कर्तव्य ठीक प्रकार पालन नही कर पाता था। (कार्तिक शुक्ला की देवोत्थान्या एकादशी के दिन) इसने अपने स्वामी कुबेर के कार्य मे ऐसी ढिलाई कर दी कि उसे कुबेर ने शाप दे डाला कि जिस कान्ता के मोह मे पडकर तू अपने कर्तव्य मे प्रमाद करता है उससे तू एक वर्ष तक दूर पडा रह।) यह घटना देवोत्थान्या एकादशी को ही हुई थी। इसका प्रमाण स्वय मेघदूत के अन्त मे दिया गया है—

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्ग पाणौ।
मासानन्यान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा॥

(उ० मेघ० ५।३)

(देखो! अगली देव उठनी एकादशी को जब विष्णुभगवान् शेष शय्या से उठेंगे उसी दिन मेरा शाप भी समाप्त हो जायगा। इसलिए इन चार महीनो को भी किसी प्रकार आँखे मूँदकर बिता डालो।)

और वह शाप भोगने के लिए अलका से चलकर कैलाश, मानसरोवर, क्रौंचरन्ध्र, कनखल, ब्रह्मावर्त, कुरुप्रदेश, दशपुर, उज्जयिनी, दशार्ण, अवन्ती, वेत्रवती, चर्मण्वती, आम्रकूट, रेवा, नीचपर्वत और मालदेश होता हुआ कामदगिरि चित्रकूट (रामगिरि) पहुँचा और वही रह गया—

तस्मिन्नद्रौ कतिचिद बला विप्रयुक्तः स कामी।
नीत्वा मासान् कनकवलय भ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः॥

(उस पर्वत पर अपनी पत्नी से बिछुडे हुए उस कामी ने कुछ महीने काट दिए जिसके हाथ का सोने का कगन विरह मे ढीले होने के कारण निकल गया।)

यहाँ पुन कामी कहकर पत्नी मे उसकी आसक्ति और भी दृढ करके स्पष्ट कर दी है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी परम निष्ठा के लिए कामी को ही आदर्श माना

है और राम मे अपनी निष्ठा का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए उन्होने यही कहा है—

कामिहि नारि पियारी जिमि, लोभिहि जिमि प्रिय दाम ।
श्री रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहि राम ।।

(जैसे कामी को स्त्री प्यारी होती है, लोभी को पैसा प्यारा होता है, उसी प्रकार श्रीराम भी मुझे प्यारे लगे ।)

इसीलिए कालिदास ने भी उसे 'कामी' से विशेष-विशिष्ट करके उसकी एकान्त आसक्ति को स्पष्ट कर दिया है । और उसी कामिता के कारण ही अपनी सुध-बुध भूले हुए यक्ष ने मेघ को ही अपना दूत बना डाला ।

इस विरही यक्ष ने अपने विरह के दिन काटने के लिए स्थान भी चुना रामगिरि । बहुत से विद्वानो का मत है कि यह रामगिरि वास्तव मे चित्रकूट नही वरन् नागपुर के पास की 'रामटेक' पहाडी या रीवाँ राज्य की 'रामगढ़ पहाडी' है किन्तु यह उनका भ्रम है । उसका कारण यह है कि 'जनक-तनया-स्नान पुण्योदकेषु' और 'स्निग्ध-छाया-तरुषु' वाले आश्रम चित्रकूट पर ही है, रामटेक पर नही । सुन्दर ताल, मन्दाशकिनी का प्रवाह, पहाडी धाराएँ, घने वृक्ष, हरियाली कु जे और ऋषियो के आश्रम चित्रकूट पर ही है, रामटेक पर नही, क्योकि रामटेक तो सूखी पहाडी है जहाँ कभी-कभी जल के भी दर्शन नही होते है । ऐसी सूखी पहाडी पर यक्ष क्यो रहने जायगा । इस सम्बन्ध मे रहीम का यह दोहा भी विचारणीय है—

चित्रकूट पै रमि रहै, रहिमन अवध-नरेस ।
जा पर बिपदा परत है, सो आवत इहि देस ।।

अवध के नरेश (रहीम) आकर चित्रकूट पर बस गए क्योकि जिस पर विपत्ति पडती है वह यही आता है इस दोहे मे जहाँ अवध-नरेश (अवध के नवाब) अब्दुलर्रहीम खानखाना ने अपने आपत्काल के निवास की सूचना दी है वही विपद्ग्रस्त अवध-नरेश राम और मेघदूत के वियुक्त यक्ष की ध्वनि भी समाविष्ट की है । इतिहास भी इसी का साक्षी है । वाल्मीकीय रामायण के अनुसार अयोध्या से चलकर राम चित्रकूट मे रहे और फिर भरत को अपनी पादुका दे-देने के पश्चात् वे ऋषियो के साथ अत्रि के आश्रम मे पहुँचे । वहाँ से दण्डकारण्य मे प्रविष्ट होकर विराट का वध करते हुए शर-भग ऋषि के आश्रम मे पहुँचे । वहाँ से चलकर सुतीक्ष्ण के आश्रम मे एक रात्रि निवास करके फिर धर्मभृत मुनि के पास रहकर, माड-कर्णि द्वारा निर्मित पचाप्सर नामक (पपासर) सरोवर का प्रभाव सुनकर ऋषियो के आश्रम मे रहते हुए फिर सुतीक्ष्ण के आश्रम मे लौटे और वहाँ से अगस्त्यजी के आश्रम मे पहुँचे । फिर अगस्त्य मुनि की आज्ञा से वे गोदावरी के तीर पर पंचावटी मे रहने लगे । इस प्रसङ्ग मे कही भी राम-टेक या किसी अन्य ऐसे स्थान का विवरण ही नही आया जहाँ सीताजी ने स्नान किया हो और जिस मेखला-पर राम के चरण अकित हो । ऊपर जिन ऋषियो का वर्णन है

उनमे से किसी का आश्रम भी रामटेक की ओर नही था।

यदि अन्त साक्ष्य की दृष्टि से विचार किया जाय तो स्वय कालिदास ही इस सम्बन्ध मे सबसे बडे प्रमाण है। उन्होने स्वय रघुवश मे लिखा है—

चित्रकूटवनस्थ च कथितस्वर्गति गुरोः।

(रघु० १२।१५)

रामस्त्वासन्न देशत्वाद् भरतागमनं पुनः।
आशंक्योत्सुक सारंगां चित्रकूट स्थलीं जहौ ।।

(रघु० १२।२४)

इसमे भी चित्रकूट मे ही रहने की बात आई है। (चित्रकूट मे ही उन्होने अपने पिता के स्वर्गवास का समाचार सुना और चित्रकूट का परित्याग भी उन्होने इसलिए किया कि वह प्रदेश अयोध्या के पास था। उन्हे आशका थी कि भरत फिर न कही आ जायँ) वे चित्रकूट छोडकर चल दिए और फिर अनेक ऋषि कुलो में होते हुए, अत्रि मुनि का दर्शन करते हुए, विराध का वध करते हुए अगस्त्य जी की आज्ञा के अनुसार गोदावरी के तट पर पचवटी मे रहने लगे। अत वाल्मीकि और कालिदास दोनो ने राम के निवास के लिए दो ही स्थान माने हैं और वे हैं चित्रकूट और पचवटी। दूसरा प्रमाण यह है कि कुटज (इन्द्रजव) का फूल केवल विन्ध्य-मेखला मे ही होता है रामटेक पर उसका नाम तक नही है। अत यक्ष का प्रवास स्थान निश्चय ही चित्रकूट है। यह भी विचित्र बात है कि कालिदास ने 'राम गिर्याश्रमेषु' और 'ब्रूया एव तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थ' दोनो स्थानो पर रामगिरि' का ही नाम लिया है, चित्रकूट का नही और उसका कारण यही है कि अभिशप्त यक्ष के निवास के कारण महकवि चित्रकूट की मर्यादा की रक्षा के लिये उसका नाम यक्ष के सम्बन्ध मे लेकर उसे रामगिरि कहते है। 'जनक-तनया-स्नान पुण्योद केषु' और 'वन्द्यै पुसा रघुपति-पदैरङ्कित मेखलासु' कहकर भी चित्रकूट का ही परिचय दिया गया है क्योकि राम जब लका से लौट रहे है तब भी उन्होने अत्यन्त भावुक होकर चित्रकूट का ही वर्णन करते हुए कहा है—

धारास्वनोद्गारिदरी मुखोऽसौ शृङ्गाग्र लग्नाम्बुदवप्रपंक ।
बध्नाति मे बन्धुरगात्रि चक्षु दृप्तः ककुद्मानिव चित्रकूट ।।

(रघु० १३ ४७)

(हे सुन्दरी! मस्त साँड के समान यह चित्रकूट मुझे बडा सुहावना लग रहा है। गुफा ही इसका मुख है, जल की धारा की ध्वनि ही डकार है, चोटी ही सीगे है और छाए हुए बादल ही सीगो पर लगा हुआ कीच है। अब इसे मिलाइए—'वप्रक्रीडा परिणतगज प्रेक्षणीय ददर्श' अन्तर इतना ही है कि मेघदूत मे हाथी की वप्र-क्रीडा का वर्णन है और रघुवश मे डील-डौल वाले साँड का। अत निश्चय ही वह यक्ष चित्रकूट

पर ही था रामटेक पर नही। सबसे बडी बात तो यह है कि चित्रकूट के ग्रास-पास गाँवो मे रहने वाले ग्रादमी उसे रामगिरि कहते है चित्रकूट नही।

उस चित्रकूट पर उसने ग्राठ महीने बिताए। उस दशा मे वह सूखकर काँटा हो गया ग्रौर इतना दुबला हो गया कि सोने का कडा उसके हाथ से निकल गया। विरह मे कृशता का वर्णन विश्व के सभी साहित्यो मे किया गया है। ग्रौर इसकी कृशता की व्यजना करने के लिए ग्रतिशयोक्ति या मुबालगे का प्रयोग किया गया है। सीता जी की विरह-दशा का वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी ने सीता जी से कहलाया है—

ग्रब जीवन कै है कपि ग्रास न कोइ।
कन गुरिया के मु दरी कंगन होइ॥

(बर० रामा०)

(हे हनुमान! ग्रब जीवन की कोई ग्राशा नही है, क्योकि विरहजन्य दुर्बलता के कारण कनिष्ठका उँगली की ग्रँगूठी को ग्रब कगन बन गई है।) ग्रपभ्र श के एक कवि ने तो ग्रति ही कर दी है ग्रौर कहा है—

वायसु उड्डावन्ति ग्रए, पिउ दिट्ठउ सहसत्ति।
ग्रद्धा वलया महिहि गय, ग्रद्ध फुट्टि तडत्ति॥

ग्रपने प्रिय के ग्रागमन के शकुन के लिए कोई विरहिणी कौग्रा उडा रही थी। उस उडाने मे हाथ झटकते हुए दुर्बलता के कारण ग्राधी हाथ की चूडियाँ हाथ से निकल कर बाहर गिर गईं। इतने मे विदेश गया हुग्रा पति लौटा हुग्रा दिखाई पड गया। वह नायिका हर्ष से फूली नही समायी ग्रौर सहसा इतनी मोटी हो गई कि हाथ मे बची हुई ग्राधी चूडियाँ मोटाई के कारण तडक कर टूट गईं।

उर्दू के एक कवि ने तो विरह की कृशता के वर्णन मे सीमा पार कर दी है। एक विरही ग्रपनी विरह-कृशता का वर्णन करते हुए किसी से कह रहा है—

इन्तहाए लागरी से जब नजर ग्राया न मै।
हँस के वो कहने लगे बिस्तर को झाड़ा चाहिए॥

कृशता की पराकाष्ठ के कारण जब मै ग्रपने प्रिय को दिखाई नही पडा तो प्रिय ने कहा कि विस्तर झाडो तो गिरने पर दिखाई पड जायेगे। किन्तु महाकवि कालिदास ने इस प्रकार की हास्यास्पद ग्रतिशयोक्ति का ग्राश्रय न लेकर केवल यही कहा-ग्रपने हाथ का कडा निकल कर गिर जाने से सूनी पहुँची वाले यक्ष ने कुछ महीने निकाल दिए "नीत्वा मासान्कनक वलय भ्र शरिक्त प्रकोष्ठ" इस प्रकार वहाँ ग्राठ महीने बिताते हुए ग्राषाढ के प्रथम दिन वह क्या देखता है कि मानो कोई हाथी मिट्टी के टीले को ढहाने का प्रयत्न कर रहा हो। बहुत से विद्वानो ने वप्र-क्रीडा-परिणत-गज प्रेक्षणीय मे बादलो को हाथी माना है ग्रौर चित्रकूट को वप्र, किन्तु यदि कोई चित्रकूट

मे हनुमान-धारा पर बैठकर आषाढ के पहले दिन चित्रकूट पर छाए हुए बादल का दृश्य देखले तो उसे प्रतीत होगा कि वास्तव मे चित्रकूट ही मस्तक उठाए हुए गज के समान है और बादल ही वप्र (टीला) है। स्वय कालिदास ने अपने रघुवश मे "शृगाग्रलग्नाम्बुद वप्रपक" "ककुद्मानिव चित्रकूट" (रघु० १३।४७) बताकर इसे स्पष्ट कर दिया है कि चित्रकूट उसी साँड के समान है जिसकी चोटी पर छाए बादल ऐसे लगते है मानो उसके सीग पर टीले की मिट्टी लगी हो।

मेघदूत की कुछ प्रतियो मे आषाढस्य प्रथमदिवसे के बदले मे "प्रशम दिवसे" पाठ मिलता है किन्तु यह पाठ अग्राह्य भी है और भ्रामक भी। आषाढ के प्रारम्भ मे बादल आने की बात उत्तर भारत के सम्पूर्ण ग्राम-गीतो मे व्याप्त है—

चढ़त असाढ गगन घन छा।
चमचम चपला जी डरपाए।
पिय बिन मोको कछु न सुहाए
साजन सौतन घर बिलमाए।
कुछु न सुहाए, बादल छाए ।।

गुजरात के अपभ्रंश साहित्य मे मृणालवती ने मुंज को सन्देश ही भेजा है—

मुञ्ज बढल्ला दौरडी पेक्खेसि न गम्मारि।
आषाढ़ि घरा गज्जीईं चिक्खिल होसे वारि ।।

हे गँवार मुंज ! तू प्रेम की ढीली डोरी को समझ नही रहा है। जब आषाढ मे बादल गुजरने लगेगे तब मार्ग मे पानी ही पानी भर जायगा, तब कैसे आ पावेगा।)

हमारे देशी साहित्य मे जो अनेक बारहमासे लिखे गये है या लिखे जाते है उन सब मे आषाढ चढते ही बादल आने का वर्णन है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार भी आषाढ के पहले पक्ष मे मेघ-दर्शन आवश्यक है अन्यथा दो मास तक अनावृष्टि की आशका होती है—

आषाढ मासे प्रथमे च निरभ्र दृष्टे रवि मंडले च।
विद्युन्गर्ज्जत्यथ नैव मेघाः मासद्वयंतत्र न वर्षण स्यात् ।।

आषाढ के पहले पखवाडे मे यदि सूर्य खुला, बिना बादल के रहे और न बिजली चमके-गरजे, न बादल हों तो दो मास तक वर्षा नही होती।) और फिर यह तो प्रत्यक्ष दृश्य है जिसे कोई भी चित्रकूट पर जाकर देख सकता है। मेघदूत का अध्ययन करने से पूर्व यह समझ लेना चाहिए कि कालिदास कोई भूगोल की पुस्तक नही लिख रहे है, काव्य की पुस्तक लिख रहे है और मेघ की मर्यादा के अनुसार (त्वत्प्रयाणानुरूप) मार्ग समझा रहे है। अन्यथा 'वक्रः पन्था' का प्रश्न ही न उठता। किन्तु उस काव्य का यही चमत्कार है कि उसके भूगोल की सटीकता, जीव-विज्ञान तथा वनस्पति-विज्ञान की प्रामाणिकता और इतिहास की वास्तविकता सब उपस्थित

है। आषाढ के पहले दिन कामद गिरि के शिखर पर लटके हुए मेघ को देखते ही वह कान्ता-विरही कामी यक्ष विरह से व्याकुल हो उठा और जिस मेघ को देखकर दूर देशस्थ पथिक भी अपने घर लौटने को उत्सुक हो जाता है उस समय शाप-ग्रस्त यक्ष की क्या दशा हुई होगी यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है। उसकी इस स्वाभाविक आकुलता का समर्थन करते हुए कालिदास ने कहा है—

मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथा वृत्ति चेतः।
कंठाश्लेष प्रणयिनिजने किं पुनर्दूरसंस्थे॥

बादल को देखकर जब सुखी लोगो का मन डोल जाता है तब इस वियोगी का तो कहना ही क्या, जो दूर देश मे पडा हुआ अपनी प्यारी को गले लगाने के लिए दिन रात तडपा करता है।)

उर्दू के कवि के अनुसार—

तौबा की थी मै न पिऊँगा कभी शराब।
बादल का रंग देख के नीयत बदल गई॥

मैंने प्रतिज्ञा की थी कि कभी मदिरा नही पीऊँगा। किन्तु बादल उठे हुए देखकर सकल्प टूट गया।)

वह अपनी प्रियतमा के लिए छटपटाने लगा और फिर तत्काल उसने सोचा कि शाप के कारण अलका लौट जाना तो अभी सम्भव नही है इसलिए क्यो न सन्देश भेज दिया जाय। कही ऐसा न हो कि बादलो को देखकर वह विरह की व्याकुलता मे प्राण दे दे। अपभ्रंश के एक कवि ने इस स्थित को बडी मार्मिकता के साथ कहा है—

जइस सणेही तो मुइअ अह जीवइ निन्नेह।
बिहिं पयारेंहि गइहि धण किं गज्जहि खल मेह॥

यदि वह प्रिया मुझसे स्नेह करती होगी तो तुम्हारा गर्जन सुनकर उसने अपने प्राण छोड दिए होगे और यदि वह जीवित है तो निश्चय ही उसके मन मे मेरे लिए स्नेह नही। इसलिए वह तो दोनो प्रकार से मेरे हाथ से जाती रही। दुष्ट मेघ! अब तू क्या गरजे जा रहा है।) इसीलिए उस कामी यक्ष ने सोचा कि क्यो न इसी मेघ से ही सदेश भेजा जाय।

तुम्ही ने दर्द दिया है तुम्ही दवा देना।

यही मेघ तो जाकर प्राण लेने वाला है, क्यो न इसी के हाथ सन्देश भेज दिया जाय, क्योकि इससे पहले कोई पहुँच नही पावेगा और इससे योग्य कोई सन्देश वाहक भी नही मिलेगा। क्यो? बहुत से विद्वानो ने कहा है कि मेघ के हाथ सन्देश भेजना अस्वाभाविक है। यह बात कालिदास भी जानते थे। इसलिए उन्होने कहा भी है—

धूमज्योति सलिल मरुतां सन्निपातः क्व मेघः
सदेशार्थाः क्व पटुकरणैः प्रापणं प्रायणीयाः।

इत्यौत्सुक्याद परिगणयन् गुह्यकस्त ययाचे
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतना चेतनेषु ।।

कहाँ तो धुआँ अग्नि, जल और वायु से बना हुआ मेघ और कहाँ चतुर लोगो से पहुँचाया जाने वाला सन्देश ! किन्तु कामार्त मे इतनी समझ कहाँ रह जाती है कि वह जड और चेतन का भेद कर सके ।) यह तो कालिदास का अपना अर्थान्तिर-न्यास है। किन्तु यक्ष ने अपने इस दूत के चुनाव को बहुत ठोक बजाकर किया है। वह कहता है—

जातेवशे भुवनविदितेपुष्करा वर्तकानाम् ।
जानामि त्वा प्रकृतिपुरुष कामरूपं मघोनः ।
तेनार्थित्व त्वयि विधिवशाद् दूर बन्धुर्गतोऽहम्
याञ्चा मोधा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ।।

कि तुम विश्व-प्रसिद्ध पुष्कार और आवर्तक वश मे उत्पन्न हुए हो, तुम इन्द्र के कामरूप अर्थात् इच्छा के अनुसार रूप धारण करने वाले प्रकृति-पुरुष अर्थात् अत्यन्त विश्वस्त पुरष हो इसलिये मैं तुमसे यह प्रार्थना कर रहा हूँ क्योकि किसी गुणी के आगे हाथ फैलाकर निष्फल लौटना अच्छा है। किन्तु अधर्म से इच्छित फल पाना भी अच्छा नही है। नीति शास्त्र मे इनके जो अनेक गुण बताये है उन सभी का दर्शन यक्ष ने मेघ मे किया है। दूत कुलीन होना चाहिए, मेघ कुलीन है, पुष्कर और आवर्तक कुल मे उसका जन्म हुआ है। सबसे बडी बात यह है कि वह विश्वस्त होना चाहिये मेघ साक्षात् देव राजइन्द्र का विश्वास पात्र है। दूत ऐसा हो कि जब जैसी आवश्यकता हो वैसा रूप धारण कर ले। ये गुण मेघ मे स्वभावत विद्यमान है। जब राम के दूत बनकर सीताजी की खोज करने हनुमान् गए थे उस समय उनकी यही परीक्षा सर्पों की माता सुरसा ने ली थी और देख लिया कि वे बुद्धिमान् है, निर्भीक है, विश्वस्त है, जब चाहे जैसा बडा या छोटा रूप धारण कर सकते है।

ज्यौतिष-तत्त्व के अनुसार बादलो के चार कुल बताये गये है—

आवर्तो निर्जलो मेघः संवर्तश्च बहूदकः ।
पुष्करो दुष्करजलो द्रोणः शस्य पूरकः ।।

आवर्त मेघ निर्जल होता है। सवर्त्त मे बहुत जल होता है। पुष्कर मे कठिनाई से थोडा सा होता है और द्रोण तो धान्य-वर्धक होता है।) इनमे सम्वर्त नामक बहूदक बादल को छोड दिया कि कही अकाल मे पहुँचकर धुआँधार पानी न बरसाने लगे और शस्य-पूरक द्रोण को भी छोड दिया कि यदि उसे सदेश-वाहक बनाकर भेजा तो लोग बिना अन्न के मर जायेगे। इसलिए उसने दुष्कर जल वाले पुष्कर और आवर्तक कुल के निर्लल मेघ को चुना कि उन्हे चाहे जितने दिनो तक इधर-उधर निश्चिन्तता के साथ घुमाया जा सकता है। मेघो की इसी प्रकृति के कारण कालिदास ने उन्हे बीच बीच मे पड़ने वाली नदियो का जल पीते चलने का परामर्श दिया। मेघ को दूत

बनाने का एक और भी कारण है जो यक्ष ने स्पष्ट कर दिया है सन्तप्तना त्वमसि शरण" (तुम सतप्त लोगो को शरण देने वाले हो) घनानन्द का वह सवैया तो प्रसिद्ध ही है—

पर-कारज देह को धारे फिरौ परजन्य यथारथ ह्वै दरसौ ।
निधि-नीर सुधा के समान करौ सब ही विधि सज्जनता सरसौ ।।
घन आनंद जीवन दायक हौ, कबौं मेरिऔ पीर हिए परसौ ।
कबहू वा बिसाती सुजान के आँगनमो अँसुवानहू लै बरसो ।।

और फिर किसी प्रतिष्ठत व्यक्ति को दूत बनाना होता है तो उसकी बडी चाटुकारी की जाती है उसे यह विश्वास दिलाया जाता है कि मै किसी ऐसे वैसे स्थान पर किसी बीहड मार्ग से नही भेज रहा हूँ, किसी आवाच्छनीय व्यक्ति के पास नही भेज रहा हूँ। इसीलिए यक्ष ने पहले स्थान का निर्देश देते हुए अलका का परिचय दिया—

गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां ।
बाह्योद्यान स्थित हरशिरश्चन्द्रिका धौतहर्म्या ।।

यक्ष ने बतलाया कि 'मित्र पयोद ! तुम्हे यक्षेश्वरो की उस अलका नाम की बस्ती को जाने को कह रहा हूँ जिसको बाहर से ही देखकर तुम फडक उठोगे क्योकि बाहर उद्यान मे स्थित महादेव जी के सिर पर स्थित चन्द्रमा के प्रकाश से वहाँ के भवन बारहों मास चमचमाते रहते है। इसके पश्चात् अलका का मार्ग बताते समय यक्ष ने बडे मनोवैज्ञानिक ढग से बादल का भोजन, विश्राम, दर्शनीय स्थल, रमणीय दृश्य, आमोद-प्रमोद, मनोरजन और देव-दर्शन के साथ बीच मे पडने वाले नद, नदी, पर्वत, प्रदेश, नगर, पशु, पक्षी, वृक्ष, पुष्प, जलवायु, पुरुष, देवता और ऐतिहासिक घटनाओ का बडा सश्लिष्ट वर्णन करते हुए उस मार्ग से जाने का प्रलोभन दिया है क्योकि वह मेघ को कहता है कि "त्वत्प्रयाणानुरूपम्" तुम्हारे पद के अनुसार मार्ग बता रहा हूँ। और विचित्र बात यह है कि वह सम्पूर्ण विवरण सम्पूर्ण जड प्रकृति कालिदास ने शृगारमयी दिखाई है कि कही रसमय मेघ विरस न हो जाय इसलिये वह नदियो और पर्वतो को भी मानवरूप मे मानवीय सौन्दर्य से पूर्ण ही देखता है। मेघ को प्रारम्भ मे ही प्रलोभन देते हुए यक्ष कहता है कि तुम्हारा उपकार केवल मैं ही नही मानूँगा वरन् अन्य पथिक-वनिताये भी मानेगी—

त्वामारूढ पवन पदवी मुद्गृहीताल कान्ताः ।
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसन्त्यः ।
क. सन्नद्धे विरह विधुरा त्वय्युपेक्षेत जायां
न स्यादन्योप्यहमिव जनो यः पराधीन वृत्तिः ।।

(यक्ष कहता है कि तुम्हे उठा हुआ देखकर अपने गालो पर फैले हुए बाल हटाकर बड़े विश्वास के साथ परदेशियो की पत्नियाँ तुम्हारी ओर देखने लगेगी क्योकि

मेरे जैसे पराधीन को छोडकर और कौन होगा जो ऐसे समय अपनी विरहिणी पत्नी की उपेक्षा कर सके।)

विरह की दशा मे दिन गिनने की बडी मार्मिक स्थिति का वर्णन मिलता है—

> जे महु दिण्णा दिग्रहड़ा दइएँ पवसन्तेण।
> ताण गणन्तिए अंगिलउ जज्जपरिपाउ नहेण।।

(मेरे प्रिय ने परदेश जाते समय जो लौटने की अवधि बताई थी उसे गिनते-गिनते उँगलियो के पोर सब नखो की रगड से छीज गए है) इसलिए यक्ष कहता है—

> तां चावश्य दिवस गणना तत्परामेक पत्नी,
> अव्यापन्ना मविहतगति द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम्।
> आशाबन्ध कुसुमसदृशं प्राय शोह्यंगनानां,
> सद्यः पातिप्रणयि हृदय विप्रयोगे रुणद्धि।।

(तुम जाकर अपनी उस भाभी से अवश्य मिलना जो वहाँ बैठी दिन गिन रही होगी और जिसके प्राण इसी आशा पर टिके होगे कि अभी फिर भेट तो होगी ही।)

सीताजी ने भी हनुमान जी से अपने प्राण विरह मे न छोडने का कारण बताते हुए कहलाया था—

> नाम पाहरू दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट।
> लोचन प्रभुपद-जन्त्रित, प्राण जाहिं केहि बाट।।

(रातदिन आपका नाम स्मरण ही पहरा देता है, ध्यान के किवाड लगे है। आँखो पर आपके चरण-कमल का ताला लगा है फिर भला प्राण किस मार्ग निकल सकते हैं।) इसके पश्चात् यक्ष ने भारतीय विश्वास के अनुसार अच्छे शकुन का भी निर्देश करते हुए प्रोत्साहन दिया है—

> मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां,
> वामश्चाय नदति मधुरश्चातकस्ते सगन्धः।
> गर्भाधान क्षण परिचयान्नूनमाबद्धमालाः,
> सेविष्यन्ते नयन सुभगं खे भवन्तं बलाकाः।

(मन्द मन्द पवल तुम्हे आगे को बढा रहा है। बाईं ओर काममत्त चातक मधुर बोल रहा है और गर्भाधान के समय का परिचय पाकर निश्चय बगुलिया आकाश मे अत्यन्त नयनाभिराम बक माला बनाकर तुम्हारी सेवा करेगी।) और त्रे ही क्यो।

> कर्तुं यच्च प्रभवति महीं मुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्यां,
> तच्छ्रुत्वा ते श्रवण सुभग गर्जित मानसोत्काः।
> आ कैलासाद् बिस किसलय च्छेदपाथेयवन्तः,
> संपत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः।।

(तुम्हारा गर्जन सुनकर कुकुरमुत्ते निकल आवेगे, धरती हरी-भरी हो उठेगी। और मानसरोवर जाने को उत्सुक राजहँस भी तुम्हारे साथ कैलास तक उठे चले जायँगे।) और यह मैं नही कहता कि तुम झट चल दो। अभी आए हो, ठहरो, बैठो। अपने मित्र चित्रकूट से गले मिल लो, कुशल-मगल पूछ लो क्योकि यह साधारण पर्वत नही है। यह भगवान राम के चरण-कमलो से अकित मेखला वाला वह पर्वत है जिसकी लोग वन्दना किया करते है।

आपृच्छस्व प्रियसखममु' तु'गमालिंग्य शैलं
वन्द्यैः पुँसां रघुपति पदै रकित मेखलासु।
काले काले भवति भवतो यस्य सयोगमेत्य,
स्नेहव्यक्तिश्चिर विरहजं मुँचतो वाष्प मुष्णम्॥

यक्ष इतने मनोवैज्ञानिक ढग से मेघ से अपना काम कराने के लिए उपचार का प्रयोग करता है—

गरीबखाने में लिल्लाह दो घडी बैठो।
बहुत दिनो मे तुम आये हो इस गली की तरफ॥
जरासी देर हो जायगी तो क्या होगा।
घडी-घडी न उठाओ नजर घडी की तरफ।
जोकोई पूछे तो परवाह क्या है कह देना॥

(भगवान् के लिए इस कुटिया मे थोडी देर बैठो क्योकि इस गली की ओर बहुत दिनो मे आए हो। थोडी देर हो जायगी तो कोई बात नही। बार-बारे घडी की ओर दृष्टि न दौडाओ। जो कुछ पूछने भी लगे तो कोई चिन्ता की बात नही है, कह देना टहलते हुए किसी को ओर चले गए थे।)

और इस उपचार के पश्चात् भी वह सीधे हड-बडी मे अपना सन्देश नही कह सुनाता। पहले मार्ग बताता है और कहता है—

मार्गं तावच्छृणु कथयत्वत्प्रयाणानुरूप,
सदेशं मे तदनु जलद ! श्रोष्यसि श्रोत्र पेयम्॥

यक्ष कहता है कि (पहले तुम अपने अनुरूप अर्थात् जिस मार्ग से किसी भले व्यक्ति को भेजा जा सकता है वह समझ लो तब मैं तुम्हे वह श्रोत्रपेय (कानो से पीया जा सकने वाला, रसीला) सदेश सुनाऊँगा जिसे सुनकर तुम भडक उठोगे।) अत यक्ष सीधा मार्ग न बताकर बादल के प्रयाणानुरूप मार्ग बता रहा है और वही मार्ग वता रहा है जिस मार्ग से होकर यक्ष स्वय अलका से चलकर चित्रकूट तक आया है। मार्ग बताने मे भी वह अपने दूत की पूरी सुविधा का ध्यान रखता है। पुष्कर और आवर्तक बादलो मे जल नही होता इसलिए यक्ष उन्हे समझाता है कि—

खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र।
क्षीणः क्षीणः परिलघुपयः, स्रोतसां चोपभुज्य॥

जब थकावट हो तो पर्वतो की चोटियो पर ठहरते जाना और प्यास लगती चले तो झरनो का हल्का-हल्का जल पीते जाना। यह नही कि बिना खाए-पीए सीधे हरकारे के समान चलते चले जाओ क्योकि हनुमान जी के समान दूत मिलना तो बडा कठिन है जो यह कहे कि—

राम-काज कीन्हे बिना, मोहि कहाँ बिसराम।

(राम का काज अर्थात् सीता जी की खोज किए बिना मुझे विश्राम करने का अवकाश कहाँ है ?) अब यक्ष मार्ग बताते हुये उस बीच मे पडने वाले अनुभवो का सकेत देते हुए समझाता है कि जब तुम इस बेत से लदी हुई पहाडी से ऊपर उठोगे तो सिद्धो की भोली-भाली पत्नियाँ चकित होकर कहेगी कि कही पहाड की चोटी ही तो नही उडी जा रही है। इस प्रकार उडते समय दिङ्नागो की सूँडो की फटकारें ढकेलते हुए आगे बढ जाना। 'दिङ्नागाना पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान्।' इससे कुछ विद्वानो ने कल्पना की है कि कालिदास ने प्रमाण-समुच्चय के प्रसिद्ध बौद्ध लेखक दिङ्नाग पर आक्षेप किया है जिसे मल्लिनाथ ने कालिदास का प्रतिद्वदी बताया है।

अब यक्ष सामने उठते हुए इन्द्रधनुष की ओर देख रहा है और वही से सुन्दर मार्ग के अनुभव का श्रीगणेश करता है। यह इन्द्रधनुष या तो प्रात काल दिखाई देता है या सायकाल और यदि बादल के ऊपर विमान से देखा जाय तो इन्द्र चक्र दिखाई देता है, इन्द्रधनुष नही। इस इन्द्रधनुष से यक्ष को बादल का नीला शरीर ऐसा जान पडता है जैसे 'मोर-मुकुट लगाए कृष्ण'। 'वर्हेणेव स्फुरित रुचिना गोपवेशस्य विष्णो (पू० मेघ १५) अब किसानो की पत्नियो का परिचय देता हुआ यक्ष कहता है कि तुम उडकर चलोगे तो किसानो की वे भोली-भाली पत्नियाँ बडी आशा से तुम्हारी ओर आँखे उठाकर देखेंगी जिन्हे भौ चलाकर रिझाना नही आता—'भ्रू विलासानभिज्ञैः तुम वहाँ मालदेश के खेत पर बरस जाना जिससे वहाँ की भूमि सौंधी गन्ध से गमक उठेगी। फिर पश्चिम की ओर बढकर उत्तर की ओर चल देना। आम्रकूट की आग बुझाकर उसकी चोटी पर ठहर जाना जो पके हुए फलो से लदे हुए आम के वृक्षो से घिरा हुआ है। उस समय देव दम्पति को वह पर्वत स्तन इव भुवः (पृथ्वी के स्तन के समान) प्रतीत होगा। उस बन मे जगली स्त्रियाँ घूमा करती हैं इसलिए वहाँ ठहर कर क्या करोगे डग बढाकर चल देना। जल बरसा देने से तुम्हारी देह का भारीपन भी दूर हो जायगा जिससे चाल भी बढ जायगी। आगे चलकर विन्ध्याचल के ऊबड खाबड पठार पर अनेक धाराओ मे फैली हुई रेवा नदी ऐसी प्रतीन होगी जैसे भभूत से चीती हुई हाथी की देह हो। वहाँ जगली हाथियो के मद मे बसा हुआ और जामुन की कुँजो मे बहता हुआ रेवा का जल पीकर तब आगे बढना क्यो कि—

रिक्त सर्वोभवतिहिलघु पूर्णता गौरवाय ॥ पू० मेघ २१)

(जिसके हाथ रीते रहते हैं उसे सब दुर दुराते है और जो भरा पूरा होता है उसका सभी आदर करते है) इसके आगे अधपके हरे-पीले कदम्ब पर मडराते हुए भौरे,

नई फूली हुई कन्दली की पत्तियो को चरते हुए हरिण और जगली धरती की तीखा गन्ध सूँघते हुए हाथी तुम्हे मार्ग दिखाते चलेगे। उस समय सिद्ध लोग अपनी पत्नियो के साथ ऊपर ही ऊपर बूँद घँटने वाले चातको की ओर पात बाँधकर उडती हुई बगुलियो का दृश्य देख रहे होगे। बस, जहाँ तुम गरजे कि वे स्त्रियाँ डरकर झट अपने पतियो से चिपट जायँगी और वे सिद्ध लोग तुम्हारा बडा उपकार मानेगे—

मानयिष्यन्ति सिद्धाः।

यक्ष कहता है—यद्यपि मै जानता हूँ कि मेरे काम के लिए तुम शीघ्र ही जाना चाहोगे किन्तु ऐसी कोई बात नही है। तुम ककुभ (अर्जुन) सुगन्धित फूलो से लदे हुए उन पहाडो पर ठहरते हुए मस्ती लेते हुए जाना जहाँ कि मोर अपनी कूक से तुम्हारा स्वागत करेगे। वहाँ से चलकर तुम आगे दशार्ण देश मे पहुँच जाओगे जहाँ के उपवनो की बाढ फूले हुए केवडो से उजली हो उठी होगी। गाँवो के मन्दिरो मे कौवे घोसले बना रहे होगे। सारा जगल काली-काली जामुनो से लदा मिलेगा और हँस भी कुछ दिनो के लिए यहाँ आ बसे होगे। वहाँ की राजधानी विदिशा मे तुम्हे विलास की सब सामग्री मिल जायगी। वहाँ लहराती हुई वेत्रवती का जल पीते हुए तुम्हे ऐसा लगेगा जैसे किसी कटीली भौहो वाली कामिनी का रस पी रहे हो।

वहाँ से चलकर नीच नाम की पहाडी पर थकावट मिटाने के लिए रुक जाना। वहाँ फूले हुए कदम्ब ऐसे जान पडेगे जैसे तुमसे मिलने के कारण उनके रोम-रोम फरफरा उठे हो। इतना ही नही उसकी गुफाओ मे वहाँ के छैलो का भी राग-रग देखना।

यः पण्यस्त्री रति परिमलोद्गारिभि र्नागराणाम्।
उद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि॥

(पूर्व मेघ २७)

(उसी पहाडी की गुफाओ मे से उन सुगन्धित पदार्थो की गन्ध निकल रही होगी। जो वहाँ छैले, वेश्याओ के साथ रति करने के समय काम मे लाते है। इससे तुम यह भी जान जाओगे कि वहाँ के नागरिक कितनी खुल्लमखुल्ला जवानी का रस लेते है।) ऐसे ही शिला-वेश्मको आजकल के बहुत से विद्वानो ने भरत द्वारा निर्दिष्ट नाट्य-गृह तक बता दिया है।

यक्ष ने समझाया है कि वहाँ ठहर कर जूही की फुलवारियो को सीचते हुए उन मालिनो के मुख पर छाया करते हुए उनसे हेल-मेल बढाते हुए आगे बढ जाना जिनके कान मे खुँसे हुए कमल उनके गाल के पसीने से मैले पड़ गये हो। इसके पश्चात् यक्ष ने मेघ से कहा है कि तुम्हे थोडा चक्कर तो पडेगा किन्तु कोई बात नही है—

वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां,
सौधोत्संग प्रणयिविमुखो मास्मभूरुज्जयिन्याः।

विद्युद्दाम स्फुरित चकितैस्तत्र पौरांगनानां,
लोलापांगैर्यदि न रमसे लोचनैर्वंचितोऽसि ।।

(पूर्व मेघ २६)

मालदेश की 'भ्रूविलासानभिज्ञ' भोली-भाली नारियो से भिन्न हैं उज्जयिनी की नारियाँ। (यद्यपि तुम्हारा मार्ग कुछ टेढा पडेगा किन्तु तुम वहाँ के विशाल भवनो से लिपटना न भूलना और तुम्हारी बिजली की चमक से डरकर जो वहाँ की नवेलियाँ चचल चितवन चलावेंगी उन पर न रीझे तो समझो तुम्हारा जीवन अकारथ गया।) हाँ, उधर जाते हुए निर्विन्ध्या नदी का रस ले-लेना जिसकी लहरो पर कलरव करते हुए पक्षी ही मेखला के समान और भंवर ही नाभि के समान प्रतीत होगे। बस समझ-लेना कि चटक-मटक दिखाकर तुम्हे रिझा रही है क्योकि—

स्त्रीणा माद्यं प्रणयवचनं विभ्रमोहि प्रियेषु ।

(पूर्व मेघ ३१)

(स्त्रिया चटक-मटक दिखाकर ही अपने प्रेमियो को अपने प्रेम की बात कह देती है।) उस विरहिणी दुर्बल निर्विन्ध्या को जल से भरकर तुम श्री विशाला विशाला उज्जयिनी मे पहुँच जाना जहाँ के गाँवो मे ऐसे बहुत से बड़े-बूढे लोग होगे जो उदयन की कथा को भली प्रकार जानते है—

प्राप्यावन्तीनुदयन कथा कोविद ग्रामवृद्धान् ।
पूर्वोद्दिष्टामनुसरपुरीं श्री विशालां विशालम् ।।
स्वल्पीभूते सुचरित फले स्वर्गिणां गा गतानां ।
शेषैः पुण्यै हृं तमिव दिवः कान्तिमत् खण्डमेकम् ।।

(पूर्व मेघ, ३२)

अवन्ति देश मे पहुँचकर धन-धान्य से भरी हुई उस विशाल नगरी की ओर चले जाना जिसकी चर्चा मैं पहले ही कर चुका हूँ और जहाँ गाँव के वडे-बूढे लोग, महाराज उदयन की कथा भली प्रकार जानते-बूझते हैं। वह नगरी ऐसी लगती है मानो स्वर्ग मे अपने पुण्यो का फल भोग चुकने वाले पुण्यात्मा लोग, पुण्य प्राप्त होने से पहले ही, अपने बचे हुए पुण्य के बदले, स्वर्ग का एक चमकीला भाग लेकर उसे अपने साथ धरती पर उतार लाए हो।) ऐतिहासिक दृष्टि से यह श्लोक वडे महत्व का है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि कालिदास को उज्जयिनी बहुत प्रिय थी और इस नगर से उसका बहुत घनिष्ट सम्बन्ध था—वह सम्बन्ध चाहे जन्म का हो या कर्म का। दूसरी बात यह है कि मेघदूत उस समय लिखा गया जब वत्सराज उदयन द्वारा वासव-दत्ता के हरण वाली कथा बहुत पुरानी नही हुई थी और जिसकी चर्चा उस समय तक अर्थात् मौर्य साम्राज्य के क्षीण होने तक प्रसिद्ध थी। उज्जयिनी के सौदर्य के कारण के सम्बन्ध मे कालिदास ने जो कल्पना की है वह अद्भुत है। हमारे वहाँ माना गया है—

'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोके विशन्ति ।'

इसी आधार पर कालिदास ने कहा है कि स्वर्ग मे गए हुए लोगो ने सोचा कि अन्त मे मर्त्यलोक मे तो जाना ही पडेगा इसलिए उन्होने बहुत दिनो तक स्वर्ग सुख भोग चुकने पर जब थोडा पुण्य बच रहा तब वे अपने बचे हुए पुण्य के बदले स्वर्ग का जो सुन्दर खण्ड साथ लेते आये वही उज्जयिनी है। यह भी एक बडा प्रमाण है कि कालिदास उज्जयिनी के थे। वहाँ के सम्बन्ध मे मेघ को समझाते हुए वे कहते है कि उज्जयिनी मे सारसो की मीठी बोली सुनाई पडेगी, कमल की गन्ध मे बसा हुआ शिप्रा का 'प्रियतम इव प्रार्थना चाटुकार' पवन वहाँ 'सुरतग्लानि' हर रहा होगा। अगर के धुएँ से तुम्हारा शरीर बढेगा, पालतू मोर नाच-नाचकर तुम्हारा अभिनन्दन करेगे और फूलो की गन्ध से महकते हुए उन भवनो की सजावट देखकर तुम अपनी थकावट मिटाना जिनमे सुन्दरियो के चरणो मे लगी हुई महावर से लाल पैरो की छाप बनी हुई होगी। इसके पश्चात् उसे महाकाल के मन्दिर मे जाने का निर्देश करता हुआ यक्ष कहता है कि महाकाल के पवित्र मन्दिर मे शिवजी के गण तुम्हे अपने स्वामी शिवजी के कण्ठ के समान ही नीला देखकर तुम्हे बडे आदर से निहारेगे। युवतियो के स्नान से सुगन्धित और कमल के गन्ध मे बसी हुई गन्धवती नदी की ओर से आने वाला पवन इस मन्दिर के उपवन को बार-बार झुला रहा होगा। यहाँ तुम महाकाल की सन्ध्या आरती मे गरज कर उनके नगाडे का साथ देना। यहाँ नृत्य करती हुई वैश्याओ के नखक्षतो पर जब तुम्हारी ठडी-ठडी बूंदे पडेगी तब वे तुम्हारी ओर भौरे के समान अपनी चितवन चलावेगी। सन्ध्या की आरती हो चुकने पर जब महाकाल ताण्डवनृत्य करने लगे तब वृक्षरूपी उनके उठे हुए बाहुओ पर साँझ की ललाई लेकर तुम छा जाना जिससे शिवजी के मन मे हाथी की खाल ओढने की इच्छा पूरी हो जाय। यह दृश्य देखकर पहले तो पार्वती जी डर जायँगी किन्तु फिर तुम्हे देखकर और पहचान कर वे तुम्हारी भक्ति का आदर करेगी। उज्जयिनी मे जो कृष्णाभिसारिकाएँ अपने प्रियतमो से मिलने के लिए अन्धेरी रात मे निकले उन्हे तुम बिजली चमकाकर ठीक मार्ग दिखा देना, गरजना-बरसना मत नही तो घबरा उठेगी। फिर तुम दिन निकलते ही वहाँ से चल देना क्योकि अपने मित्रो का काम करने का जो बीडा उठाता है वह आलस्य नही करता—

(मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थ कृत्याः)

सवेरा होने पर खडिता नायिकाओ के प्रिय भी अपनी प्रियतमाओ के आँसू पहुँच रहे होगे और सूर्य भी अपनी प्रियतमा कमलिनी के मुँह पर पडी हुई ओस पोछ रहा होगा, उस समय तुम उनके हाथ न रोकना, नही तो वे बुरा मान जायेगे। इसके पश्चात् यक्ष ने गभीरा नदी का चित्रण अत्यन्त सहृदयता और रसिकता के साथ करते हुए उसे विवस्त्र नायिका के रूप मे चित्रित किया है और कहा है कि जो जवानी का रस ले चुका है वह खुली हुई जाँघो वाली को भला कैसे बिना भोगे छोड देगा।

'ज्ञातास्वादो विवृतजघना को विहातु समर्थ.'। वहाँ से चलकर मेघ को देवगिरि पर्वत की ओर भेजते हुए बताया है कि चिघाडते हुए हाथी वहाँ धरती की गध पी रहे होगे और वन के गूलर पकने लग गए होगे। वहाँ सदा निवास करने वाले स्कन्द भगवान् पर जल चढाकर गर्जन करना जिससे स्वामी कार्तिकेय का मोर नाच उठेगा। उनकी पूजा कर चुकने पर आगे बढोगे तो अपनी पत्नियो के साथ जाते हुए सिद्ध लोग मिलेगे जो अपनी वीणा भीगने के डर से तुमसे दूर ही दूर हटे दिखाई देगे। फिर कुछ आगे जाकर तुम चर्मण्वती नदी का जल पीने के लिए उतर जाना जो राजा रन्तिदेव के गवालभ यज्ञ की कीर्त्ति बनी हुई बह रही है। वहाँ तुम आकाश चारी सिद्धो और गन्धर्वों को ऐसे प्रतीत होगे जैसे किसी एकलड़े हार मे मोटी सी इन्द्रनील मणि पोह दी गई हो। चर्मण्वती (चबल) नदी पार करके तुम दशपुर की ओर चले जाना जहाँ की रमणियो की भौहे कुन्द पर मंडराने वाले भौरो के समान चमक रही होगी। वहाँ से चलकर सीधे ब्रह्मावर्त पर छाया करते हुए कुरुक्षेत्र पर उडते चले जाना जो कौरवो और पाडवो की घरेलू लडाई के कारण दुर्नाम है और जहाँ गाण्डीव-धारी अर्जुन ने राजाओ पर उसी प्रकार अगणित बाण बरसाये थे जैसे तुम अपनी जलधारा वरसाते हो। वहाँ सरस्वती नदी का वह शीतल जल पीकर तुम्हारा मन उजला हो जायगा जिसे बलराम ने भी मदिरा छोडकर ग्रहण किया था। वहाँ से चलकर तुम कनखल पहुँच जाना जहाँ हिमालय से उतरी हुई गगाजी मिलेगी जिन्होने सगर के पुत्रो को स्वर्ग पहुँचा दिया और जो अपनी लहरो के हाथ चन्द्रमा पर टेककर मानो शिवजी के केश पकड कर पार्वतीजी को बता रही हो कि शिवजी मेरी मुट्ठी मे है। वहाँ जल पीते समय गगाजी पर चलती हुई तुम्हारी छाया ऐसी प्रतीत होगी मानो प्रयाग पहुँचने से पहले ही गगा से यमुना मिल गई हो। वहाँ से तुम गगोत्री पहुँच कर अपनी थकावट मिटालेना जहाँ की शिलाएँ कस्तूरी मृगो के बैठने से सदा महकती रहती हैं।

वक्ष्यस्यध्वश्रम विनयने तस्य शृंगे निषण्णः।
शोभांशुभ्र त्रिनयन वृषोत्खात-पकोपमेयाम्॥

(पूर्व मेघ, ५६)

(उस समय पर्वत की चोटी पर बैठे हुए तुम वैसे ही दिखाई दोगे जैसे महादेव ज़ी के उजले साँड की सीगो पर मिट्टी के टीलो पर टक्कर मारने से कीचड जम गया हो) देखो मेघ! जब अन्धड चलने से देव दारु वृक्षों की रगड से जगल मे आग लगने लगे और उसकी चिनगारियाँ सुरागाय के लबे-लबे रोयें जलाने लगे तब तुम धुँआ धार पानी बरसा कर उसे बुझा देना क्योकि—

'आपान्नार्तिप्रशमन फला संपदो ह्युत्तमानाम्'।

(पूर्व मेघ ५७)

(भले लोगो के पास जो कुछ होता है वह दीन-दुखियो का दुख मिटाने के लिये ही होता है) हिमालय पर जब शरभ जाति के आठ पैरो वाले हरिण बहुत

उछलने-कूदने लगे और तुम पर सीग चलाने को झपटे तब तुम धुँआधार ओले बरसाकर उन्हे तितर-बितर कर देना क्योकि—

'के वा नस्युः परिभवपदं निष्फलारभ यत्नाः'

(पूर्व मेघ, ५८)

(बे काम का काम करने वालो को ऐसे ही ठीक करना चाहिये) वहाँ पर्वत की एक शिला पर शिव जी के जिन पैरो की छाप पर सिद्ध लोग पूजा चढाते है वहाँ तुम भी भक्ति-भाव से झुककर प्रदक्षिणा कर लेना क्योकि श्रद्धावान् लोगो के पाप उनके दर्शन से ही धुल जाते है। वहाँ के पोले-पोले बाँसो मे वायु भरने से बज उठने वाले मीठे स्वरो के साथ किन्नरो की स्त्रिया जब त्रिपुर-विजय का गीत गाने लगे तब तुम भी मृदग के समान गर्जन करके सगीत के सब अग पूरे कर देना। हिमालय पर्वत के आस-पास सब सुन्दर स्थान देखकर तुम उस क्रौचरन्ध्र से होकर उत्तर की ओर बढ जाना जिसमे से होकर हसो के समूह मानसरोवर की ओर जाया करते है और जिसे छेदकर परशुराम जी अमर हो गये है। उस सँकरे मार्ग मे तुम वैसे ही लबे और तिरछे होकर जाना जैसे बलि को छलने के समय विष्णु का सावला चरण लबा और तिरछा हो गया था। वहाँ से ऊपर उठकर तुम उस कैलास पर्वत पर पहुँच जाओगे जिस की चोटियो के जोड-जोड रावण के बाहुओ ने हिला डाले थे, जिसमे देवताओ की स्त्रिया अपना मुह देखती है और जिसकी कुमुद-जैसी उजली चोटियाँ आकाश मे इस प्रकार फैली है मानो —

"राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यंबकस्याट्टास."

(पूर्व मेघ, ६२)

(नित्य का इकठ्ठा किया हुआ शिव जी का अट्टाहास हो) कालिदास की उपमाओ मे यह उपमा बडे महत्त्व की और अप्रतिम समझी जाती है। इतना ही नही तुरन्त काटे हुए हाथी दाँत के समान गोरे कैलास पर अपना चिकने घुटे हुए आँजन के सामान काला रूप लेकर तुम वैसे ही सुहावने लगोगे जैसे बलराम के कधो पर पडे चमकीले वस्त्र। इसी प्रसग के मेघ को यक्ष समझाता है कि उस कैलास पर जब महादेव जी के हाथो मे हाथ डाले पार्वती जी टहल रही हो तब तुम बरसना मत, बरन् सीढे के समान बन जाना जिससे उन्हे ऊपर चढने मे सुविधा हो। शिव जी के सम्बन्ध मे कालिदास का इतना भक्तिपूर्ण उल्लेख इस बात का भी साक्षी है कि कालिदास निश्चय ही पक्के शैव थे।

इतना भक्ति-जनक निर्देश कर चुकने के पश्चात् यक्ष पुन भृङ्गार की ओर प्रवृत्त होकर कहता है कि वहाँ पर्वत पर जब अप्सराये अपने नग-जडे कगनो के नग चुभो कर तुम्हारे शरीर से धाराएँ निकालने लगें और तुम्हे छुडाए न छोडें तो तुम कान फोडने वाला गर्जन सुनाकर उन्हे डरा देना, वहाँ पहुँच कर पहले तो तुम सुनहरे कमलो से भरे हुए मानसरोवर का जल पीना, फिर कपड़े के समान थोडी देर ऐरावत

के मुँह पर छा कर उसका मन बहलाना, तब कल्पद्रुम के कोमल पत्ते हिलाते हुए कैलास पर्वत पर जी भर के घूमना।

अलका का वर्णन करते हुए यक्ष कहता है कि उस कैलाश पर्वत की गोद मे अलका वैसी ही लगती है जैसे किसी प्रियतम की गोद मे कामिनी हो और वहाँ से निकली हुई गगाजी ऐसी प्रतीत होती है मानो उस कामिनी के शरीर पर से सरकी हुई उसकी साडी हो। इसके पश्चात् यक्ष ने अलकापुरी का विस्तृत, सश्लिष्ट, भावपूर्ण तथा भव्य परिचय देते हुए बताया है कि अलका मे ऊचे भवन, सुन्दर नारियाँ, भवनो मे रग-बिरगे चित्र, सगीत और मृदग की धूमधाम, नीलम से जडी हुई धरती और गगन-चुम्बी अटारियाँ विद्यमान है। वहाँ की कुल-बधुओ के हाथो मे कमल के आभूषण, चोटियो मे कुन्द के फूल, मुँह पर लोध के फूलो का पराग, जूडे मे कुर बन्क (कट सरैया का फूल) कानो पर सिरस के फूल, और माग मे कदम्ब के फूल दिखाई देगे। वहाँ सदा फूलने वाले वृक्ष, बारह मासी कमल और कमलिनियाँ सदा बसे रहने वाले हस, चमकीले पखो वाले पालतू मोर तथा सदा प्रसन्न यक्ष और यक्षिणियो की भरमार है। वहाँ के प्रसन्न यक्ष नित्य अपने भवनो मे अपनी प्रियाओ के साथ बैठकर वह मधु पीते है जो बाजो के बजने के कारण कल्पवृक्ष से निकला करता है। वहाँ की सुन्दरी कन्याएँ मन्दाकिनी के तट पर रत्न से खेलती है, चन्द्रकान्त मणियो से टपकता हुआ जल वहाँ स्त्रियो की थकावट दूर करता है। अथाह सपत्ति वाले यक्ष अप्सराओ और किन्नरो के साथ वहाँ के वैभ्राज उपवन मे निवास करते है, कल्प वृक्ष से उन्हे सब शृगार की वस्तुएँ मिलती रहती है, पत्तो के समान साँवले वहाँ के घोड़े, रग और चाल मे सूर्य के घोडो को कुछ नही समझते। पहाड जैसे ऊँचे हाथी वहाँ मद बरसाते चलते है। रावण से लडने वाले वीर लोग घाव के चिन्हो को ही आभूषण समझते है और शिवजी का निवास वहाँ होने के कारण कामदेव भी अपना भौरो की डोरी वाला धनुष न चढाकर छबीली कामिनियो की बाँकी चितवन से ही काम निकाल लेता है। कालिदास ने अलका की वनस्पत्ति और जीव जन्तुओ का जो वर्णन किया है वह वनस्पत्ति शास्त्र और प्रकृति शास्त्र के सर्वथा विपरीत है क्योकि हिमालय के उस प्रदेश मे बबूल, कुन्द, कदम्ब, मोर, घोडे और हाथी नही हो सकते किन्तु वहाँ तो दैवी सृष्टि थी जिसके लिये वनस्पत्ति शास्त्र प्रमाणित नही है इस प्रकार का स्थान किसी भी सहृदय व्यक्ति के मन मे उसे देखने की उत्कण्ठा उत्पन्न कर सकता है, इसीलिये यक्ष ने पहले अलका का वर्णन किया और इसके पश्चात् वह अपने घर का वर्णन करने लगता है—

'कुबेर के भवन से उत्तर की ओर इन्द्रधनुष के समान सुन्दर गोल फाटक वाला मेरा घर दूर से दिखाई पडेगा जिसके पास ही फूलो के गुच्छो से लदा और नीचे तक झुका हुआ कल्पवृक्ष खडा है। भीतर जाने पर नीलम जडी हुई सीढियो वाली बावडी है जिसमे चिकने वैदूर्य मणि की-सी डठलवाले सुन्दर कमल खिले है। उसके जल मे बसे हुए हस इतने सुखी है कि मानसरोवर पास होने पर भी और तुम्हे

देखकर भी वहाँ नही जाना चाहेगे। इस बावडी के तीर पर नीलम मणि की चोटी वाला बनावटी पहाड है जिसके चारो ओर सोने के केले लगे हुए है। इस पर्वत पर कुबे के वृक्षो से घिरे हुए माधवी मडप के पास एक मे कचन के से पत्तो वाला लाल अशोक का वृक्ष है और दूसर मौलसिरी का वृक्ष है। उनमे से अशोक तो मेरी प्रिया के बाँएँ पैर की ठोकर खाने के लिए और मौलसिरी का पेड उसके मुँह से छोडे हुए मदिरा के छीटे पाने के लिए तरस रहा होगा। उन दोनो के बीच मे चमकीले मणियो की चौकी पर बनी हुई स्फटिक की चौकोर पटिया पर जडी हुई सोने की छड पर तुम्हारा मित्र मोर नित्य साँझ को आकर बैठा करता है जिसे मेरी पत्नी अपने घुँघरू दार कडे वाले हाथो से तालियाँ बजा बजाकर नचाया करती है। मेरे द्वार पर शख और चक्र के चिन्ह देखकर तुम मेरा घर अवश्य पहचान लोगे जो मेरे बिना बडा उदास-दिखाई पड रहा होगा। वहाँ हाथी के बच्चे के समान छोटे बनकर पहाडी की सुहावनी चोटी पर बैठकर जुगुनुओ के समान अपनी आँखे मिचका कर घर के भीतर झाँकना। रमणीय मार्ग, भव्य पुरी तथा मनोरम भवन के वर्णन से वहाँ जाने की उत्कण्ठा जगाकर यक्ष ने अपनी पत्नी के रूप का वर्णन किया है जिससे मेघ को यह विश्वास हो जाए कि जिसके पास मुझे भेजा जा रहा है वह कुदर्शन (असुन्दर) नही है—

> **तन्वी श्यामा शिखर दशना पक्व बिम्बाधरोष्ठी**
> **मध्ये क्षामा चकित हरिणी प्रेक्षणा निम्ननाभि।**
> **श्रोणीभारादलस गमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां**
> **या तत्र स्याद्युवति विषये सृष्टिराद्येव धातु.॥**

(उ० मेघ, २२)

(वहाँ दुबली-पतली, नन्हे दाँतो वाली, पके हुए बिम्ब-फल के समान लाल होठो वाली, पतली कमर वाली, डरी हुई आँखो वाली, गहरी नाभि वाली, नितबो के बोझ से धीरे-धीरे चलने वाली, और स्तनो के भार से कुछ आगे को झुकी हुई जो युवती तुम्हे दिखाई दे वही मेरी पत्नी होगी। उसकी सुन्दरता देखकर ऐसा जान पडेगा मानो ब्रह्मा की सबसे बढिया कारीगरी वही हो।) आगे उस विरहिणी का परिचय देते हुए यक्ष कहता है 'विरहिता चकवी के समान अकेली और कम बोलने वाली उस प्रेयसी को देखकर तुम समझ लोगे कि वह मेरा दूसरा प्राण ही है। विरह मे उसका रूप इतना बदल गया होगा कि उसे देखकर तुम्हे पाले से मारी हुई कमलिनी का भ्रम हो सकता है। रोते-रोते उसकी आँखे सूज आई होगी, गरम उसाँसो से उसके होठो का रग फीका पड गया होगा। चिन्ता के कारण गाल पर हाथ धरने से और मुँह पर बाल आ जाने से उसका अधूरा दिखाई देने वाला मुँह मेघ से ढके हुए चन्द्रमा के समान उदास दिखाई देने लग गया होगा?

अपनी प्रिया की विरह-क्रियाओ का वर्णन करते हुए यक्ष कहता है कि 'या तो वह पूजा चढ़ाती मिलेगी या मेरा चित्र बनाती मिलेगी या मैना से पूछ रही होगी कि तुम अपने पति को स्मरण करती या नही या मैले कपडे पहने गोद मे वीणा लिए

ऊँचे स्वर से मेरे नाम के गीत गाती होगी। उस समय बेसुधी मे उसे राग के उतार-चढाव का भी ध्यान न रहता मिलेगा या देहली पर रक्खे हुए फूलो को देखकर शाप के बचे हुए दिन गिन रही होगी या मन ही मन पिछली मधुर स्मृतियो का आनन्द ले रही होगी। उसकी प्यारी सखियाँ दिन मे उसका साथ नही छोडती होगी इसीलिए उसके पलग के पास वाली खिडकी पर जा बैठना और जब उसकी सब सखियाँ सो जायँ तब उसके पास पहुँच जाना और ढू ढ लेना। वह एक करवट पड़ी होगी, आँसू बह रहे होगे और बढे हुए नखो वाले हाथ से वह अपने गालो पर छाए हुए रूखे और उलझे हुए बाल हटा रही होगी। विरह के कारण चन्द्रमा की किरणे भी उसे कष्ट देती होगी। आजकल वह कोरे जल से नहा रही होगी इससिये उसके रूखे बाल मुँह पर लटक कर उसके पतले होठो को तपाने वाली साँसो से हिलते जा रहे होगे। वह स्वप्न मे मुझसे मिलने के लिये नीद बुलाती होगी पर बहते हुए आँसू उसकी आँखें नही लगने देते होगे। फिर यक्ष उसे बडे कौशल और मनोवैज्ञानिक ढग से मर्म की बात अर्थात् सन्देश देने की रीति, भूमिका और सन्देश की बात समझाता है कि हे मेघ! तुम्हारे पहुँचने पर यदि उसे कुछ नीद आने लगे तो तुम उसके पीछे चुपचाप एक पहर ठहरे रहना जिससे यदि वह स्वप्न मे मुझ से मिल रही हो तो मेरे कठ मे पड़ी हुई उसकी भुजाएँ अचानक नीद टूटने से छूट न पडे। किन्तु यदि एक पहर ठहरने पर भी वह आँखे न खोले तुम अपनी जल की फुहारो से ठडा किया हुआ वायु चला कर उसे जगा देना और अपनी बिजली को छिपाकर मन्द गर्जन के साथ पहले अपना परिचय देना और फिर जैसे सीता जी ने उत्सुक होकर हनूमान का सन्देश सुना था उसी प्रकार जब वह उत्सुक होकर सुनने को उत्कण्ठित हो जाय, तब तुम उससे कहना कि 'तुम्हारा बिछुडा हुआ साथी रामगिरि के आश्रम मे कुशल से है क्योंकि जिन लोगो पर अचानक विपत्ति आई हो उनसे पहले पहल यही पूछना ठीक होता है। उससे कहना कि 'दूर बैठे हुए प्यारे साथी का मार्ग यद्यपि बैरी ब्रह्मा रोके हुए बैठा है तथापि अपनी विरह-दशा से ही वह तुम्हारी दशा समझ लेता है। उससे कहना कि—

श्यामास्वंङ्ग चकित हरिणी प्रेक्षणे दृष्टि पातं
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदी वीचिषु भ्रूविलासान्
हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चडि! सादृश्यमस्ति॥

(उ० मेघ, ४६)

(मैं यहाँ बैठा प्रियगु की लता मे तुम्हारा शरीर, डरी हुई हरिणी की आँखो मे तुम्हारी आँखे चन्द्रमा मे तुम्हारा मुख, भौंरे के पखो में तुम्हारे बाल और नदी की छोटी-छोटी लहरियो मे तुम्हारी कटीली भौहे ढूँढा करता हूँ पर तुम्हारी बराबरी उनमे कही नही मिलती) इतना ही नही—

त्वामालिङ्ग्य प्रणय कुपितां धातुरागैः शिलायां
आत्मानं ते चरिण पतित यावदिच्छामि कर्तुम्।

अस्त्रैस्तावन्मुहुरुपचितै दृष्टि रालुप्यते मे ।।
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः ।।

(जब मैं पत्थर की शिला पर गेरू से तुम्हारी रूठी हुई मूर्ति का चित्र खीच कर तुम्हारे पैर पकडने की इच्छा करता हूँ उस समय आँसू उमडने से नेत्रो के आगे अधेरा छा जाता है और निर्दयी काल, चित्र मे भी हमारा मिलन नही सह सकता।) इतनी भूमिका के पश्चात् यक्ष अपनी विरह-दशा का वर्णन करते हुए समझाता है कि बहुत कुछ सोच-विचार कर मै अपने मन को ढाढस बँधा लेता हूँ इसलिए तुम भी दुखी मत होना क्योकि सुख या दुःख तो पहिए के चक्कर के समान यो ही आया-जाया करते है। अगली देव उठनी एकादशी को जब विष्णु भगवान् शेष शय्या से उठेंगे उसी दिन मेरा शाप भी बीत जायगा। इसलिये अपने चार महीने किसी प्रकार आँख मूँदकर बिता डालो।'

आषाढ के पहले दिन यह सन्देश दिया गया और मेघ को इतना समय दिया गया कि वह स्थान-स्थान पर ठहरता हुआ, दृश्य देखता हुआ देवोत्थान्या एकादशी से चार मास पूर्व अलका पहुँच जाय। इस प्रकार मेघ को अलका तक पहुँचने के लिए पच्चीस दिन का समय दिया गया अर्थात् वह आषाढ शुक्ल एकादशी को अलका पहुँच जाता है। इसीलिए यक्ष कहता है कि आज से शेष चार मास तुम किसी न किसी प्रकार आँख मूँदकर बिता लो। हनुमान जी जब सीता जी की खोज मे निकले थे तो उनके भगवान् श्रीराम ने अपनी अँगूठी पहचान के लिए दी थी किन्तु यक्ष ने केवल गोत्र स्मरण की एक घटना का उल्लेख पहचान के लिए सन्देश के साथ मेघ को बता दिया है जिससे यक्षिणी को अविश्वास न हो। आगे कालिदास ने भी विरह मे ही प्रेम की आवृत्ति का वर्णन करते हुए कहा है—

स्नेहानाहुः किमपि विरहेध्वंसिनस्ते त्वभोगा—
दिष्टे वस्तुन्युपचित रसाः प्रेमराशी भवन्ति ।।

(उ० मेघ, ५२)

(न जाने लोग क्यो कहा करते है कि विरह मे प्रेम कम हो जाता है। सच्ची बात तो यह है कि जब चाही हुई वस्तु नही मिलती तभी उसके पाने के लिए प्यास बढ जाती है और प्रेम ढेर होकर इकट्ठा हो जाता है।)

यह सन्देश देकर उसने मेघ से प्रार्थना की है कि मेरी प्रियतमा को ढाढस बँधाकर उसके कुशल-समाचार पाकर और उससे अभिज्ञान लेकर तुम यहाँ लौट आना और मेरे प्राणो की रक्षा करना। यक्ष इतना चतुर है कि वह मेघ की स्वीकृति की भी चिन्ता नही करता और पूछता है—हे बन्धु ! तुमने मेरा काम करना निश्चय किया है या नही ? पर इससे यह न समझ बैठना कि तुम्हारी स्वीकृति लेकर ही मैं तुम्हें इस काम के योग्य समझूँगा क्योकि तुम तो चातक के माँगने पर बिना कुछ कहे ही जल दे देते हो इसलिए—

प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थ क्रियैव ।

(उ० मेघ, ५४)

(सज्जनो की रीति ही यह है कि दूसरो का काम पूरा करना ही उनका उत्तर होता है ।) और इसके पश्चात् वह मङ्गल कामना करता हुआ कहता है कि 'चाहे मित्रता के नाते चाहे मुझ पर कृपा करके तुम पहले मेरा प्यारा काम कर देना और फिर अपना बरसाती रूप लेकर जहाँ मन चाहे वहाँ घूमना । मैं यही मनाता हूँ कि प्यारी बिजली से एक क्षण के लिए भी तुम्हारा वियोग न हो ।

इस प्रकार 'आषढस्य प्रथम दिवसे' चित्रकूट पर्वत पर छाए हुए मेघ को देखकर यक्ष के मन मे कालिदास ने उसे दूत बनाकर भेजने की वासना जगाकर विश्व मे विशेषत भारतीय साहित्य मे दूत-काव्य की अत्यन्त स्पृहणीय परम्परा बाँध दी जिसके अनुसरण पर अनेक कवियो ने अनेक दूत-काव्य लिखे किन्तु शृगार रस से ओत प्रोत वनस्पति और मानव प्रवृति तथा जड प्रकृति की सूक्ष्म निरीक्षण भावना से भरा हुआ यदि कोई दूत-काव्य ससार मे सफल हो सका और लोकप्रियता प्राप्त कर सका तो वह महाकवि कालिदास का अद्वितीय काव्य मेघदूत है ।

मेघदूत में शिव का स्वरूप

महाकवि कालिदास ने अपने सभी ग्रन्थो मे विशेषत मेघदूत मे अपने इष्टदेव शिव जी के प्रति अनन्य अनुराग, प्रगाढ भक्ति प्रदर्शित की है । स्थान-स्थान पर यक्ष के द्वारा उन्होने मेघ को महाकाल शिवजी के दर्शन करके पुण्य लाभ प्राप्त करने के लिये प्रेरित किया है । कालिदास की शिवजी के प्रति ऐसी अविचल भक्ति एव अशिथिल श्रद्धा को देखते हुए यही कहना पडता है कि कालिदास निश्चय ही पक्के शैव थे । कालिदास ने अगम, अचिन्त्य, अगोचर शिव के सम्बन्ध मे कुमार सम्भव मे तो पार्वती जी द्वारा यहाँ तक कहलवा दिया है कि "न सन्ति याथार्थ्य विद पिनाकिन" अर्थात् महाकाल शिवजी के यथार्थ रूप को जानने वाले विरले ही हैं फिर भी कालिदास ने शिव के स्वरूप के वर्णन मे अपने परिपक्व दार्शनिक ज्ञान का परिचय दिया है । शिव के सच्चे स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए डाक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल ने "मेघदूत का अध्ययन—शिव का स्वरूप" नामक लेख लिखा है । इसमे उन्होने बडा ही मार्मिक विवेचन दिया है । पुस्तक की उपयोगिता को ध्यान मे रखते हुए हम उस पाण्डित्यपूर्ण लेख को पाठको की ज्ञान-वृद्धि के लिये यहाँ प्रस्तुत करना उचित समझते है ।

वह लेख इस प्रकार आरम्भ होता है— पडितो की दृष्टि मे मेघदूत-काव्य का सदर्भ कुछ भी हो स्वय कालिदास ने बडे कौशल से शिव के स्वरूप का सन्निवेश कर दिया है । उसके उज्जयिनी के वर्णन मे महाकाल शिव के पुण्य धाम का, शिव के गणो का उनके नील कठ गुण का, शिव जी के नृत्य का तथा उसके आरम्भ मे गजासुर की कृत्ति के परिधान का उल्लेख है । (मे० १/४०) शकर को शूली कहकर उनके त्रिशूल की ओर भी सकेत है । चण्डी, भवानी और गौरी के नाम भी है । शिव के अट्टहास

का (मे० १/६२), उनकी जटाओ मे कल्लोल करती हुई जन्हुतनया का तथा पार्वती के साथ गगा के सपत्नी-भाव का भी वर्णन है (मे० १/५४) शभु के भुजगो का, पार्वती के साथ उनके विहार का, (मे० १/६४), कुबेर के साथ उनकी मैत्री का, किन्नरियो द्वारा उनके यशोगान का, त्रिपुर की विजय का एव उनके वृषभ का भी वर्णन है। शिव जी त्रिनयन है (मे० १/५६), उनके ललाट पर द्वितीया के चन्द्रमा की कला है (मे० १/५६), मदन का वे दहन कर चुके है, इसलिए जहाँ शिव का निवास है वहाँ कामदेव जाने से डरता है। देवागनाओ के दर्पण के समान काम मे आने वाले रजतगिरि कैलाश के उत्सग मे तो अलकापुरी ही बसी हुई है। शिव जी पशुपति है (१/६०), उनके चरण न्यास की परिक्रमा और दर्शन करके श्रद्धालु जन स्थिर पद अर्थात् अनावृत्तिमय मोक्ष पाने मे समर्थन होते है (मे०१।५६) जो शिव के आदि गणो का स्थान है।

स्वामिकार्तिकेय और उनके जन्म का भी उल्लेख कवि ने किया है। कार्तिकेय स्कन्द क्या है ? शिव जी का जो सूर्य से भी अधिक प्रभावशाली तेज है वही अग्नि के मुख मे सचित होकर कुमार के रूप मे प्रकट हुआ है। अत्यादित्य हुतवहमुखे सभृत तद्धि तेज (मे० १/४७)। कुमार का निवास स्थान देवगिरि है मेघ को वहाँ जाकर पुष्पाकार जलबिन्दु बरसाने का आदेश है क्योकि स्कन्द का जन्म देवासुर-सग्राम मे देव सेना की रक्षा के लिए हुआ था, इसलिए वे पूजा की अजलि के अधिकारी है। कालिदास ने स्कन्द के मयूर को भी स्मरण किया है। पुत्र के अतिशय प्रेम के कारण भवानी पार्वती कुमार के वाहन मयूर के गिरे हुए पख को कान का अलकार बनाकर पहनती है। उस मयूर को नृत्य के द्वारा आनन्दित करने का भी मेघ को परामर्श है। इस प्रकार अनेक प्रकार से वृषराज केतन शिव के स्वरूप का निर्देश कालिदास ने मेघदूत मे किया है। इस स्वरूप पर विस्तृत विचार करने की आवश्यकता है।

कवि के अनुसार मेघ तो कामरूप पुरुष है और हर ने अपने को पानल से काम को भस्म कर दिया था, इसलिये भी शिव और वृषात्मक मेघ का घनिष्ट सम्बन्ध है। वस्तुत कालिदास का सम्पूर्ण दाशनिक विज्ञान शिव के स्वरूप के पीछे छिपा हुआ है। शिव, पार्वती और कुमार कौन है, इस पर सूक्ष्म विचार कर लेने से हम केवल कालिदास के ही नही, वरन् अन्य भारतीय साहित्य के सिद्धान्तो को भी सहानुभूति के साथ समझ सकेंगे। कालिदास उत्कृष्ट कोटि के अद्वैतवाद को मानने वाले थे। वेदान्त-प्रतिपादित ब्रह्म को ही वे शिव कहते है। ब्रह्म की शिवसज्ञा वेदो मे भी कई स्थलो पर आई है--

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नम शंकराय च
मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च

(यजु० १६।४१)

यहाँ शिव के शम्भु, शकर, मयस्कर, मयोभव नाम आये है। कालिदास ने शिव की अखड सत्ता का बराबर गुणगान किया है। जो ब्रह्म सब लोको का अधिष्ठाता है, जिसकी आत्मशक्ति अपने गुणों से युक्त होकर प्रकृति की रचना और उसके विसर्जन

का कार्य करती है, वही अव्ययात्मा, अज, स्वयभू, अष्टमूर्ति, (रघुवश २।३५) भूतपति महेश है। जिन अष्ट स्वरूपो की स्तुति कालिदास ने शकुन्तला के मगल-श्लोक मे की है वे ही गीता मे भी है——

भूमिरापोऽनलो वायु· खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृति रष्टधा॥ (७।४)

(पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहकार, इन आठ रूपो मे मेरी प्रकृति विभाजित है।) कवि ने स्वयम्भू विष्णु और शिव—इस त्रिमूर्ति के अद्वैतभाव का भी प्रतिपादन किया है। ब्रह्मा का वर्णन करते समय उन्होने स्पष्ट कहा है कि वे शिव, ब्रह्मा और विष्णु मे कोई भेद नही मानते। (कुमारसम्भव २।४)

कालिदास के दार्शनिक मत मे एक अखड शुद्ध अद्वैत ब्रह्म ही परम तत्व है। उनकी त्रिदेवस्तुतियाँ उपनिषदो के समान ब्रह्म का सरस और निर्भीक प्रतिपादन करने वाली है। रघुवश के दशम सर्ग मे (१६ से ३२ तक) क्षीर-सागर स्थित अवाड्मनस गोचर शेषासीन विष्णु भगवान को प्रणाम करके देवलोग उनकी स्तुति करते हैं। शिव, विष्णु और ब्रह्मा के जो पृथक् पृथक् वर्णन कालिदास ने किए है उनमे भी अन्योन्य-सक्रमित भाव और पद है। शिव का अद्वैत स्वरूप कुमारसम्भव के अनेक श्लोको मे आया है——

कलितान्योन्य सामर्थ्यैः पृथिव्यादिभिरात्मभि ।
येनेदं ध्रियते विश्व धुर्यै र्यान मिवाध्वनि॥

(कुमार सम्भव।६।७६)

शिव विश्वगुरोर्गुरु (कु० ६।८२), विश्वात्मा (कु० ६।८८), त्रैलोक्य-वन्द्य (कु० ७।५४) और तमोविकार से अनपहत (कु० ७।४८) है। वह शिव किसी की स्तुति नही करता, उसकी सब स्तुति करते हैं, वह किसी की वन्दना नही करता, उसकी सब वन्दना करते है। (कु० ६।८३), वह शिव जगत् का अध्यक्ष और मनोरथो का अविषय है। कु० ६।१७), वाणी, मन और बुद्धि की वहाँ पहुँच नही है, उसको तत्त्वत कौन जान सकता है।

किं येन सृजसि व्यक्तमुत येन बिभर्षितत्।
अथ विश्वस्य संहर्ता भाग कतन एषते॥

(कु० ६।३२)

ब्रह्म के अद्वैत का प्रतिपादन करके कालिदास आगे बढते है। जो अनन्त पुरुष लोक-लोकान्तरो का अधिष्ठाता है, वही हमारे आत्म-तत्त्व मे प्रतिष्ठित है गीता मे जिसे अक्षर कहा है (अक्षर परमं ब्रह्म, गीता ८।३) उसमे और हृदय-देश मे स्थित आत्मेश्वर मे कोई भेद नही है। गीता का क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विचार कालिदास को मान्य है—

इद शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद् यो वेत्ति त प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः॥

(गता १३।१)

क्षेत्रं चापिमाँ विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्र क्षेत्रज्ञयो र्ज्ञानं य त्तज्ज्ञानं मत मम॥

(हे अर्जुन ! इसी शरीर को क्षेत्र कहते है। इस क्षेत्र को जो जानता है उसे इस शास्त्र को जानने वाले क्षेत्रज्ञ कहते है। हे भारत ! सब क्षेत्रो मे क्षेत्रज्ञ मुझे ही समझो। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के जो ज्ञान है वही मेरा ज्ञान माना गया है। इस प्रकार गीता के अक्षर, क्षेत्रज्ञ, तद्विद् आदि शब्द भी कालिदास ने ले लिए है—

यमक्षरं क्षेत्र विदोविदुस्तमात्मान मात्मन्यव लोकयन्तम्॥

कु० ३।५०)

योगिनो यं विचिन्वन्ति क्षेत्राभ्यन्तर वर्तिनम्।
अनावृत्तिमयं यस्य पदमाहुर्मनीषिण॥

(कु० ६।७७)

कालिदास ने उसी योग-साधना मार्ग का वर्णन किया है जिसका प्रतिपादन गीता मे है—'योगाभ्यासी पुरुष ऐसे शुद्ध आसन पर अपना स्थिर आसन लगावे जो न बहुत ऊँचा हो न नीचा। उस पर पहले दर्भ और फिर मृगछाला और वस्त्र बिछावे। वहा चित्त और इन्द्रियो का व्यापार रोककर तथा मन को एकाग्र करके आत्म-शुद्धि के लिए आसन पर बैठकर योग का अभ्यास करे।

काय अर्थात् पीठ मस्तक और ग्रीवा को सम करके स्थिर होता हुआ, दिशाओ को न देखे और नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमावे। वायुरहित स्थान मे रखे हुए दीपक की ज्योति जैसे निश्चल होती है, वही उपमा चित्त को सयत करके योगाभ्यास करने वाले योगी की भी दी जाती है। योगानुष्ठान से विरुद्ध हुआ चित्त स्वय आत्मा को देखकर आत्मा मे ही सन्तुष्ट हो रहता है ''। इसकी तुलना कुमार सम्भव (३। ४-५०) से करनी चाहिये--

स देवदारु द्रुम बेदिकायां शार्दूल चर्म व्यवधान वत्याम्।
आसीन मासन्न शरीर पात स्त्र्यम्बकं सयमिनं ददर्श॥
पर्यंक बन्धस्थिर पूर्वकाय मृज्वायतं सन्नमितोभयांसम्।
उत्तान पाणिद्वयसन्नि वेशात् प्रफुल्लराजीव मिवांक मध्ये॥
भुजंगमोन्नद्ध जटाकलापं कर्णावसक्तं द्विगुणाक्षसूत्रम्।
कंठप्रभा-संग-विशेषनीलाँ कृष्णत्वचं ग्रन्थिमती दधानम्॥
किंचित्प्रकाशस्तिमितोग्रतारैं भ्रुविक्रियायां विरत प्रसंगैं।
नेत्रैरविस्पन्दितपक्ष्ममालैर्लक्ष्यीकृत घ्राण मधोमयूखैः॥
अवृष्टि संरम्भ मिवाम्बुवाह मपामिवाधार मनुत्तरङ्गम्।
अन्तश्चराणां मरुतां निरोधान्निर्वात निष्कम्पमिव प्रदीपम्॥
कपालनेत्रान्तरलब्धमार्गैं र्ज्योति प्ररो है रुदितैः शिरस्तः।
मृणाल सूत्राधिक सौकुमार्यां बालस्या—लक्ष्मीं ग्लपयन्त मिन्दोः॥

मनो नव द्वार निषिद्धवृत्ति हृदि व्यवस्थाप्य समाधिवश्यम् ।
यमक्षर क्षेत्रविदो विदुस्तमात्मान मात्मन्यवलोक – यन्तम् ।।

'ग्रासन्न-मृत्यु काम ने देवदारुग्रो के ग्रधोभाग मे बनी हुई वेदी पर बाघाम्बर बिछाकर बैठे हुए समाधिनिष्ठ शिव को देखा। वे वीरासन से शरीर के ऊर्ध्व भाग को निश्चल करके मेरुदण्ड सीधा ताने हुए थे, उनके दोनो स्कन्ध-प्रदेश कुछ ग्रागे को झुके हुए थे, हथेली के ऊपर रखी हुई हथेली को प्रफुल्ल कमल के समान ग्रक मे धारण किये हुए थे। भुजगो से लिपटी हुई जटाग्रो वाले, कानो से लटकती हुई दुहरी रुद्राक्ष मालाग्रो वाले नीलकठ की प्रभा से मिलने से विवृद्ध कान्ति वाली कृष्ण मृग-छाला गले मे गाँठ लगाकर पहने हुए शकर जी, नीचे छूटती हुई प्रकाश की किरणो वाले उन नेत्रो से नासिका के ग्रग्रभाग को देख रहे थे, जिन मन्द प्रकाश से युक्त नेत्रो की उग्र पुतलियाँ निश्चल थी जो भ्रू विक्षेप मे ग्रनासक्त थे तथा जिनका निमेषोन्मेष कार्य भी बन्द था। वृष्टि-सक्षोभ से रहित मेघ के समान तथा तरग रहित ताल के समान प्राणापानादि शरीरस्थ वायुग्रो का निरोध करके वे निष्कम्प्य प्रदीप की भाँति स्थित थे। कपालस्थ विवृत्ति-मार्ग से भीतर प्रवेश पाकर सिर पर फूटती हुई तेज की किरणे कमल से भी ग्रधिक कोमल इन्दु की कान्ति को फीकी कर रही थी। इस प्रकार प्रणि-धान से वश मे किए हुए मन को, समस्त इन्द्रियो की वृत्तियो से हटाकर, हृदय-देश मे ग्रधिष्ठित करके उस परमात्म-तत्त्व को ग्रातभा मे ही प्रत्यक्ष कर रहे थे, जिसे क्षेत्रविद लोग कूटस्थ ब्रह्म कहते है।

शिव, विष्णु ग्रौर ब्रह्मा का ग्रद्वैतभाव, शिव ग्रौर कूटस्थ ग्रात्मा का तादात्म्य ग्रौर योग द्वारा उस ग्रक्षर ब्रह्म का साक्षत्कार ही कालिदास का दार्शनिक मत है।

शिव के द्वारा मदन-दहन का रहस्य

शिव जिस समय ग्रात्म-प्रत्यक्ष करना चाहते है, उस समय काम उनके मार्ग मे विघ्न करता है। उस काम को वे ग्रपने वश मे करते है। बोधि-लाभ करने से पूर्व भगवान् बुद्ध को भी मार-विजय करना पडा था। काम ग्रौर शिव का सम्बन्ध ग्रत्यन्त घनिष्ट है। काम की सज्ञा वृष है वृष नाय नेत्र का है। मेघ ही वृषाकयि इन्द्र का काम रूप पुरुष है ग्रर्थात् वृष, काम ग्रौर मेघ एक ही तत्त्व के नामान्तर है। जिस मेघ को दूत कल्पित करके यक्ष ग्रपने कामोद्गारो का प्रकाश करता है, उसको बारम्बार परामर्श है कि वह शिव को प्रसन्न करे भक्ति से नम्र होकर हर-चरण-न्यास की परिक्रमा करे तथा ग्रपना स्निग्ध गम्भीर घोष, पशुपति के सगीत-साज के काम मे लावे। काम का निग्रह करने वाले शिव, काम से किस प्रकार प्रसन्न हो सकते है, इसका उत्तर शिव-पार्वती का विवाह है। पार्वती सुषुम्णा नाडी का नाम है। मेरुदण्ड हिमालय है, इसी के भीतर सुषुम्णा है। इस मेरुदण्ड मे छः चक्र ग्रौर तैंतीस पर्व या ग्रस्थि-पोर हैं। ये पोर एक दूसरे से सटे रहते है। मेरु ही पर्वत है (पर्वाणि सन्त्यस्य)। उस पर्वत के भीतर रहने वाली सुषुम्णा पर्वतराज की पुत्री पार्वती है। ग्रस्थि-पोरों के भीतर एक छिद्र है, पर्वो के परस्पर मिलने से वह रन्ध्र, दीर्घ नलिकाकार हो जाता है। इसी के

भीतर सुषुम्णा नाडी है। वह नाडी मस्तिष्क से होती हुई पृष्ठ-वश मे अवस्यूत होकर सबसे नीचे के मूलाधार चक्र तक जाती है। पर्वास्थि के भीतर पहले श्वेत, फिर विभूति वर्ण का भूरा मज्जामय पदार्थ भरा रहता है जो मस्तिष्क के कोषो मे भी पाया जाता है। इसी मज्जामय सुषुम्णा के भीतर एक सूक्ष्म विवर है जो नीचे से ऊपर तक आयत रहता है। सुषुम्णा के बॉई और इडा और दक्षिण ओर पिंगला नाम की नाडिया है जो मुषुम्णा से सम्बद्ध रहती है और सहस्र जाल से फैलती हुई अन्त मे कपालस्थ आज्ञाचक्र मे सुषुम्णा से मिल जाती है। ये नाडियाँ सब प्राण की वाहिका है और प्राण ही जीवन-तत्व है। भौतिक पक्ष मे इस प्राण के आधार ये सब नाडी-जाल और षट् चक्र है। नाडियो की सूक्ष्मता की कोई सीमा नही है। उनकी सख्या योग-शास्त्र के अनुसार ७२००० है। वस्तुतः आधुनिक शरीर-शास्त्री के लिये भी समस्त नाडी-सख्या का निर्धारण कठिन है। इन सब मे मुख्य सुषुम्णा ही है। स्थूल शरीर-विज्ञान जीवन-तत्त्व के भौतिक आधार का ही परिचय पास का है, उसका भोगायतन (फिजियोलौजिकल) रूप प्रयोग-साध्य है। परन्तु योग-विद्या मानसिक पक्ष मे भी प्राण की गति का निर्देश और परिचय कराती है। इसीलिए भौतिक प्रयोग से जिस वस्तु का ज्ञान नही हो सकता ध्यान मे उन्ही शारीरिक रहस्यो का मानसिक क्रियाओ के साथ प्रत्यक्ष हो जाता है। तन्त्र-ग्रन्थो मे इसके दा प्रकार के वर्णन मिलते है। कही तो भोगायतन-पक्ष मे शरीर सगठन मे जीवन-तत्त्व का अधिष्ठान समझाने के लिए सुष्मणा आदि सज्ञाओ से काम लिया जाता है और कही उस वर्णन को आध्यात्मिक स्वरूप देकर शिव, पार्वती, कुमार, प्रमथ आदि सज्ञाएँ कल्पित करके योग-प्रत्यक्ष को शब्दो-द्वारा प्रकट किया जाता है। षट् चक्रो का स्थान और क्रम इस प्रकार है—

१ मूलाधार (कौक्सीजियल रीजन)—इसका सयोग गुदा से है। इसमे चार पर्व (वर्टिब्रल) है जो कि ऊपर के पर्वो की अपेक्षा छोटे और अपूर्ण दशा मे है। वे चारो पृथक्-पृथक् स्फुट स्वरूप के न होकर एक ही अस्थि से प्रतीत होते है जिसे अँग्रेजी मे कौक्सिक्स कहते है। कीकसा अस्थि भी यही ज्ञात होती है। कुण्डलिनी शक्ति यही निवास करती है। शिव-पार्वती के विवाह मे कुण्डलिनी को जगाकर ही ब्रह्माण्ड या मस्तिष्क मे ले जाते है इसी को योग की परिभाषा मे सर्पिणी कहते है क्योकि यह सर्पिणी की भाति कुण्डल मारकर सोई रहती है। मूलाधार मे पृथ्वी तत्त्व का स्थान है।

२ स्वाधिष्ठान (सेक्रल रीजन)—इसका अधिष्ठान लिंग मे है। इसमे पाँच पर्व है। ये पाँचो भी एक ही अस्थि मे जुडे रहते है जिसे अँग्रेजी मे सेक्रम कहते हैं। इन्ही दोनों अस्थियो के नौपर्वो को निकालकर आधुनिक शरीर-शास्त्री, मेरुदण्ड मे २४ अस्थिपोरों की गणना करते है। पर भारतीयो ने इस शक्ति को तैंतीस पर्वो से युक्त ही माना है। स्वाधिष्ठान चक्र मे जल तत्त्व का अधिष्ठान है।

३ मणिपूर (लम्बर रीजन)—इसका स्थान नाभि है और मेरुदण्ड के इस भाग मे ५ पर्व है। तेज इसका तत्त्व है। इन तीनो चक्रो का भेद कर लेने पर योगी

विराट् भाव से युक्त हो जाता है, उसकी मोह निद्रा टूट जाती है।

४ अनाहत (डोर्सल रीजन)—मेरुदण्ड मे १२ पर्वो वाला यह चक्र हृदय मे स्थित है। यहाँ वायु तत्त्व का स्थान है।

५ विशुद्ध चक्र (सर्विक रीजन)—इसमे सात पर्व है और यह ग्रीवा मे स्थित है। यही से आकाश गुणयुक्त शब्द का जम्भ होता है। इसके भेद करने पर योगी को आकाश तत्त्व पर विजय प्राप्त हो जाती है।

६. आज्ञा चक्र—मस्तिष्क प्रदेश के भ्रू मध्य या चित्रकुटी मे योगी इसका स्थान मानते है। यहाँ सुषुम्णा का अन्त हो जाता है। वहाँ मन, बुद्धि और अहकार का निवास है। इसी स्थान पर ज्ञान-चक्षु है जो तृतीय नेत्र है। यही शिव का वास है जब योगी पाच चक्रो को सिद्ध कर लेता है, तब उसे काम-बाधा नही सता सकती। शिव के लिए कालिदास ने कहा है—'अरूपहार्यं मदनस्य निग्रहात्' अर्थात् मदन के निग्रह के कारण रूप या सौदर्य उनके चित्त को नही हर सकता। पहले शिव ने मदन को भस्म कर डाला है (भस्मावशेष मदन चकार) तभी वे पार्वती के साथ विवाह करके षडानन कुमार को जन्म देते है। आज्ञा चक्र से ऊपर सहस्रदल-कमल (सेरेब्रल रीजन) है जहाँ पर साक्षात् शिव निवास करते है। कुमार का जन्म शिव के स्कन्दित तेज से होता है। यह तेज पार्वती रूपी सुषुम्णा मे निक्षिप्त होकर क्रमश. छहो चक्रो के द्वारा और लालित होता हुआ स्कन्द को जन्म देता है जो इसी कारण छह माताओ के पुत्र या षाण्म तुर कहे गए है। कालिदास ने मेघदूत मे स्कन्द के जन्म का रहस्य सूत्ररूप मे लिख दिया है—

तत्र स्कन्द नियतवसति पुष्पमेघीकृतात्मा।
पुष्पा सारैः स्नपयतु भवान् व्योमगगाजलार्द्रैः॥
रक्षा हेतोर्नव शशिभृता वासवीनां चमूना—
मत्यादित्य हुतवहमुखे सभृत तद्धि तेजः॥

वहाँ देवगिरि पर बसने वाले कुमार को अभ्र-पुष्पात्मक रूप बनाकर आकाश गगा से सीची हुई पुष्प-वृष्टि से स्नान कराना। देव सेना के रक्षा के हेतु पावक के मुख मे सचित सूर्य से भी अधिक प्रभाशाली शिव का तेज ही कुमार है। 'अत्यादित्य हुतवहमुखे सभृत तद्धि तेजः' यही स्कन्द की परिभाषा है। हुत वह अर्थात् अग्नि नामक सुषुम्णा के मुख मे सूर्य से भी अधिक प्रकाशित शिव का तेज ही स्कन्द है। इन्द्रियो की सात्विक और तामसिक वृत्तियो का द्वन्द्व देवासुर-सग्राम है। जब सतोगुणी इन्द्रियाँ काम से हारने लगती है, तब वे समाधि मे बैठे हुए शिव से प्रार्थना करती है कि वे उन्हे एक सेनापति दे। देवो ने भी यही कोषो मे स्कन्द की पत्नी का नाम देव सेना है। कहा है—

'तदिच्छामो विभोस्रष्टुं सेनान्य तस्य शान्तये।

(कु० २।५१)

(उस असुर को परास्त करने के लिए हम लोग एक सेनापति चाहते है।) शिवजी ने मदन को भस्म किया, तदुपरान्त उमा की तपस्या से सुषुम्णा नाडी द्वारा योग की साधना से शिव और पार्वती का विवाह हुआ अर्थात् व्यक्ति की चिदात्मिका शक्ति जो अधोमुखी थी वह अन्तर्मुखी होकर सहस्रारदल मे स्थित पर-बिन्दु शिव से सयुक्त हो जाती है, फिर विषयो से उसे कोई भय नही रहता। जो इन्द्रियाँ और सबो को मथ देती हैं, वे ही प्रमथो के रूप मे शिव के पार्षद (परिषदि साधु) होकर रहती है। 'अत्यादित्य हुतवह मुखे सभृत तद्धि तेज' को समझने के लिए तीनो नाडियो के नाम जान लेने चाहिएँ। सुषुम्णा=वन्हिस्वरूपा, सरस्वती, लोहित वर्णा। इडा=चन्द्रस्वरूपा, गगा, सतोगुणी, अमृत विग्रहा, पीतवर्णा। पिंगला=सूर्यस्वरूपा, तैजसवर्णा, रौद्रात्मिका, वज्रिणी, यमुना राजसी।

सुषुम्णा का नाम वन्हिया हुतवह है। इसी मे अपना तेज हवन करने से शिव यज्वा कहलाते हैं। साधना मे पुरुष का तेज इसी वन्हि के मुख मे सचित होता रहता है और जब छहो चक्रो का भेद पूरा हो जाता है तभी उस कुमार का जन्म होता है जिसकी अध्यक्षता मे देव सेना कभी नही हारती। पुराणो के अनुसार कुमार वे हैं जो आजन्म ब्रह्मचारी है।

सहस्रारदल मे जो शिव है वे ही अक्षरतत्त्व है। वही समस्त ब्रह्माण्ड की चित् शक्ति है। मूलाधार चक्र मे शक्ति-पीठ है जहाँ व्यक्ति की शक्ति निवास करती है। शक्ति के तीन कोण कहे गये है--इच्छा, ज्ञान और क्रिया। इन्ही का नाम त्रिपुर है। इनके मध्य मे बसने वाली शक्ति त्रिपुर सुन्दरी कही गई है। इसी त्रिपुर या त्रिकोण से कुण्डल मारकर शान्त बसने वाली शक्ति की शब्दगत कल्पना सर्पिणी की है। इसीसे शिव के शरीर मे भुजग लिपटे रहते है और शिव को अहिवलय धारण करने वाला कहा गया है। कालिदास ने कहा है—

हित्वा तस्मिन् भुजगवलय शम्भुनादत्त हस्ता।
क्रीडाशैले यदि च विचरेत् पाद चारेण गौरी॥

(मेघ० १।६४)

मूलाधार मे यह सर्पिणी शिवरूप ज्योति के चारो ओर लिपटी रहती है, परन्तु आज्ञा-चक्र मे पहुँच कर जब शिव-पार्वती का सयोग हो जाता है तब यह कुण्डलिनी पूरी खुल जाती है, मानो शिव जी ने अपने सर्पवलय को त्याग दिये हो जहाँ तक शरीर शास्त्र से प्रत्यक्ष करने का विषय है वहाँ तक इस प्रकार त्रिकोणात्मिका शक्ति के रूप को शल्यशास्त्र के द्वारा हम नही देख सकते। मानस-प्रत्यक्ष से सम्बन्ध रखने वाली वस्तु, यत्रद्वारा कैसे जानी जा सकती है? इसका दर्शन योगपक्ष मे ध्यान द्वारा ही हो सकता है। ज्योति या तेज स्फुलिंग के आकार का शिवलिग इसीका प्रतीक है। शिव इसी शक्ति के त्रिकोण या त्रिपुर की विजय करते है, इससे उनकी सज्ञा त्रिपुर-विजयी है। मेरुदण्डरूपी पर्वत के सिरे पर उसीके एक प्रदेश का नाम कैलाश है जहाँ आज्ञाचक्र है। यहाँ कैलाश पर ही अलकापुरी है। कालिदास

कहते है कि यहाँ कामदेव अपने चाप पर शर नही चढाता—

ससक्तकाभि स्त्रिपुरविजयो गीयते किन्नरीभिः ।। (मे० १।६०)

वही धनपति का यश किन्नर गाते है क्योकि शिव और धनपति मे सख्य-भाव है ।

'उद्गायद्भिः धनपतियशः किन्नरैर्यत्रसार्धम् ।।

(मेघ० २।१०)

धनपति कुबेर का अनुचर यक्ष अवसर पाते ही अपने कामरूप पुरुष को शिव की उपासना करने का आदेश देता है । पार्वती की सज्ञा, गुहा, स्कन्द की गुह और यक्षो की गुह्यक है । इससे भी इनके परस्पर सम्बन्ध का सकेत मिलता है । यक्ष काम की मूर्ति है । उसके नेत्रो से ही कामदेव टपका करता है । इस प्रकार काम से भरा हुआ पुरुष अवश्य ही गुह्यक या रक्षा करने योग्य है । वह अपनी रक्षा के लिए उस देव की शरण मे जाता है जिसने काम को भस्म कर दिया है, तथा फिर जिसके अनगजित् रूप से सेनानी गुह का जन्म हुआ । शिवजी पिनाक पाणि हैं—

अरूपहार्यं मदनस्यनिग्रहात् पिनाकपाणि पतिमाप्तुमिच्छति ।

(कु० ५।४३)

पिनाक को शिव का धनुष कहते है । निरुक्त मे पिनाक के अर्थ है—

रम्भः पिनाकमिति दण्डस्य । नैगम कांड (३।४)

अर्थात् रम्भ और पिनाक दण्ड के नाम है । वही यह भी लिखा है—

कृत्तिवासाः पिनाक-हस्तोऽवततधन्वेत्यपि निगमोभवति ।

पिनाक नाम मेरुदड का ही है । यही शिव का धनुष है । इस दडाकार धनुष की दो कोटियाँ, सिरे है । नीची कोटि मूलाधार चक्र मे है । वहाँ जो कुण्डलिनी पडी है, उसी को पिनाकी प्रत्यचा कल्पित करके दूसरे सिरे को आज्ञा-चक्र मे ले जाते है । यही धनुष की प्रत्यचा चढाना या अवततधन्वा होता है । प्राय धनुषो की प्रत्यचा खुली रहती है और वे दडाकार होते है । जो पुरुष धनुष पर चिल्ला (डोरी) चढा सकता है, वही उस धनुष का स्वामी माना जाता है । पिनाक को सब से प्रथम शिव ने अधिज्य किया । इसलिए वे ही उस धनुष के स्वामी है शिव की सज्ञा खड परशु है—

— **भूतेशः खंड परशुगिरीशो गिरिशो मृडः (अमर कोष)**

और यही सज्ञा भृगपति की भी है । भृगपति की सज्ञा क्रौच—दारण कालिदास ने ही दी है—

हस द्वार भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौञ्चरन्ध्रम्

(मे० १।६१)

क्रौञ्च दारण सज्ञा स्वामी कार्तिकेय की भी है । इस प्रकार शिव, भृगुपति और कुमार का सम्बन्ध भी स्थापित होता है । शिव और कुमार मे कोई भेद नही है क्योकि शिव का ही तेज कुमार है । यह भी प्रसिद्ध है कि कुमार की उत्पत्ति मे किसी

स्त्री के गर्भ की आवश्यकता नही हुई । वस्तुत कालिदास ने कुमार को अग्नि के मुख मे सभृत तेज लिखा है । फिर जो पिनाक शिव के पास है, वही अजगव नामक शिव-धनु अब परशुराम के पास भी था । इस प्रकार इन तीनो मे सम्बन्ध प्रतीत होता है । योग की साधना मे षट् चक्र के भेदन के समय प्राण को जिस रन्ध्र मे होकर सुषुम्णा मस्तिष्क मे प्रवेश करती है वह द्वार ही क्रौच-रन्ध्र है सुषुम्णा (स्पाइनल कौर्ड) श्वेत और विभूति वर्ण पदार्थ की बनी हुई नाडी है । वह मूलाधार चक्र से उठकर, आगे के चार चक्रो मे होती हुई विशुद्धि-चक्र (सर्विकल रीजन) को पार कर मस्तिष्क मे फैल जाती है । सर्विकल रीजन के प्रथम अस्थि-पर्वत को अग्रेजी मे ऐटलस कहा जाता है, जो अपने ऊपर आकाश या द्युलोक को उठाए हुए था । यही से सुषुम्णा नाडी स्पाइनल बल्ब मे होकर मस्तिष्क मे जाती है । इसलिए ये क्रौच पर्वत ही स्पाइनल बल्ब है । जिसे मेडूला ओबलौगाटा भी कहते है । इसी मे क्रौच रन्ध्र या बडा छेद है जिसे अग्रेजी मे मौगनम फोरामेन कहते है । इसी विवर मे तिर्यगायाम के साथ अर्थात् तिरछी झुक कर सुषुम्णा प्रवेश करती है । कुडलिनी शक्ति जिस समय मूलाधार से जाग कर शिव-नामक आज्ञा-चक्र मे जाती है, उसे भी इसी द्वार मे होकर जाना पडता है । इस रन्ध्र का दारण करना भृगुपति के लिए बडा यशस्वी कार्य है, इसी से कालिदास ने इसे भृगुपति यशोवर्त्म (मे०, १।६१) कहा है । प्रालेयाद्रि या हिमाद्रि अर्थात् पर्ववान् पृष्ठ वश के उपान्तर मे ही यह क्रौच द्वार बताया गया है । भृगुपति शिव का नामान्तर है । क्रौड-दारण, खड-परशु, कुमार, भृगुपति, और शिव ये एक ही चैतन्य के नामान्तर है जो विशेष गुणो के कारण कल्पित किये गए है क्रौचतट से तुरन्त आगे शुभ्र कैलास ही खडा है (मे०१।६२) योग की परिभाषा मे विशुद्धि-चक्र के अनन्तर आज्ञा-चक्र है जहा शिवरूप ज्योति का प्रकाश है । मूलाधार-चक्र से योग-साधना के लिए जिस नृत्य का आरम्भ होता है उसकी सिद्धि होने पर शिव जी वज्र-अट्टहास करते है, वही मानो शुभ्र कैलास के रूप मे घनीभूत हो गया है—

राशीभूतः प्रतिदिन मिव-त्र्यम्बकस्यादृहास

(मे०, १।६२)

इसी कैलास का नाम रजतगिरि है । यहाँ एक मणि-तट है । उस पर शिव जी, गौरी के साथ आरोहण करना चाहते है । मेघ को चाहिए कि वह स्तम्भितान्त-र्जलौघ (अपने जलतत्त्व को भीतर रोक रखने वाला) होकर अपने शरीर की सीढी बना कर शिव को वहाँ आरोहरण करने मे सहायता दे । इस मणि-तट का योग-ग्रथो मे विशद वर्णन है । पादुका-पचक नामक तन्त्र योग के ग्रन्थ मे मणि पीठ की बडी महिमा कही गई है । मस्तिष्क मे जो परम चिन्मय सहस्रदल कमल है उसमे अ-क-थ त्रिकोण है उस त्रिकोण मे मणिपीठ है, उस पर शुभ रजताद्रि के समान अनन्तगुरु शिव सुशोभित है अथवा प्रकृति पुरुष के सयोग रूप शिव-पार्वती विराजते है । मेघदूत मे काम रूप पुरुष को स्तम्भित करके शिव उस मणि-तट पर चढते है इस मणितट की प्रभा तडिच्छवि को लजाने वाली है (पटुतडित—कडारिम-स्पर्द्धमान मणि पाटल

प्रभम्) । कालिदास ने न केवल क्रौच—रन्ध्र के पश्चात् कैलास का ही वर्णन आवश्यक समझा, वरन् वहाँ के मणितट का भी नाम लिखा है। इससे उनकी योग परिभाषा का सकेत स्पष्ट सिद्ध है—

भगी भक्त्या विरचितवपुः स्तम्भितान्त र्जलौघ ।
सोपानत्वं कुरु मणितटा रोहणाग्रयायी ॥

(मे० १।६४)

(हे मेघ! तू आगे बढकर अपना जल भीतर रोक कर शिव के मणितट पर चढने के लिए सोपान बन जाना।) इन वर्णनो मे कवि ने काव्य के साथ-साथ योग-शास्त्र के उच्च अनुभवो का भी गूढ समन्वय किया है। मल्लिनाथ ने क्रीडा शैल (मे०,१।६०) का अर्थ बताते हुए शम्भु-रहस्य का अवतरण देकर लिखा है—

कैलास कनकाद्रिश्च मन्दरो गन्धमादनः ।
क्रीडार्थं निर्मिता शम्भो र्देवैः क्रीडाद्रयोऽभवन् ॥

(देवताओ ने शम्भु की क्रीडा के लिए कैलास (रजताद्रि) कनकाद्रि (मेरु, सुमेरु, हेम गिरि, महा-रजत गिरि), मकर और गन्ध-मादन पर्वत बनाए थे, इसलिए ये सब क्रीडा शैल कहलाते है) मेरु पर्वत या मेरुदण्ड और उसी के समीप-स्थित क्रीडा शैल कैलास का परस्पर सम्बन्ध स्पष्ट प्रतीत होता है। कैलास की व्युत्पत्ति ही क्रीडा-स्थान है— केलीना समूह कैलम् (तस्य समूह इत्यण्) । तेन आस्यतेऽत्र (आस्-बैठना) इति कैलास (भानु जी दीक्षित), अर्थात् शिव की क्रीडाओ का स्थान कैलास है। यही कुबेर रहते है, यही यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध और चरणो के मिथुन बिहार करते है, यही ध्यान ध्यान्तवस्थित व स्थित होकर योगी शकर तप करते है और फिर पार्वती-शक्ति से विवाह करके क्रीडा करते है। वस्तुत यहाँ एक ही मेरुदण्ड को पर्वत कल्पित करके उसके भिन्न-भिन्न नाम दिए है। इस मेरुदण्ड का जो भाग मूलाधार-चक्र मे स्थिर है उसका नाम चित्र कूट है क्योकि चित्रा नाम सुषुम्णा या कुडलिनी का है, और यह चित्रिणी मूलाधार-चक्र के आधार पर ठहरी हुई है। चित्रा का कूट ही चित्र है। यही रामगिरि है क्योकि शिवधनु को शिव की भाँति सामने भी अधिज्य किया था। यही से काम-पुरुष उठकर कैलास की गोद मे बसी अलका को जाता है। मेरुदण्ड की एक कोटि पर शिव और दूसरी पर राम है, इन्ही के बीच मे यह अजगव धनुष तना हुआ या अवतत है। कुण्डली के विरह को सहस्रार पद्म ढके हुए हैं। कुण्डली के विवर (स्पाइनल कौलम के अन्तर्गत स्पाइनल के नाल) स तात्पर्य उस मार्ग से है जिसके द्वारा मूलाधार मे शिव-तेज के चारो ओर प्रसुप्त कुण्डलिनी प्रबुद्ध होकर ऊपर चढती हुई शिव से मिल जाती है। चित्रिणी के भीतर ही यह मार्ग है। चित्रिणी उस नलिका को समझना चाहिए जिसके भीतर यह विवर है। जिस प्रकार कमल अपनी नाल के सिरे पर शोभित होता है, वैसे ही चित्रिणी और सहस्रदल तथा द्वादशदल कमल का सम्बन्ध है। चित्रिणी या कुण्डलिनी परम चैतन्य ज्योति है। यही वह स्पन्दतात्मक शक्ति है जिससे सब रचना होती है। इसी की इच्छा, ज्ञान और मायामयी त्रिगुणा-

त्मिक मूर्ति जीवो (पशुओ) मे सत्त्व, रज और तम रूप मे प्रकट होती है। उसीके सकोच और प्रकर्ष के स्फुरण से क्रीडा-शरीर बनता है। ऋग्वेद मे इसी अदिति शक्ति के आठ पुत्र बताए गए है। शैवदर्शन से भी शिव की आठ मूर्तियाँ प्रसिद्ध है। योग-साधन मे सप्तर्षि (पचेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि), कुण्डलिनी-रूपिणी उमा और शिव के बीच मे पडकर उनका विवाह सम्बन्ध स्थिर करते है। जब शिव का पार्वती के साथ विवाह रचाया जाता है तब ये सातो ऋषि विवाह-यज्ञ के अध्वर्यु बनते है। इस यज्ञ मे यदि इनकी अनुमति और शुभाशीर्वाद होगा तभी यह सफल हो सकता है। शिव जी कहते है विवाह-यज्ञे विततेऽत्र यूयमध्वर्यं पूर्वं वृत्ता मयेति। (कुमार०,७।४७) (विवाह यज्ञ का वितान होने पर पहले ही मैने आप लोगो को अपना अध्वर्यु बना लिया था।) मेघदूत मे शिव के वाहन वृष (१।५६) और कुमार के वाहन मयूर का (१।४८) भी उल्लेख है। वृष या इन्द्र, इन्द्रियो की शक्ति का कारण है। पाणिनि भी इन्द्रिय-शक्ति की व्युत्पत्ति इन्द्र से ही करते है (५।२।६३) वृष, इन्द्र और काम का घनिष्ठ सम्बन्ध है। शिव जी जिस समय तीसरे नेत्र से उत्पन्न अग्नि से काम को भस्म कर देते है तब मानो वे वृष (काम) पर आरोहण करते है। इस वृष पर आरोहण करने के लिए वे कुम्भोदर सिंह की सहायता लेते है, यथा

कैलाश गौर वृष मारुरुक्षो पादार्पणानुग्रह पूत पृष्ठं।
अवेहि मॉं किंकर मष्ट मूर्ते कुम्भोदर नाम निकुम्भ-मित्रम्॥

(कैलास के सदृश शुभ्र वृष पर आरोहण करने की इच्छा से जिसकी पीठ पर पैर रख कर शिव चढते है वह मैं अष्टमूर्ति का किंकर कुम्भोदर नाम का सिंह हूँ।) काम शक्ति का वर्णन गीता मे भी यही है—

महाशनो का महा पाप्मा विद्धयेन मिह वैरिणम्।

(कामदेव बडे भोगवाला है) काम और रसना का सदा साथ है, क्योकि जो जलतत्त्व स्वाधिष्ठान-चन्द्र का अधिष्ठाता है, वही जिह्वा मे बसता है। वृष पर चढने के लिए कुम्भोदर की पीठ पर पैर रखना आवश्यक है स्कन्द का वाहन मयूर है। हम बता चुके है कि स्कन्द का सम्बन्ध छ की सख्या से है उसका वाहन मयूर भी षड्ज स्वर सवादी है। सर्परूप कुण्डलिनी का स्वाभाविक वैर मयूर से है। परन्तु शिव की साधना से जन्मे हुए कुमार का वाहन होकर मयूर, कुण्डलिनी रूपी सर्पिणी का मित्र हो जाता है। शिव के कुटुम्ब मे साँप और मोर वैर त्याग कर बसते है। तात्पर्य यह कि पहले मनुष्य कुण्डलिनी के यथार्थ स्वरूप को न जानकर उसे विनाशकारी मार्ग मे लगाता है पर 'कुमार, स्कन्द के जन्म के पश्चात् वह अपने षट् चक्रो के सयमपूर्ण विनियोग को जान जाता है। काम का सम्बन्ध रेत से है, काम का निवास स्वाधिष्ठान-चक्र मे है। इसी चक्र मे जल का निवास है, जैसे कहा है – आप रेतो भूत्वा शिश्नम् प्राविशत्, (ऐतरेय उ०१।२।४) आयुर्वेद के मत से वीर्य का जल तत्व से सम्बन्ध है। निरुक्त मे तथा सस्कृत साहित्य मे भी जल के ही विष और अमृत दो नाम है। शरीरस्थ रेत,

हिरण्य के समान भास्वर तेजवाला है। जिस समय दैवी वृत्तियाँ आसुरी वृत्तियो से दबी रहती है, उस समय रेत, विष स्वरूप होकर सब इन्द्रियो के तेज को जीर्ण कर देता है। उस विष को सहने, पचाने और धारण करने की शक्ति किसी इन्द्रियाधिष्ठाता देवता मे नही है। जब तक शिव विष को नही पीते तब तक इन्द्रिपरूपी देवता उसकी लपटो से झुलसे हुए रहते है। गोसाई जी ने ठीक-कहा है—

जरत सकल सुर वृन्द, विषम गरल जेहि पान किय।
भजसि न तेहि मति मन्द, को कृपालु शंकर सरिस ।।

शिव ही योग-समाधि के कारण उस विष का पान कर सकते है। पाँचो चक्रो को भेदकर जब पहले शिव इस रेत के दुर्विषह्य तेज को विशुद्ध-चक्र अर्थात् कठ मे स्थपित कर लेते है। तभी सब देवता अमृत का भाग पाते है। शिव के विषपान के पश्चात् वही रेत अमृत रूप होकर इन्द्रियो के आत्म-तेज का सवर्द्धन करता है। शिव का विषपान प्रकारान्तर से योग-साधन के फल का वर्णन हे। यक्ष ने मेघ से एक काम और लिया है—

नृत्या रम्भे हर पशुपते रार्द्रनागा जिनेच्छाम्।
शान्तोद्वेगस्तिमित नयन दृष्ट भक्तिर्भवान्यन्या ।।

(मे०, १।३६)

हे मेघ! साय के समय नवीन जपा पुष्प की लाली के सदृश रक्तिमा से सम्पन्न अपने मडल को शिव की भुजाओ पर इस प्रकार तान देना कि अपने नाच के आरम्भ से उन्हे गजासुर की गीली खाल की इच्छा न रहे। उस तेरी शिव भक्ति को उस समय पार्वती भी निश्चल नयन होकर देखेगी।) सक्षेप मे तन्त्र के अनुसार इसका अर्थ यह है कि जिस मूलाधार चक्र का पृथ्वी तत्त्व है उसमे एक सप्त शु ड गजाकार ज्योति है जिसकी पीठ पर शिव-तेज के चारो ओर वलित कुण्डलिनी स्थित रहती है। जिस समय योग-साधन की इच्छा से (नृत्यारम्भे) शिवजी इस चक्र को भेदते है, तब इस गज की मानो मृत्यु हो जाती है। जिस व्यक्ति ने काम को वश मे नही किया है ऐसा कोई व्यक्ति इस गज को परास्त नही कर सकता।

आज्ञा-चक्र मे प्रणव का प्रत्यक्ष होता है। वहाँ ही चन्द्राकार ज्योति का दर्शन होता है यही सूर्य, चन्द्र और अग्नि के तीन बिन्दु है जिनके नामान्तर शिव, विष्णु और ब्रह्मा तत्र ग्रन्थो मे प्रसिद्ध है। यहाँ साधन को चन्द्र की किरणो से टपकने वाली सुधा के आस्वाद का आनद मिलता है। इसी लिए शिवजी नवशशिभृत् (मेघ०,१।४७) और इन्दुशेखर (कुमार०,५।७८) है। योग शास्त्र मे शिव के रूप का बडा विस्तार दिया गया है। शिव पुराण, स्कन्ध-पुराण तथा तत्रो ने इसे बढाकर कथाओ के रूप मे प्रकट किया है। कालिदास का यह कहना बहुत ठीक है—

न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः

(कुमार सम्भव ५।७७)

न विश्वमूर्ते रवधार्यते वपुः।

(कुमार सम्भव, ५।७८)

शिव के स्वरूप का ठीक ठीक निर्धारण कौन व्यक्ति कर सकता है?) पाशुपत शास्त्र मे शिव, विष्णु और ब्रह्मा के अद्वैत को मानकर जीवात्मा के साथ परम चित् शक्ति रूप का तादात्म्य दिखाया है। वह चित्-शक्ति रूप परम हस शिव सहस्रार-पद्म मे प्रतिष्ठित है। उस पर-बिन्दु तक पहुँचने का मार्ग, योग-साधन द्वारा कु डलिनी को जगा कर ब्रह्माण्ड मे ले जाना है। तब तक वृषकेतु, वृषाञ्चन, शिव-रूप आत्मा के दर्शन नही होते, तब तक काम-बाधा चित्त वृत्तियो को अधोमुखी रखती है। वृषपति शिव की साधना और भक्ति (मेघ०,१।५९) प्राप्त करना प्रत्येक कामरूप पुरुष के लिए अत्यन्त आवश्यक है कालिदास के अनुसार योग के द्वारा परमात्म-सञ्ज्ञक परम-ज्योति का दर्शन करना ही जीवन की परम सिद्धि है।

योगात्स चान्तः परमात्म सञ्ज्ञं दृष्ट्वापर ज्योति रुपारराम

(कुमार सम्भव, ३।५८)

शिव के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान ही कालिदास के दर्शन और काव्य-साधना का ज्ञान है।

मेघदूत का अन्य ग्रन्थों पर प्रभाव

महाकवि कालिदास का 'मेघदूत' अपनी मौलिकता और विचित्रता के कारण विश्व-विश्रुत हो गया। इसका प्रभाव अन्य ग्रन्थो पर भी पडा। योग-वासिष्ठ जैसे ग्रन्थ पर भी मेघदूत की छाप है—इसी बात को स्पष्ट करते हुए विद्वद्वर प्रो० डा० भीखनलालजी आत्रेय ने अपने पाण्डित्यपूर्ण लेख "योगवासिष्ठ मे मेघदूत" मे इसी विषय की आते गम्भीर एव विशद विवेचना की है। पुस्तक को अधिक आकर्षक बनाने की दृष्टि से हम उस लेख को यहाँ प्रस्तुत करते जो इस प्रकार आरम्भ होता है—

योगवासिष्ठ महारामायण निर्वाण-प्रकरण के ११९वे सर्ग मे मेघदूत का निम्नोध्दृत वर्णन आता है—

कथयत्येष पथिक पश्य मन्दरगुल्मके। प्रियायाश्चिरलब्धाया वृत्ता विरह सकथाम्।
एकत्र पूर्णं किं वृत्तमाश्चर्यं मिद मुत्तमम्। दातु त्वन्निकटे दूत मह चिन्तान्वितोऽवदम्
अस्मिन् महाप्रलय काल समे वियोगे यो मां तयेह मम याति गृह सकः स्यात्।
नंवास्त्यसौ जगति य पर दुःख शान्त्यै प्रीत्यानिरन्तरतरं सरल यतेत ।। ३ ।।

आ एष शिखरे मेघ स्मराश्व इव संयुत।
विद्युल्लता विलासिन्या वलितो रसिक स्थितः ।।४।।
भ्रातर्मेघ महेन्द्र चाप सुचितं व्यालम्ब्य कंठे गुणं
नीचैर्गर्ज मुहूर्तकं कुरुदयां सा बाष्पपूर्णेक्षणा।
बाला बाल मृणाल.कोमलतनु स्तन्वी न सोढुं क्षमा
तां गत्वा भुगते गलज्जललवैराश्वासयात्मा निलैः ।।५।।

चित्ततूलिकया व्योम्नि लिखित्वाऽलिङ्गिता सती ।
न जाने क्वाधुनैवेतः पयोद दयिता गता ॥६॥

(देखिये ! यह पथिक मन्दर पर्वत के गुल्म मे चिरकाल से वियुक्त पत्नी को पाकर उससे अपने पूर्वकाल के विरह की कथा इस प्रकार कहता है इस मेरे एक दिन के उत्तम तथा आश्चर्यजनक वृत्तान्त को सुनो। एक दिन तुम्हारे निकट अपना वृत्तान्त भेजने के लिए दूत की चिन्ता करते हुए मैंने यह कहा कि इस महाप्रलय काल के समान वियोग के दु ख मे ऐसा कौन दूत है जो मेरे इस वृत्तान्त को मेरे घर जाकर मेरी प्रिया से कहे, क्योकि इस ससार मे ऐसा कोई मनुष्य नही है जो प्रीति से दूसरे की दु ख की शान्ति के लिए सरल भाव से प्रसन्न करे। इतने मे मुझे स्मरण हो आया कि इस पर्वत के शिखर पर दूसरे के दु ख को शान्ति देने वाला रसिक मेघ अपनी विलासिनी विद्युत् रूपी प्रिया से सयुक्त स्थित है। इसलिये उसे मैंने कहा कि हे इन्द्र-धनुष रूपी सुन्दर माला अपने गले मे पहने हुये भाई मेघ ! मेरी जिस पत्नी की आँखों मे जल भरा हुआ है, उसके पास जाकर धीरे गर्जना क्योकि वह कमल की नाल के समान कोमल शरीर वाली कृशबाला है और तुम्हारा कठोर या ऊँचा गर्जन सुनने मे असमर्थ है। उसे अपने जल कणो से युक्त मन्द-मन्द पवन के झोको से जगाना। मैंने अपनी प्रिया की हृदयाकाश मे चित्तरूपी लेखनी से लिखकर जो आलिंगन किया तो न जाने हे मेघ ! वह तत्क्षण कहाँ चली गई।)

श्री योगवासिष्ठ महारामायण के इस छोटे-से "मेघदूत" के वर्णन को यदि हम महाकवि कालिदास के प्रसिद्ध काव्य "मेघदूत" से तुलना करके अध्ययन करें तो जान पडता है कि दोनो के वर्णन मे बहुत ही समानता और एकता है। पाठको के सामने यहाँ पर हम कवि कालिदास के मेघदूत की उन पक्तियो और वाक्यो को उद्धृत करते है जिनमे यह समानता विशेष रूप से पाई जाती है।

योगवासिष्ठ—"**प्रियायाश्चिरलब्धायावृत्तां विरह संकथाम्**" ६३०।११६
मेघदूतम्—"**कान्ता विरह गुरुणा**" १।१
योगवासिष्ठ—**दातुं त्वन्निकटे दूतमहं चिन्तान्वितोऽवदम् ।६३०।११६।२**
मेघदूतम्—"**जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन् प्रवृत्तिम् ।१।४**
योगवासिष्ठ—**अस्मिन् महाप्रलयकाल समेवियोगे यो मांतयेह**
समयाति गृहं सः कः स्यात् ।
नैवास्त्यसौ जगति यः परदुःख शान्त्यै
प्रीत्या निरन्तरं सरल यतेत ॥ ६३०।११६।२३
मेघदूतम्—"**सन्तप्तानां त्वमसि शरण तत्पयोद प्रियायाः संदेश मेहर ॥१।७**
योगवासिष्ठ—"**यः एष शिखरे मेघः स्मराश्व इव संयुत ।६३०।११६।४**
मेघदूतम्—' ... **मेघमाश्लिष्टसानुं ।**
वप्रक्रीडापरिणतगज—प्रेक्षणीयं ददर्श ॥१।२
योगवासिष्ठ—"**विद्युल्लता विलासिन्या वलितो रसिक स्थित ॥**

मेघदूतम्—विद्युद्‌गर्भः······॥२।४०॥

"मा भूदेव क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः ॥२।५८।

योगवासिष्ठ—भ्रातर्मेघ महेन्द्रचापमुचितं व्यालम्ब्य कंठे गुणं
नीचैर्गर्जमुहूर्तक कुरुदयांसा वाष्प पूर्णेक्षणा ।
बालाबालमृणाल कोमलतनु स्तन्वी न सोढुंक्षमा
तां गत्वा सुगते गलज्जललवैराश्वासयात्मानिलैः ।६३०।११६।५

मेघदूतम्—"तामुत्थाप्य स्वजलकणिका शीतलेनानिलेन
प्रत्याश्वस्तां सममभिनवैर्जालकै मालतीनाम ।
विद्युद्‌गर्भः स्तिमितनयनां त्वत्सनाथे गवाक्षे
वक्तुं धीरः स्तनितवचनैर्मानिनी प्रक्रमेथाः ॥२।४०॥

योगवासिष्ठ—"चित्ततूलिकया व्योम्निलिखित्वाऽऽलिगतासती ।
न जाने क्वाधुनैवेतः पयोद दयिता गता ॥६३०।११६।५

मेघदूतम्—त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया-
मात्मानं ते चरण-पतितं यावदिच्छामि कर्तुम् ।
अस्त्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्यिन्नपि न सहते सगमं नौकृतांतः ॥२।४७॥

योगवासिष्ठ महारामायण के निर्वाण प्रकरण के उत्तरार्द्ध के ११६वे सर्ग के ३२वे श्लोक की इन—

"अस्याः प्रागभवत्पतिः समुनिना शापेन वृक्षी कृतो ।
वर्षद्वादशकं तदेव गणयन्त्येषश्च साऽत्र स्थिता ॥

दो पक्तियो की तुलना भी मेघदूत की इन पक्तियो से कीजिए—

"कश्चित्कान्ता विरह गुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः ।
शापेनास्तंगमित महिमा वर्षभोग्येणभर्तुः ॥१।१॥

मेघदूत मे नही, महाकवि कालिदास के अन्य काव्य कुमार-सम्भवम् मे भी कुछ पक्तियाँ ऐसी है जो कि योगवासिष्ठ महारामायण मे पाई जाती है। उदाहरणार्थ देखिये—

योगवासिष्ठ—अथतामतिमात्र विह्वलां स 'कृपाऽऽकाशभवा सरस्वती ।
शफरी हृद्‌शोष-विह्वलां प्रथमा वृष्टि रिवान्वकम्पत ॥४।३६॥

कुमारसम्भवम्—इति देह विमुक्तये स्थितां रतिमाकाशभवा सरस्वती ।
शफरीं हृदशोष-विह्वलां प्रथमा वृष्टि रिवान्वकम्पत ।

इन दोनो श्लोको मे ये शब्द—'आकाशभवा सरस्वती 'शफरी हृदशोष-विह्वला प्रथमा वृष्टिरिवान्वकम्पत" पूर्णत एक ही हैं। अतएव यह कहना ठीक नही कि उन पर दिखाई हुई समताएँ आकस्मिक है अवश्य ही योगवासिष्ठकार और कालिदास दोनो मे से किसी एक ने दूसरे के वाक्यो और विचारो का प्रयोग किया है। विद्वानो ने अभी तक न तो महाकवि कालिदास का ही और न योगवासिष्ठ रामायण का ही समय

पूरे ढग से निश्चय कर पाया है। अतएव यह कहना कठिन है कि दोनो मे से किसको मौलिक कहा जाय । ऐतिहासिक प्रमाण को यदि माना जाय तो योगवासिष्ठ महारामायण आदि कवि श्री वाल्मीकिजी की कृति है और मेघदूत और कुमारसम्भव के लेखक महाकवि कालिदास आदि विक्रम सम्राट् के (५७ई० पू०) नव रत्नो मे से एक थे जो अब से केवल दो सहस्र पूर्व भारत पर् शासन करते थे। कवि वाल्मीकि अवश्य ही कालिदास के पूर्ववर्ती माने जाने चाहिएँ। किन्तु आजकल के विद्वानो के मत मे समूचा योगवासिष्ठ—जैसाकि वह आजकल मिलता है— इतना पुराना ग्रन्थ नही है जितना वह बताया जाता है। उसमे बहुत सा भाग बहुत पीछे का है और अवश्य ही कालिदास के समय के पीछे का है निर्वाण प्रकरण का उत्तरार्द्ध पीछे का न ही ानज्ःपडता है। जिसमे "मेघदूत" की कल्पना की गई है। अतएव यह सम्भव है कि योगवासिष्ठकार के उन पर कालिदास के विचारो और प्रयोगो की कुछ छाप पड गई हो। कुछ भी हो, विद्वानो के लिए यह बात विचारणीय है। आशा है कि पुरातत्त्व के कोई विद्वान् इस समस्या की ओर ध्यान देकर इसको सुलझाने का यत्न करेंगे।